इकाई 1: स्वतंत्रता पूर्व : विकास पहल

Pre-independence: Development Initiatives

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 उद्देश्य (Objectives)

1.3 विकास का अर्थ और उसकी बदलती अवधारणा (The Meaning of Development and Its Evolving Concept)

1.3.1 विकास के प्रमुख आयाम (Key Dimensions of Development)

1.3.2 विकास के संबंध में प्रमुख विचार (Major Perspectives on Development)

1.4 प्राचीन भारत में विकास की प्रक्रिया (The Process of Development in Ancient India)

1.4.1 सिंधु घाटी सभ्यता: नगर नियोजन और व्यापार का विकास (The Indus Valley Civilization: Urban Planning and the Development of Trade)

1.4.2 वैदिक काल में आर्थिक गतिविधियाँ (Economic Activities during the Vedic Period)

1.4.3 महाजनपदों और मौर्य काल में आर्थिक परिवर्तन (Economic Transformations during the Mahajanapada and Mauryan Periods)

1.4.4 प्राचीन भारत में विकास की प्रमुख विशेषताएँ (Key Characteristics of Development in Ancient India)

1.5 मध्यकालीन भारत और मुगल शासन की आर्थिक व्यवस्था (Medieval India and the Economic System under Mughal Rule)

1.5.1 मुगल शासन में प्रशासन और राजस्व व्यवस्था (Administration and Revenue System under Mughal Rule)

1.5.2 कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Agriculture and the Rural Economy)

1.5.3 हस्तशिल्प और व्यापार का विकास (Development of Handicrafts and Trade)

1.6 ब्रिटिश शासन से पहले व्यापार और ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन (Trade Prior to British Rule and the Arrival of the East India Company)

1.6.1 पहला चरण: व्यापारिक गतिविधियाँ (Phase One: Commercial Activities) (1600–1757)

1.6.2 दूसरा चरण: प्लासी के युद्ध के बाद कंपनी की सत्ता (Second Phase: Company's Power After the Battle of Plassey) (1757–1857)

1.6.3 तीसरा चरण: ब्रिटिश क्राउन का शासन (Third Phase: Rule of the British Crown) (1858–1947)

1.7 औपनिवेशिक शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (The Impact of Colonial Rule on the Indian Economy)

1.7.1 कृषि व्यवस्था में परिवर्तन और किसानों की स्थिति (Changes in the Agrarian System and the Condition of Farmers)

1.7.2 कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialization of Agriculture)

1.7.3 भारतीय हस्तशिल्प और पारंपरिक उद्योगों पर प्रभाव (Impact on Indian Handicrafts and Traditional Industries)

1.7.4 विदेशी व्यापार की दिशा में परिवर्तन (Shifts in the Direction of Foreign Trade)

1.7.5 औपनिवेशिक शासन में बुनियादी सुविधाओं का विकास (Development of Infrastructure under Colonial Rule)

1.8 धन-निकासी का सिद्धांत (The Theory of the 'Drain of Wealth')

1.8.1 धन-निकासी के विचार का विकास (Evolution of the Concept of the 'Drain of Wealth')

1.8.2 दादाभाई नौरोजी का योगदान (The Contribution of Dadabhai Naoroji)

1.8.3 धन-निकासी के प्रमुख माध्यम (Primary Channels of the 'Drain of Wealth')

1.8.4 धन-निकासी के आर्थिक प्रभाव (Economic Consequences of the 'Drain of Wealth')

1.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1.10 सारांश (Summary)

1.11 शब्दावली (Glossary)

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

1.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत का आर्थिक विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। इसे समझने के लिए हमें प्राचीन सभ्यताओं, मध्यकालीन शासन व्यवस्था और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान हुए आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन करना आवश्यक है। किसी देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि उसकी उत्पादन व्यवस्था, कृषि, उद्योग, व्यापार और सामाजिक संस्थाओं का विकास किस प्रकार हुआ।

इस इकाई में विकास की अवधारणा, प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत की आर्थिक स्थिति, मुगल काल की उपलब्धियाँ, औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ, कृषि और उद्योगों पर उनके प्रभाव तथा धन-निकासी के सिद्धांत का अध्ययन किया जाएगा।

भारत में विकास की प्रक्रिया सिंधु घाटी सभ्यता से ही दिखाई देने लगती है। इस काल में नगर नियोजन, जल निकासी, शिल्प उत्पादन और व्यापार जैसी गतिविधियाँ विकसित थी। बाद में मौर्य साम्राज्य तथा मुगल शासन के दौरान प्रशासन, कृषि, हस्तशिल्प और व्यापार के विभिन्न रूप सामने आए। हालाँकि, अलग-अलग कालों में विकास का स्तर एक जैसा नहीं था। उत्पादन के साधनों, तकनीक, राजनीतिक व्यवस्था और संसाधनों के वितरण में समय के साथ परिवर्तन होते रहे।

भारत के इतिहास में ब्रिटिश शासन एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अंग्रेजों के आने से पहले भारत का अनेक देशों के साथ व्यापार होता था। भारतीय सूती वस्त्र, रेशम, मसाले, धातु से बनी वस्तुएँ और अन्य हस्तशिल्प विदेशी बाजारों में लोकप्रिय थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने शुरुआत में व्यापार के उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया, लेकिन धीरे-धीरे उसने राजनीतिक और प्रशासनिक सत्ता पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा में बड़े बदलाव हुए।

ब्रिटिश शासन के दौरान कृषि व्यवस्था, भूमि से राजस्व वसूली, उद्योगों, विदेशी व्यापार और सरकारी नीतियों में ऐसे परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव भारतीय समाज पर लंबे समय तक पड़ा। भारतीय राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया कि भारत के संसाधनों और आय का एक हिस्सा बिना पर्याप्त आर्थिक लाभ के ब्रिटेन भेजा जा रहा था। इसी विचार को धन-निकासी का सिद्धांत कहा जाता है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- विकास की अवधारणा और उसके आर्थिक तथा सामाजिक पक्षों को समझ सकेंगे।
- प्राचीन भारत में कृषि, नगरों, तकनीक और व्यापार के विकास का वर्णन कर सकेंगे।
- मुगल काल की आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था को समझ सकेंगे।
- ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि, उद्योग और विदेशी व्यापार में आए परिवर्तनों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- धन-निकासी के सिद्धांत और भारतीय राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के योगदान को समझ सकेंगे।

1.3 विकास का अर्थ और उसकी बदलती अवधारणा (The Meaning of Development and Its Evolving Concept)

विकास का अर्थ केवल किसी देश की आय बढ़ना नहीं है। इसका व्यापक अर्थ लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाना है। इसमें रोजगार के अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक समानता, तकनीकी प्रगति और बेहतर जीवन स्तर शामिल हैं।

जब किसी देश में उत्पादन बढ़ता है, नई तकनीक अपनाई जाती है, परिवहन सुविधाओं का विस्तार होता है और लोगों को रोजगार के अधिक अवसर मिलते हैं, तो आर्थिक विकास की संभावनाएँ बढ़ती हैं। लेकिन यदि राष्ट्रीय आय बढ़ने के बावजूद अधिकांश लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती, तो इसे पूर्ण विकास नहीं कहा जा सकता।

1.3 .1 विकास के प्रमुख आयाम (Key Dimensions of Development)

विकास को मुख्य रूप से निम्नलिखित आयामों के माध्यम से समझा जा सकता है।

1. **आर्थिक आयाम (Economic dimension):** इसमें उत्पादन, राष्ट्रीय आय, कृषि, उद्योग, बैंकिंग, निवेश, व्यापार और रोजगार के अवसरों में सुधार शामिल है।
2. **सामाजिक आयाम (Social dimension): इसमें** शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा और समाज के कमजोर वर्गों की स्थिति में सुधार आता है।
3. **मानवीय आयाम (Humanitarian Dimension):** इसका संबंध लोगों की क्षमताओं, स्वतंत्रता, ज्ञान, कौशल और अपनी इच्छाओं के अनुसार जीवन जीने के अवसरों से है।
4. **तकनीकी आयाम (Technical dimension):** इसमें नई तकनीकों, वैज्ञानिक ज्ञान, उत्पादन की बेहतर विधियों, संचार और परिवहन सुविधाओं का विकास शामिल है।
5. **पर्यावरणीय आयाम (Environmental dimension):** विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, प्रदूषण पर नियंत्रण और भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है।
6. **समानता और सामाजिक न्याय (Equality and social justice):** विकास का लाभ समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर गरीबों, महिलाओं, ग्रामीण आबादी और वंचित समूहों तक पहुँचना चाहिए।

1.3.2 विकास के संबंध में प्रमुख विचार (Major Perspectives on Development)

विकास के अर्थ और उसके कारणों को लेकर अर्थशास्त्रियों तथा सामाजिक विचारकों के विचार अलग-अलग रहे हैं। गुन्नार मिर्डल और डब्ल्यू. डब्ल्यू. रोस्टोव जैसे विकास चिंतकों के कार्यों में पूँजी निर्माण, उत्पादन, तकनीकी प्रगति और अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन जैसे विषय महत्त्वपूर्ण हैं। सामान्यतः विकास के प्रारंभिक आर्थिक दृष्टिकोण में कम आय, कम बचत, पूँजी की कमी, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, शिक्षा और कौशल की कमी तथा बेरोजगारी को विकास में बाधा माना गया।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, यदि उत्पादन और आय बढ़ते हैं, तो उपलब्ध संसाधनों का कुछ हिस्सा शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग तथा अन्य उत्पादक गतिविधियों पर खर्च किया जा सकता है। इससे विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ सकती है। दूसरी ओर, मार्क्सवादी और निर्भरता संबंधी विचारधाराएँ इस बात पर जोर देती हैं कि गरीबी और पिछड़ेपन के कारण केवल पूँजी की कमी या तकनीकी पिछड़ापन नहीं हैं। आर्थिक असमानता, शोषण, संसाधनों पर नियंत्रण और विकसित तथा विकासशील देशों के बीच असमान संबंध भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, कोई देश निर्यात और उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक वृद्धि तो प्राप्त कर सकता है, लेकिन यदि उसके संसाधनों और आय का बड़ा लाभ दूसरे देशों या समाज के सीमित वर्गों को मिलता है, तो व्यापक विकास नहीं हो पाता। इसलिए विकास का अध्ययन करते समय उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ यह भी देखना चाहिए कि उत्पादन किसके लिए हो रहा है, संसाधनों का नियंत्रण किसके पास है और विकास का लाभ किसे मिल रहा है।

1.4 प्राचीन भारत में विकास की प्रक्रिया (The Process of Development in Ancient India)

भारत में विकास का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। इसका प्रमाण पुरातात्त्विक अवशेषों, नगरों, कृषि, व्यापार, शिल्पकला, विज्ञान और तकनीकी ज्ञान से मिलता है। प्राचीन भारत में विकास का अर्थ आज की तरह केवल राष्ट्रीय आय या सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि नहीं था। उस समय विकास को कृषि उत्पादन,

व्यापारिक गतिविधियों, शिल्प, नगरों के विस्तार और शासन व्यवस्था में सुधार के माध्यम से समझा जा सकता है।

कार्ल मार्क्स ने एशियाई समाजों की ऐतिहासिक संरचना को समझने के लिए एशियाई उत्पादन पद्धति की अवधारणा पर चर्चा की थी। इस दृष्टिकोण में भूमि, सामुदायिक संबंधों, कृषि और राज्य की भूमिका को महत्व दिया गया।

1.4.1 सिंधु घाटी सभ्यता: नगर नियोजन और व्यापार का विकास (The Indus Valley Civilization: Urban Planning and the Development of Trade)



सिंधु घाटी सभ्यता, जिसे हड़प्पा सभ्यता भी कहा जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप की प्राचीन नगरीय सभ्यताओं में से एक थी। इसका परिपक्व नगरीय चरण लगभग 2600 ईसा पूर्व से 1900 ईसा पूर्व के बीच माना जाता है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, धोलावीरा और लोथल इसके प्रमुख स्थलों में शामिल हैं। इस सभ्यता में विकास के कई महत्त्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं।

1. **नगर नियोजन (Town planning):** हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों में व्यवस्थित सड़कें, पकी ईंटों के मकान, नालियाँ तथा भवन निर्माण की योजनाबद्ध व्यवस्था थी। धौलावीरा में नगर के विभिन्न भागों का सुव्यवस्थित विभाजन दिखाई देता है।
2. **जल प्रबंधन (Water management):** कुओं, जल निकासी और जल संग्रह की व्यवस्थाएँ विकसित थी। धौलावीरा में जल संरक्षण से संबंधित संरचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
3. **कृषि और पशुपालन (Agriculture and animal husbandry):** कृषि लोगों की आजीविका का महत्त्वपूर्ण आधार थी। विभिन्न कृषि उत्पादों के साथ पशुपालन भी आर्थिक जीवन का हिस्सा था।

4. **शिल्प और तकनीक (Crafts and technology):** मिट्टी के बर्तन, मनके, आभूषण, मुहरें और ताँबे-काँसे की वस्तुएँ बनाई जाती थीं। शिल्पकारों के विशेष कौशल से उत्पादन के अलग-अलग रूप विकसित हुए थे।
5. **आंतरिक और विदेशी व्यापार (Internal and foreign trade):** विभिन्न हड़प्पाई बस्तियों के बीच कच्चे माल तथा तैयार वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक) के साथ भी व्यापारिक संबंधों के प्रमाण मिलते हैं।
6. **बाट और माप (Weights and measures):** मानकीकृत बाटों और माप प्रणालियों के प्रमाण व्यापार तथा वस्तुओं के आदान-प्रदान में व्यवस्था का संकेत देते हैं।

हड़प्पा सभ्यता की लिपि अभी तक निश्चित रूप से पढ़ी नहीं जा सकी है। इसलिए उस समय की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के अनेक पहलुओं के बारे में उपलब्ध जानकारी मुख्यतः पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर आधारित है।

1.4.2 वैदिक काल में आर्थिक गतिविधियाँ (Economic Activities during the Vedic Period)

वैदिक काल में कृषि, पशुपालन और ग्रामीण जीवन आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख आधार थे। प्रारंभिक वैदिक समाज में पशुधन का विशेष महत्त्व था। बाद के वैदिक काल में कृषि का महत्त्व बढ़ा और लोहे के उपकरणों के उपयोग ने कुछ क्षेत्रों में कृषि विस्तार को प्रोत्साहित किया।

इस काल में उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक और व्यावसायिक विभाजन भी विकसित हुए। वस्तुओं का विनिमय और स्थानीय व्यापार आर्थिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण हिस्से थे।

धातु-कार्य, वस्त्र निर्माण, मिट्टी के बर्तन और अन्य शिल्पों का विकास भी हुआ। चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति के पुरातात्त्विक अवशेष इस काल के कुछ क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति को समझने में सहायता करते हैं।

1.4.3 महाजनपदों और मौर्य काल में आर्थिक परिवर्तन (Economic Transformations during the Mahajanapada and Mauryan Periods)

लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में महाजनपदों के उदय के साथ नगरों, व्यापार और राजनीतिक संगठनों का विस्तार हुआ। इस काल में आहत सिक्कों के प्रचलन ने कुछ क्षेत्रों में व्यापारिक लेन-देन को सुविधाजनक बनाया। मौर्य साम्राज्य के उदय के बाद बड़े भूभाग पर राजनीतिक एकीकरण और प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के शासनकाल में प्रशासन, राजस्व संग्रह और संचार मार्गों का महत्व था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि, कर व्यवस्था, व्यापार, शिल्प, राज्य के आर्थिक दायित्वों और प्रशासन से संबंधित विषयों की चर्चा मिलती है। यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय राज्य और अर्थव्यवस्था को समझने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है, यद्यपि इसे अपने समय की सभी वास्तविक व्यवस्थाओं का सीधा विवरण नहीं मानना चाहिए। मौर्य काल में बौद्ध और जैन परंपराओं का भी विस्तार हुआ। मठों और धार्मिक केंद्रों ने कुछ क्षेत्रों में शिक्षा, कला तथा व्यापारिक संपर्कों के विकास में भूमिका निभाई। भारत से मध्य एशिया और एशिया के अन्य हिस्सों तक धार्मिक तथा सांस्कृतिक संपर्क बढ़े।

1.4.4 प्राचीन भारत में विकास की प्रमुख विशेषताएँ (Key Characteristics of Development in Ancient India)

प्राचीन भारत की आर्थिक स्थिति को निम्न बिंदुओं से समझा जा सकता है:

1. कृषि और पशुपालन आजीविका के प्रमुख आधार थे।
2. शिल्प उत्पादन तथा वस्त्र निर्माण का महत्त्व था।
3. नगरों और व्यापारिक मार्गों का विकास हुआ।

4. कुछ क्षेत्रों में मुद्रा, बाट और माप की व्यवस्थाएँ विकसित हुईं।
5. गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा तथा धातुकर्म में ज्ञान का विकास हुआ।
6. आर्थिक अवसरों और संसाधनों का वितरण सामाजिक स्थिति तथा क्षेत्रानुसार अलग-अलग था।

इस प्रकार प्राचीन भारत में विकास की प्रक्रिया अनेक क्षेत्रों में आगे बढ़ी, लेकिन इसका स्वरूप समय, स्थान और सामाजिक व्यवस्था के अनुसार बदलता रहा।

1.5 मध्यकालीन भारत और मुगल शासन की आर्थिक व्यवस्था (Medieval India and the Economic System under Mughal Rule)

मध्यकालीन भारत में विभिन्न राजवंशों के शासन के दौरान कृषि, राजस्व व्यवस्था, हस्तशिल्प, व्यापार, नगरों और स्थापत्य कला में परिवर्तन हुए। इस अवधि में भूमि से प्राप्त राजस्व राज्य की आय का महत्त्वपूर्ण स्रोत था। साथ ही, स्थानीय उत्पादकों, व्यापारियों और शिल्पकारों की भूमिका भी अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण बनी रही। मुगल साम्राज्य की स्थापना 1526 में बाबर ने की। इसके बाद साम्राज्य का विस्तार हुआ और प्रशासन, कृषि राजस्व तथा व्यापारिक गतिविधियों के विभिन्न रूप विकसित हुए।

1.5.1 मुगल शासन में प्रशासन और राजस्व व्यवस्था ((Administration and Revenue System under Mughal Rule)

मुगल शासन की एक प्रमुख विशेषता केंद्रीय सत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था थी। साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अधिकारियों के माध्यम से शासन चलाया जाता था। भूमि से प्राप्त राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था।

अकबर के शासनकाल में राजस्व व्यवस्था को व्यवस्थित करने के प्रयास हुए। टोडरमल का नाम भूमि मापन और राजस्व निर्धारण की व्यवस्था के संदर्भ में विशेष रूप से लिया जाता है। राजस्व व्यवस्था का उद्देश्य कृषि उत्पादन से राज्य की आय प्राप्त करना था। लेकिन किसानों पर इसका प्रभाव हमेशा एक जैसा नहीं था। फसल की स्थिति, क्षेत्रीय परिस्थितियों, स्थानीय अधिकारियों और कर वसूली के तरीकों के कारण किसानों की वास्तविक स्थिति अलग-अलग हो सकती थी।

1.5.2 कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Agriculture and the Rural Economy)

मुगल काल में अधिकांश लोगों की आजीविका कृषि पर निर्भर थी। गेहूँ, चावल, बाजरा और अन्य अनाजों के अतिरिक्त कपास, गन्ना, नील तथा विभिन्न तिलहनी फसलों की खेती होती थी। कृषि से प्राप्त उत्पादन ग्रामीण उपभोग के साथ-साथ शहरी बाजारों और हस्तशिल्प उद्योगों की आवश्यकताओं को भी पूरा करता था। उदाहरण के लिए, कपास वस्त्र निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण कच्चा माल थी। कृषि उत्पादन अनेक बाधाओं से प्रभावित होता था-

1. वर्षा पर निर्भरता और सिंचाई की सीमाएँ।
2. पारंपरिक कृषि उपकरणों और तकनीकों का उपयोग।
3. फसलों को प्राकृतिक आपदाओं और कीटों से होने वाला नुकसान।
4. भूमि राजस्व का बोझ।
5. विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन क्षमता और बाजार तक पहुँच का अंतर।

1.5.3 हस्तशिल्प और व्यापार का विकास (Development of Handicrafts and Trade)

मुगल काल में सूती वस्त्र, रेशम, कालीन, धातु की वस्तुएँ, आभूषण तथा अन्य हस्तशिल्प आर्थिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण अंग थे। आगरा, सूरत, अहमदाबाद, ढाका और बनारस जैसे नगर अलग-अलग प्रकार की उत्पादन तथा व्यापारिक गतिविधियों के लिए प्रसिद्ध हुए। इन केंद्रों में शिल्पकार, व्यापारी, परिवहन से जुड़े लोग और अन्य श्रमिक आर्थिक व्यवस्था में योगदान करते थे। भारतीय वस्त्रों

की माँग विदेशी बाजारों में भी थी। व्यापार के माध्यम से भारत के संबंध पश्चिम एशिया, यूरोप, अफ्रीका और एशिया के अन्य क्षेत्रों से बने हुए थे।

इस काल में व्यापारिक गतिविधियों का विस्तार होने के बावजूद आर्थिक लाभ समाज के सभी वर्गों में समान रूप से वितरित नहीं था। शासक वर्ग, बड़े व्यापारी और संपन्न समूह अधिक संसाधनों पर नियंत्रण रखते थे, जबकि अनेक किसान और श्रमिक सीमित साधनों के साथ जीवन व्यतीत करते थे।

1.6 ब्रिटिश शासन से पहले व्यापार और ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन (Trade Prior to British Rule and the Arrival of the East India Company)

भारत का विदेशी व्यापार यूरोपीय कंपनियों के आगमन से बहुत पहले से अस्तित्व में था। भारतीय व्यापारी अरब देशों, फारस, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया और अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापार करते थे। भारतीय सूती वस्त्र, रेशम, मसाले, नील और हस्तशिल्प की विदेशी बाजारों में माँग थी। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ इसी व्यापार से लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत आईं।

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी को 1600 में इंग्लैंड में व्यापार करने के लिए चार्टर प्रदान किया गया। प्रारंभ में इसका मुख्य उद्देश्य भारत से वस्तुएँ खरीदकर विदेशी बाजारों में बेचना था। बाद में कंपनी ने भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप बढ़ाया और सैन्य शक्ति के सहारे क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित करना शुरू किया। ब्रिटिश शासन के आर्थिक इतिहास को समझने के लिए इसे तीन प्रमुख चरणों में बाँटना उपयोगी है।

1.6.1 पहला चरण: व्यापारिक गतिविधियाँ (Phase One: Commercial Activities) (1600–1757)

इस अवधि में ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार से लाभ कमाना था। कंपनी भारतीय वस्त्र, रेशम, मसाले और अन्य वस्तुएँ खरीदकर विदेशों में बेचती थी। उस समय यूरोप में भारतीय वस्तुओं की पर्याप्त माँग थी। भारत में यूरोपीय निर्मित वस्तुओं की माँग तुलनात्मक रूप से सीमित होने के कारण कंपनी को भारतीय वस्तुओं की खरीद के लिए सोना-चाँदी सहित कीमती धातुएँ लानी पड़ती थीं।

इस चरण में कंपनी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा का हिस्सा थी। उसका राजनीतिक प्रभाव बढ़ रहा था, लेकिन अभी वह पूरे भारत पर शासन करने वाली शक्ति नहीं बनी थी।

1.6.2 दूसरा चरण: प्लासी के युद्ध के बाद कंपनी की सत्ता (Second Phase: Company's Power After the Battle of Plassey) (1757–1857)

1757 में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की पराजय के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी का राजनीतिक प्रभाव तेजी से बढ़ा। 1765 में कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, जिससे उसे राजस्व वसूलने की शक्ति मिली।

यह परिवर्तन अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। पहले कंपनी को भारतीय वस्तुएँ खरीदने के लिए व्यापारिक संसाधनों और विदेशी धन पर निर्भर रहना पड़ता था। अब वह भारतीय क्षेत्रों से प्राप्त राजस्व का उपयोग अपने व्यापार और प्रशासनिक गतिविधियों के लिए भी कर सकती थी। इस प्रकार व्यापारिक संस्था धीरे-धीरे राजनीतिक और राजस्व-संग्रह करने वाली शक्ति बन गई।

कंपनी की सत्ता के विस्तार से भारतीय किसानों, व्यापारियों और उत्पादकों के सामने नई परिस्थितियाँ पैदा हुईं। राजस्व नीतियों, व्यापारिक नियंत्रण और विदेशी निर्मित वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया।

1.6.3 तीसरा चरण: ब्रिटिश क्राउन का शासन (Third Phase: Rule of the British Crown) (1858–1947)

1857 के विद्रोह के बाद 1858 में भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रिटिश क्राउन के अधीन चला गया। इस अवधि में ब्रिटिश प्रशासन ने रेलवे, डाक, तार, आधुनिक न्यायालयों और शिक्षा संस्थानों जैसी व्यवस्थाओं का विस्तार किया। लेकिन इन व्यवस्थाओं का विकास औपनिवेशिक शासन की आवश्यकताओं से भी जुड़ा था।

रेलवे के माध्यम से कच्चे माल को बंदरगाहों तक पहुँचाना, सैनिकों की आवाजाही करना और प्रशासनिक नियंत्रण बनाए रखना आसान हुआ। दूसरी ओर, रेल परिवहन ने भारतीय बाजारों को भी जोड़ा और कुछ क्षेत्रों में व्यापार तथा यात्राओं को सुविधाजनक बनाया।

औपनिवेशिक काल के विकास का मूल्यांकन करते समय दो पक्षों को देखना चाहिए: एक ओर नई तकनीक और बुनियादी सुविधाओं का विस्तार, दूसरी ओर इनका औपनिवेशिक शासन और आर्थिक हितों से जुड़ा उपयोग।

1.7 औपनिवेशिक शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (The Impact of Colonial Rule on the Indian Economy)

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में कई संरचनात्मक परिवर्तन हुए। कृषि, उद्योग और विदेशी व्यापार पर इनका विशेष प्रभाव पड़ा। औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का उद्देश्य केवल भारत का विकास करना नहीं था, बल्कि ब्रिटिश शासन की आवश्यकताओं और ब्रिटेन के आर्थिक हितों को पूरा करना भी था। इस व्यवस्था में भारत से कच्चे माल का निर्यात बढ़ा और ब्रिटेन में निर्मित वस्तुओं के लिए भारतीय बाजार का महत्त्व बढ़ गया। इसके साथ ही भूमि राजस्व, ग्रामीण ऋण, हस्तशिल्प उद्योगों की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति और विदेशी व्यापार की दिशा में बदलाव हुए।

1.7.1 कृषि व्यवस्था में परिवर्तन और किसानों की स्थिति (Changes in the Agrarian System and the Condition of Farmers)

ब्रिटिश शासन से पहले भी भारतीय कृषि में अनेक समस्याएँ थीं। सिंचाई की कमी, वर्षा पर निर्भरता, पारंपरिक तकनीक और क्षेत्रीय असमानताएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित करती थीं। इसलिए यह मानना उचित नहीं है कि औपनिवेशिक शासन से पहले भारतीय कृषि में कोई समस्या नहीं थी।

ब्रिटिश शासन के दौरान भूमि राजस्व व्यवस्था में हुए परिवर्तन और सरकार की राजस्व संबंधी प्राथमिकताओं ने किसानों की कठिनाइयों को कई क्षेत्रों में बढ़ाया।

भूमि राजस्व व्यवस्थाएँ (Land Revenue Systems): ब्रिटिश शासन में स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी जैसी व्यवस्थाएँ लागू की गईं। इन व्यवस्थाओं में भूमि पर अधिकार, राजस्व निर्धारण और वसूली के तरीके अलग-अलग थे।

1. **स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement):** 1793 में लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय बंगाल के प्रमुख क्षेत्रों में लागू किया गया। इसमें जमींदारों के लिए सरकार को दिए जाने वाले भू-राजस्व की राशि स्थायी रूप से निर्धारित की गई।
2. **रैयतवाड़ी व्यवस्था (Ryotwari System):** इसमें सरकार का राजस्व संबंध सीधे किसान या खेत जोतने वाले से स्थापित किया जाता था। यह व्यवस्था मुख्यतः मद्रास और बंबई के अनेक क्षेत्रों में लागू हुई।
3. **महालवाड़ी व्यवस्था (Mahalwari System):** इसमें राजस्व निर्धारण की इकाई गाँव या महाल था। यह व्यवस्था उत्तर-पश्चिमी प्रांतों और कुछ अन्य क्षेत्रों में लागू की गई।

1.7.2 कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialization of Agriculture)

कृषि के व्यावसायीकरण का अर्थ है कि किसान केवल अपने परिवार या स्थानीय समुदाय की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन करने के बजाय बाजार में बेचने के उद्देश्य से भी फसलें उगाने लगें।

ब्रिटिश शासन के दौरान कपास, नील, जूट, चाय और अन्य नकदी फसलों का महत्व बढ़ा। औद्योगिक उत्पादन के लिए ब्रिटेन को कच्चे माल की आवश्यकता थी। दूसरी ओर, व्यापारिक बाजारों के विस्तार ने किसानों को बाजार की कीमतों से अधिक प्रभावित किया।

व्यावसायीकरण के कुछ लाभ भी थे। बाजार तक पहुँच होने पर किसानों को अपनी उपज बेचने और नकद आय अर्जित करने के अवसर मिल सकते थे। लेकिन इसके साथ जोखिम भी जुड़े थे।

1.7.3 भारतीय हस्तशिल्प और पारंपरिक उद्योगों पर प्रभाव (Impact on Indian Handicrafts and Traditional Industries)

भारत में सूती वस्त्र, रेशम, धातु के सामान, आभूषण, कालीन, मिट्टी के बर्तन और अन्य हस्तशिल्प का लंबा इतिहास था। इन उद्योगों से जुड़े अनेक कारीगर ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था का हिस्सा थे।

औद्योगिक क्रांति के बाद ब्रिटेन में मशीनों से बड़े पैमाने पर वस्त्र उत्पादन होने लगा। मशीनों से बने कई उत्पाद कम लागत पर तैयार किए जा सकते थे। इससे भारतीय हस्त निर्मित वस्तुओं को कुछ बाजारों में प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त, औपनिवेशिक व्यापार नीतियों, ब्रिटिश निर्माताओं के हितों और भारतीय उद्योगों को पर्याप्त संरक्षण न मिलने ने भी पारंपरिक उत्पादन को प्रभावित किया।

इसके प्रमुख परिणाम निम्नलिखित थे-

1. कुछ पारंपरिक उद्योगों और शिल्पों की बाजार स्थिति कमजोर हुई।
2. अनेक कारीगरों की आय और रोजगार प्रभावित हुए।
3. कुछ कारीगरों ने कृषि या अन्य कार्यों की ओर रुख किया।
4. कुछ पारंपरिक उत्पादन केंद्रों का आर्थिक महत्त्व कम हुआ।
5. भारत में आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ, लेकिन लंबे समय तक उसका विस्तार सीमित और असमान रहा।

1.7.4 विदेशी व्यापार की दिशा में परिवर्तन (Shifts in the Direction of Foreign Trade)

ब्रिटिश शासन से पहले भारत का विदेशी व्यापार कई क्षेत्रों और देशों से जुड़ा था। भारतीय वस्त्रों, मसालों, रेशम और अन्य उत्पादों की विदेशी बाजारों में माँग थी।

औपनिवेशिक काल में ब्रिटेन के साथ भारत के व्यापारिक संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए। भारत से कच्चे माल का निर्यात और ब्रिटेन में बने औद्योगिक उत्पादों का आयात औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं में शामिल हो गया। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना और विदेशी बाजारों पर निर्भरता प्रभावित हुई।

विदेशी व्यापार के प्रमुख प्रभाव थे:

1. भारतीय उत्पादों के लिए कुछ पारंपरिक विदेशी बाजारों में परिवर्तन।
2. ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति में भारत की भूमिका।
3. ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के लिए भारतीय बाजार का विस्तार।
4. निर्यात और आयात की संरचना में बदलाव।
5. भारतीय संसाधनों और विदेशी व्यापार से प्राप्त आय के उपयोग को लेकर विवाद।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर समझना आवश्यक है: व्यापार का होना अपने आप में शोषण का प्रमाण नहीं है। आर्थिक शोषण का प्रश्न तब उठता है जब व्यापारिक और राजनीतिक व्यवस्था के कारण लाभ, संसाधनों और निर्णय लेने की शक्ति का वितरण असमान हो तथा एक पक्ष को पर्याप्त प्रतिफल न मिले।

1.7.5 औपनिवेशिक शासन में बुनियादी सुविधाओं का विकास (Development of Infrastructure under Colonial Rule)

ब्रिटिश शासन के दौरान रेलवे, सड़क, तार, डाक, बंदरगाह, आधुनिक न्यायालय और शिक्षा संस्थानों का विस्तार हुआ। भारत में पहली यात्री रेलगाड़ी 1853 में बंबई से ठाणे के बीच चली। 1857 में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित किए गए।

इन सुविधाओं से प्रशासन, व्यापार, संचार और लोगों की आवाजाही में परिवर्तन आया। रेलवे ने विभिन्न क्षेत्रों के बाजारों को जोड़ा तथा कुछ स्थानों पर कृषि उत्पादों को दूरस्थ बाजारों तक पहुँचाना आसान बनाया। लेकिन इन सुविधाओं के विकास की सीमाएँ भी थी। रेलवे मार्गों और बंदरगाहों के विकास में औपनिवेशिक व्यापार तथा सैनिक आवश्यकताओं का महत्व था। उच्च शिक्षा तक पहुँच सीमित थी और शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप भी औपनिवेशिक प्रशासन की आवश्यकताओं से प्रभावित था। बुनियादी सुविधाओं का विकास हुआ, परंतु उनका लाभ और उपयोग सभी वर्गों तथा क्षेत्रों तक समान रूप से नहीं पहुँचा।

1.8 धन-निकासी का सिद्धांत (The Theory of the 'Drain of Wealth')

धन-निकासी का सिद्धांत भारतीय राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित एक महत्त्वपूर्ण विचार था। इसके अनुसार, ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के संसाधनों और आय का एक हिस्सा ब्रिटेन को इस प्रकार हस्तांतरित किया जा रहा था कि उसके बदले भारत को समान आर्थिक लाभ या पर्याप्त प्रतिफल नहीं मिलता था। उदाहरण के लिए, यदि भारत में एकत्र किए गए राजस्व का उपयोग ब्रिटेन में अधिकारियों की पेंशन, प्रशासनिक खर्चों या अन्य भुगतान के लिए किया जाता था, तो राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री इस प्रकार के हस्तांतरण के आर्थिक औचित्य पर प्रश्न उठाते थे। उनके अनुसार, यदि यही संसाधन भारत में निवेश किए जाते, तो उनसे सिंचाई, शिक्षा, उद्योग, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर बढ़ाने में सहायता मिल सकती थी।

1.8.1 धन-निकासी के विचार का विकास (Evolution of the Concept of the 'Drain of Wealth')

धन-निकासी के विचार का विकास एक ही व्यक्ति द्वारा एक समय में नहीं हुआ। विभिन्न भारतीय और ब्रिटिश विचारकों ने औपनिवेशिक शासन के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया।

1. **अलेक्जेंडर डॉव (Alexander Dov):** उन्होंने बंगाल की आर्थिक स्थिति और ब्रिटिश शासन के प्रभावों पर विचार किया। उनके लेखन को इस विषय पर आरंभिक चर्चाओं में गिना जाता है।
2. **एडमंड बर्क (Admond Buck):** उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन और भारत में उसके आचरण की आलोचना की। ब्रिटिश संसद में उनके वक्तव्यों ने औपनिवेशिक शासन की जवाबदेही का प्रश्न उठाया।
3. **फिलिप फ्रांसिस (Filip Francis):** उन्होंने भारत से होने वाले आर्थिक हस्तांतरण के विभिन्न रूपों पर चर्चा की।
4. **भास्कर तारखड़कर (Bhaskar Tarkhakar):** भारतीय पत्रकारों और शुरुआती आलोचकों में उनका नाम लिया जाता है, जिन्होंने ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के प्रभावों पर प्रश्न उठाए।
5. **दादाभाई नौरोजी (Daadabhai Nauroji):** उन्होंने धन-निकासी के सिद्धांत को व्यवस्थित रूप दिया और भारत की गरीबी को ब्रिटिश शासन के दौरान होने वाले आर्थिक हस्तांतरण से जोड़ा।

6. **महादेव गोविंद रानाडे (Mahadev Govind Ranaday): उन्होंने** भारतीय उद्योगों की स्थिति, विदेशी व्यापार और आर्थिक विकास की समस्याओं पर विचार किया।
7. **रोमेश चंद्र दत्त (Romeshchandra Dutt):** उन्होंने भारतीय कृषि, राजस्व व्यवस्था, अकाल और औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का ऐतिहासिक विश्लेषण किया।

1.8.2 दादाभाई नौरोजी का योगदान (The Contribution of Dadabhai Naoroji)

दादाभाई नौरोजी (1825-1917) धन-निकासी के सिद्धांत के प्रमुख प्रवर्तक थे। उन्होंने तर्क दिया कि भारत की गरीबी को केवल भारतीय समाज की आंतरिक कमियों से नहीं समझा जा सकता। इसके लिए ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों और भारत से ब्रिटेन की ओर होने वाले आय के हस्तांतरण का अध्ययन करना आवश्यक है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "Poverty and Un-British Rule in India" 1901 में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने भारत की गरीबी, ब्रिटिश शासन और आर्थिक संसाधनों के हस्तांतरण के संबंध पर विस्तार से चर्चा की। नौरोजी का तर्क था कि भारत में उत्पन्न आय का एक हिस्सा देश के भीतर पुनर्निवेशित होने के बजाय ब्रिटेन चला जाता था। इससे भारत की पूँजी निर्माण की क्षमता प्रभावित हो सकती थी। धन-निकासी का प्रश्न केवल धन के एक देश से दूसरे देश में जाने का प्रश्न नहीं था। इसका संबंध इस बात से भी था कि भारत के संसाधनों का उपयोग कहाँ हो रहा था और भारतीय जनता को उनके उपयोग से कितना लाभ मिल रहा था।

1.8.3 धन-निकासी के प्रमुख माध्यम (Primary Channels of the 'Drain of Wealth')

औपनिवेशिक भारत से ब्रिटेन की ओर आर्थिक संसाधनों के हस्तांतरण के प्रमुख माध्यम निम्नलिखित माने जाते हैं।

1. **कंपनी के व्यापार और राजस्व का उपयोग (Utilization of the company's business and revenue):** बंगाल में राजस्व अधिकार मिलने के बाद कंपनी भारतीय संसाधनों का उपयोग अपनी व्यापारिक गतिविधियों के लिए कर सकती थी। इससे व्यापार और राजनीतिक सत्ता के बीच संबंध बदल गया।
2. **ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन और पेंशन (Salaries and pensions of British officials):** भारत में कार्यरत ब्रिटिश अधिकारियों की आय का एक हिस्सा ब्रिटेन भेजा जाता था। सेवानिवृत्ति के बाद दिए जाने वाले भुगतान भी इस चर्चा का हिस्सा थे।
3. **ब्रिटेन में किए जाने वाले सरकारी भुगतान (Government payments made in Britain):** ब्रिटिश भारत सरकार के कुछ प्रशासनिक और अन्य खर्चों का भुगतान ब्रिटेन में किया जाता था। इन भुगतानों को प्रायः होम चार्जेस कहा जाता है। इनके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के खर्च शामिल थे, जिनकी प्रकृति समय के साथ बदलती रही।
4. **निजी आय और मुनाफे का हस्तांतरण (Remittance of private income and profits):** भारत में कार्यरत ब्रिटिश व्यापारियों, कंपनियों और निवेशकों द्वारा अर्जित आय का कुछ हिस्सा ब्रिटेन भेजा जाता था।
5. **विदेशी व्यापार से प्राप्त अधिशेष का उपयोग (Use of the surplus derived from foreign trade):** भारत के निर्यात का मूल्य कई अवधियों में आयात के मूल्य से अधिक रहा। राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने प्रश्न उठाया कि इस अधिशेष के बदले प्राप्त भुगतान का उपयोग कहाँ हो रहा था और उसका कितना लाभ भारतीय अर्थव्यवस्था को मिल रहा था।

1.8.4 धन-निकासी के आर्थिक प्रभाव (Economic Consequences of the 'Drain of Wealth')

धन-निकासी के सिद्धांत के अनुसार, औपनिवेशिक शासन के दौरान संसाधनों के बाहरी हस्तांतरण के कई संभावित परिणाम हुए।

1. भारत में उपलब्ध बचत और निवेश योग्य संसाधनों पर दबाव पड़ा।
2. भारतीय उद्योगों के विकास के लिए उपलब्ध पूँजी सीमित हो सकती थी।
3. शिक्षा, स्वास्थ्य और सिंचाई जैसी सुविधाओं के लिए घरेलू संसाधनों के उपयोग पर प्रभाव पड़ा।
4. औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों के कारण भारत की उत्पादन संरचना ब्रिटिश हितों के अनुरूप बदल सकती थी।
5. भारत की गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन को लेकर राष्ट्रवादी आलोचना को आधार मिला।

आर्थिक इतिहासकार इस बात पर बहस करते हैं कि धन-निकासी का कुल परिमाण कितना था, उसके अलग-अलग घटकों का प्रभाव कितना था और भारत की आर्थिक स्थिति में आए बदलावों के लिए किन अन्य कारणों को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसीलिए ऐतिहासिक प्रमाणों, राष्ट्रीय आय के अनुमानों और औपनिवेशिक नीतियों का संयुक्त अध्ययन आवश्यक है।

1.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. .....का अर्थ केवल किसी देश की आय बढ़ना नहीं है। इसका व्यापक अर्थ लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाना है।

(विकास **अथवा** वृद्धि)

2. .....के अर्थशास्त्र में कृषि, कर व्यवस्था, व्यापार, शिल्प, राज्य के आर्थिक दायित्वों और प्रशासन से संबंधित विषयों की चर्चा मिलती है।

(कौटिल्य **अथवा** टोडरमल)

3. .....में कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में दीवानी अधिकार प्राप्त हुए, जिससे उसे राजस्व वसूलने की शक्ति मिली।

(1765 **अथवा** 1757)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. ब्रिटिश शासन में स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी जैसी व्यवस्थाएँ भू राजस्व के लिए अपनाई गईं।

(सत्य **अथवा** असत्य)

2. दादाभाई नौरोजी की किताब Un-British rule in India मुख्यतः राष्ट्र के धन निर्माण के विषय में है।

(सत्य **अथवा** असत्य)

1.10 सारांश (Summary)

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में विकास की प्रक्रिया प्राचीन सभ्यताओं से शुरू होकर विभिन्न राजवंशों और औपनिवेशिक शासन के दौरान अलग-अलग रूपों में आगे बढ़ी। सिंधु घाटी सभ्यता में नगर नियोजन, जल निकासी, शिल्प और व्यापार का विकास दिखाई देता है। महाजनपदों तथा मौर्य काल में प्रशासन, कृषि, व्यापार और मुद्रा के महत्त्व में वृद्धि हुई। मध्यकालीन भारत में कृषि, हस्तशिल्प, व्यापार और स्थापत्य कला विकसित हुए। मुगल काल में राजस्व व्यवस्था और व्यापारिक गतिविधियाँ महत्त्वपूर्ण थी, लेकिन सामाजिक असमानता और कृषि संबंधी कठिनाइयाँ भी मौजूद थीं।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में बड़े परिवर्तन हुए। भूमि राजस्व व्यवस्थाओं, कृषि के व्यावसायीकरण, विदेशी व्यापार और मशीनों से बने उत्पादों की प्रतिस्पर्धा ने कृषि तथा पारंपरिक उद्योगों को प्रभावित किया। दूसरी ओर, रेलवे, संचार और कुछ आधुनिक संस्थानों का विस्तार भी हुआ।

दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे और रोमेश चंद्र दत्त जैसे भारतीय विचारकों ने औपनिवेशिक शासन के आर्थिक प्रभावों की आलोचना की। धन-निकासी के सिद्धांत ने इस प्रश्न को केंद्र में रखा कि भारत में उत्पन्न आर्थिक संसाधनों का कितना लाभ भारतीय जनता को मिल रहा था और कितना ब्रिटेन की ओर स्थानांतरित हो रहा था।

इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व भारत के विकास का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि आर्थिक विकास केवल उत्पादन बढ़ने का विषय नहीं है। इसका संबंध राजनीतिक सत्ता, संसाधनों के वितरण, रोजगार, तकनीक, सामाजिक न्याय और आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता से भी है।

1.11 शब्दावली (Glossary)

- **एशियाई उत्पादन पद्धति (Asian mode of production):** कार्ल मार्क्स से जुड़ी अवधारणा, जिसका उपयोग कुछ एशियाई समाजों की ऐतिहासिक उत्पादन व्यवस्था और राज्य-संबंधों की व्याख्या के लिए किया गया।
- **जजमानी व्यवस्था (Jajmani system):** परंपरागत ग्रामीण समाज में विभिन्न पेशागत समूहों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान की व्यवस्था।
- **जमींदारी व्यवस्था (Zamindari system):** भूमि राजस्व संग्रह में जमींदारों की भूमिका वाली व्यवस्था। ब्रिटिश शासन में बंगाल में स्थायी बंदोबस्त इसके एक प्रमुख रूप से जुड़ा था।
- **कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialization of agriculture):** बाजार में बिक्री और नकद आय प्राप्त करने के उद्देश्य से कृषि उत्पादन का विस्तार।
- **औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था (Colonial economy):** ऐसी आर्थिक व्यवस्था जिसमें किसी बाहरी राजनीतिक शक्ति का नियंत्रण स्थानीय संसाधनों, उत्पादन या व्यापार की दिशा को प्रभावित करता है।
- **धन-निकासी (Drain of Wealth):** पर्याप्त प्रतिफल के बिना एक देश से दूसरे देश की ओर आर्थिक संसाधनों और आय का हस्तांतरण।
- **होम चार्जेस (Home Charges):** ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा ब्रिटेन में किए जाने वाले विभिन्न सरकारी भुगतानों के लिए प्रयुक्त ऐतिहासिक शब्द।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. विकास 2. कौटिल्य 3. 1765

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2. असत्य

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

- Dadabhai Naoroji (1901), Poverty and Un-British Rule in India.
- Dutt, R. C. (1902). The Economic History of India under Early British Rule. Kegan Paul, Trench, Trübner & Co.

- Kumar, D. (Ed.). (1982). The Cambridge Economic History of India, Volume 2: c. 1757–c. 1970. Cambridge University Press.
- Chandra, B. (1966). The Rise and Growth of Economic Nationalism in India: Economic Policies of Indian National Leadership, 1880–1905. People's Publishing House.
- Gupta, B. (2025). An Economic History of India. Cambridge University Press.

1.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- Dadabhai Naoroji (1901), Poverty and Un-British Rule in India.
- Romesh Chunder Dutt (1906), The Economic History of India in the Victorian Age.
- Dharma Kumar, ed. (1983), The Cambridge Economic History of India.
- Angus Maddison (1971), Class Structure and Economic Growth: India and Pakistan since the Mughals.
- J. V. Naik (2001), “Forerunners of Dadabhai Naoroji’s Drain Theory,” Economic and Political Weekly.
- Tirthankar Roy (2020), The Economic History of India, 1857–2010.
- INFLIBNET academic materials on Harappan trade and urban planning.

1.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. विकास से क्या अभिप्राय है? सिंधु घाटी सभ्यता की प्रमुख आर्थिक एवं तकनीकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. ब्रिटिश शासन की आर्थिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं के भारतीय कृषि पर पड़े प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
3. ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय पारंपरिक उद्योगों के पतन के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
4. धन-निकासी का सिद्धांत क्या है? इसके तीन प्रमुख समर्थकों के नाम बताते हुए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में इसके महत्व की व्याख्या कीजिए।

इकाई 2: पूर्व उदारीकरण अवधि के दौरान विकास की पहल

(Development Initiatives during Pre-Liberalization Period)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 उद्देश्य (Objective)

2.3 स्वतंत्रता-पूर्व आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि (Background of Pre-Independence Economic Development)

2.4 भारत में आर्थिक नियोजन का विकास (Evolution of Economic Planning in India)

2.5 पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की पहलें (Development Initiatives in Five-Year Plans)

2.6 औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

2.7 उदारीकरण-पूर्व विकास मॉडल की उपलब्धियाँ और सीमाएँ (Achievements and Limitations of the Pre-liberalization Development Model)

2.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

2.9 सारांश (Summary)

2.10 शब्दावली (Glossary)

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

2.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में हमने जाना कि स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था किस प्रकार कार्य कर रही थी तथा औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों ने कृषि, उद्योग, व्यापार और भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया। अब इस इकाई में हम समझेंगे कि स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक नियोजन के लिए प्रस्तुत विभिन्न विचारों और प्रयासों को आगे बढ़ाते हुए स्वतंत्र भारत में नियोजित विकास की शुरुआत कैसे हुई। साथ ही, यह भी जानेंगे कि स्वतंत्रता के बाद बनाए गए नए नियमों, कानूनों, औद्योगिक नीतियों और नियामक संस्थाओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा को किस प्रकार निर्धारित किया।

स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने केवल उत्पादन और राष्ट्रीय आय बढ़ाने की चुनौती नहीं थी, बल्कि गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता और क्षेत्रीय विषमताओं को कम करते हुए विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाना भी आवश्यक था। इसी उद्देश्य से पंचवर्षीय योजनाओं, औद्योगिक नीति, बैंक राष्ट्रीयकरण, कृषि विकास कार्यक्रमों तथा विभिन्न सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से विकास की एक व्यापक रणनीति अपनाई गई।

इस इकाई में हम भारत में आर्थिक नियोजन के विकास, उसके प्रमुख उद्देश्यों तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत की गई विकास पहलों का अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही, औद्योगिक नीति, और अन्य महत्त्वपूर्ण नीतिगत प्रयासों को समझेंगे। हम यह भी विश्लेषण करेंगे कि इन पहलों ने आर्थिक विकास और समावेशी विकास को बढ़ावा देने में किस प्रकार योगदान दिया।

2.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक नियोजन के विचारों तथा स्वतंत्र भारत में नियोजित विकास की शुरुआत को समझ सकेंगे।
- भारत में आर्थिक नियोजन के विकास और उसके प्रमुख उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की विकास प्राथमिकताओं और प्रमुख उपलब्धियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- आर्थिक विकास तथा समावेशी विकास के बीच संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।
- गरीबी, बेरोजगारी, क्षेत्रीय असमानता और आर्थिक असंतुलन जैसी चुनौतियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।
- प्रारंभिक आर्थिक नीतिगत परिवर्तनों की उपलाब्धियों एवं चुनौतियों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.3 स्वतंत्रता-पूर्व आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि (Background of Pre-Independence Economic Development)

आर्थिक नियोजन का अर्थ है उपलब्ध संसाधनों, पूँजी, श्रम, तकनीक और प्राकृतिक साधनों का इस प्रकार उपयोग करना कि निर्धारित सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। नियोजन में सरकार प्राथमिकताएँ तय करती है संसाधनों के उपयोग की दिशा निर्धारित करती है और विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए संस्थागत व्यवस्था विकसित करती है।

स्वतंत्रता के समय भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर थी। औद्योगिक विकास सीमित था, आधुनिक आधारभूत संरचना का विस्तार असमान था तथा गरीबी और बेरोजगारी व्यापक थीं। ऐसी स्थिति में केवल बाजार की शक्तियों पर निर्भर रहकर विकास की सभी समस्याओं को दूर करना कठिन माना गया। इसलिए स्वतंत्र भारत ने आर्थिक नियोजन को विकास का एक प्रमुख साधन बनाया।

भारत में नियोजन संबंधी शुरुआती विचार और प्रयास (Early thoughts and endeavors on planning in India): स्वतंत्रता से पहले ही भारतीय विचारकों, उद्योगपतियों और राजनीतिक नेताओं ने भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए योजनाबद्ध प्रयासों की आवश्यकता पर बल दिया था।

भारत में आर्थिक नियोजन का विकास
1934 : एम. विश्वेश्वरैया द्वारा दस वर्षीय नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रस्ताव
1938 : राष्ट्रीय नियोजन समिति अध्यक्ष: जवाहरलाल नेहरू
1944 : बॉम्बे योजना (Bombay Plan) - प्रमुख 8 भारतीय उद्योगपतियों द्वारा प्रस्तुत
1944 : गांधीवादी योजना (Gandhian Plan) प्रस्तुतकर्ता: श्रीमन नारायण अग्रवाल
1945 : पीपुल्स प्लान (People's Plan) प्रस्तुतकर्ता: एम.एन. रॉय
1946 : नियोजन सलाहकार बोर्ड नियोजन की संस्थागत व्यवस्था की दिशा में प्रयास
15 मार्च 1950 : योजना आयोग की स्थापना प्रथम अध्यक्ष: जवाहरलाल नेहरू
1951–1956 : प्रथम पंचवर्षीय योजना

एम. विश्वेश्वरैया की योजना, 1934- एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक Planned Economy for India में औद्योगीकरण और उत्पादन वृद्धि पर जोर दिया। उनका विचार था कि भारत की आर्थिक प्रगति के लिए आधुनिक उद्योगों, तकनीकी क्षमता और उत्पादन के विस्तार की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय योजना समिति, 1938- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति गठित की। इसका उद्देश्य देश की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करके विकास के लिए योजनाबद्ध सुझाव प्रस्तुत करना था। समिति ने औद्योगीकरण, वैज्ञानिक विकास और जनता के जीवन स्तर में सुधार को महत्त्व दिया।

बॉम्बे योजना, (Bombay Plan) 1944: प्रमुख भारतीय उद्योगपतियों द्वारा प्रस्तुत इस योजना में औद्योगिक विकास, सार्वजनिक निवेश और आधारभूत संरचना के विस्तार के लिए राज्य की सक्रिय भूमिका का समर्थन किया गया। इससे स्पष्ट हुआ कि आर्थिक नियोजन की आवश्यकता केवल राजनीतिक नेताओं तक सीमित नहीं थी उद्योग जगत के कुछ प्रमुख सदस्य भी इसे आवश्यक मानते थे।

गांधीवादी योजना और पीपुल्स प्लान- गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित योजनाओं में ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कुटीर उद्योग, विकेंद्रीकरण और स्थानीय आवश्यकताओं पर बल दिया गया। एम. एन. रॉय से संबद्ध पीपुल्स प्लान में उत्पादन के साधनों और संसाधनों के उपयोग को आम जनता के हितों से जोड़ने पर जोर था।

इन विचारों में मतभेद थे। कुछ विचारक बड़े उद्योगों और आधुनिक तकनीक को प्राथमिकता देते थे, जबकि दूसरे ग्रामीण उद्योगों और विकेंद्रीकृत विकास को अधिक महत्त्व देते थे। फिर भी इन प्रयासों ने स्वतंत्र भारत में नियोजित विकास की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की। 1946 में नियोजन सलाहकार बोर्ड ने नियोजन की संस्थागत व्यवस्था की दिशा में प्रयास किया इस प्रकार यह एक संस्थागत प्रयास था।

2.4 भारत में आर्थिक नियोजन का विकास (Evolution of Economic Planning in India)

स्वतंत्रता के बाद नियोजित विकास की आवश्यकता और अर्थव्यवस्था की दिशा तय करने के लिए एवं स्वतंत्रता उपरांत भारत के सामने कृषि सम्बंधित, औद्योगिक पिछड़ापन, गरीबी और बेरोजगारी, आधारभूत संरचना की कमी, क्षेत्रीय असमानता, एवं सामाजिक असमानता आदि अनेक चुनौतियाँ के समाधान के लिए नियोजन का मार्ग अपनाया गया ।

इन परिस्थितियों में सरकार ने यह आवश्यक समझा कि सीमित संसाधनों का उपयोग प्राथमिकताओं के अनुसार किया जाए। इसी सोच से स्वतंत्र भारत में आर्थिक नियोजन, पंचवर्षीय योजनाओं और सार्वजनिक निवेश की व्यवस्था विकसित हुई। 15 मार्च 1950 को योजना आयोग की स्थापना हुई। इसका प्रमुख कार्य देश के संसाधनों का आकलन करना, विकास की प्राथमिकताएँ निर्धारित करना, पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण करना और योजनाओं के क्रियान्वयन की समीक्षा करना था। योजना आयोग ने कृषि, उद्योग, ऊर्जा, परिवहन, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों के लिए विकास संबंधी प्राथमिकताओं को एक व्यापक राष्ट्रीय योजना में जोड़ने का प्रयास किया। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सरकार यह निर्धारित करती थी कि सीमित वित्तीय संसाधनों को किन क्षेत्रों में और किस अनुपात में लगाया जाए।

नियोजन का अर्थ यह नहीं था कि अर्थव्यवस्था की प्रत्येक गतिविधि सीधे सरकार द्वारा संचालित की जाए। भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों को भूमिका दी गई। हालाँकि भारी उद्योग, आधारभूत संरचना और कुछ रणनीतिक क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र को विशेष महत्त्व मिला।

राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council-NDC) की स्थापना 1952 में हुई। इसका उद्देश्य केंद्र और राज्यों के बीच विकास संबंधी विषयों पर समन्वय स्थापित करना तथा राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में व्यापक सहमति को प्रोत्साहित करना था। भारत में विकास की आवश्यकताएँ राज्यों के अनुसार अलग-अलग थीं। कहीं सिंचाई और कृषि विकास की आवश्यकता अधिक थी, तो कहीं औद्योगीकरण, परिवहन अथवा शिक्षा के विस्तार की। इसलिए राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और राज्यों की आवश्यकताओं के बीच समन्वय आवश्यक था। राष्ट्रीय विकास परिषद ने नियोजन प्रक्रिया को केंद्र सरकार तक सीमित न रखते हुए राज्यों की भागीदारी को महत्त्व देने का मंच प्रदान किया।

2.5 पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की पहलें (Development Initiatives in Five-Year Plans)

पंचवर्षीय योजनाएँ भारत के नियोजित विकास मॉडल का प्रमुख साधन थी। प्रत्येक योजना में उस समय की आर्थिक समस्याओं, उपलब्ध संसाधनों और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार अलग-अलग क्षेत्रों पर जोर दिया गया।

क) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1956)

प्रथम पंचवर्षीय योजना स्वतंत्र भारत की आर्थिक समस्याओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई थी। विभाजन के कारण उत्पन्न खाद्यान्न की कमी, शरणार्थियों के पुनर्वास, महँगाई, कृषि की कम उत्पादकता और आधारभूत संरचना की कमी को दूर करना इसकी प्रमुख प्राथमिकताएँ थीं। इस योजना में कृषि, सिंचाई, बिजली और परिवहन को विशेष महत्त्व दिया गया। कृषि उत्पादन बढ़ाना इसलिए आवश्यक था क्योंकि खाद्यान्न की उपलब्धता जनजीवन, कीमतों और औद्योगिक विकास-तीनों को प्रभावित करती थी। भाखड़ा - नांगल जैसी बहुउद्देशीय परियोजनाओं तथा सिंचाई सुविधाओं के विस्तार से कृषि और बिजली उत्पादन की क्षमता बढ़ाने का प्रयास किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को भी ग्रामीण जीवन में सुधार के व्यापक प्रयास के रूप में आगे बढ़ाया गया। इस प्रकार दीर्घकालिक समावेशी विकास की नीव के साथ नियोजन भारत के विकास को जमीन देते हुए विकसित हुआ।

ख) द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–1961)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तीव्र औद्योगीकरण को केंद्रीय स्थान दिया गया। इस योजना की रणनीति अर्थशास्त्री पी. सी. महालनोबिस के विचारों से प्रभावित थी। भारी उद्योगों, मशीन निर्माण और पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को दीर्घकालीन विकास तथा आत्मनिर्भरता के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया। भारत को ऐसी औद्योगिक क्षमता विकसित करनी थी जिससे वह केवल उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन न करे, बल्कि मशीनें, इस्पात और अन्य औद्योगिक उपकरण भी बना सके। इस उद्देश्य से सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश बढ़ाया गया। भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर इस्पात संयंत्रों जैसे बड़े औद्योगिक उपक्रमों ने देश की औद्योगिक क्षमता के निर्माण में योगदान दिया। मशीन निर्माण, कोयला, बिजली, इंजीनियरिंग और भारी उद्योगों के विकास को भी प्रोत्साहन मिला। इस योजना के साथ 1956 का औद्योगिक नीति संकल्प भी महत्त्वपूर्ण था, जिसने सार्वजनिक क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के रणनीतिक और आधारभूत क्षेत्रों में प्रमुख भूमिका दी।

भारी उद्योगों पर जोर देने से पूँजी की आवश्यकता बढ़ी। मशीनों और तकनीक के आयात के कारण विदेशी मुद्रा पर दबाव पड़ा। कृषि उत्पादन की वृद्धि औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं के साथ हमेशा तालमेल नहीं रख सकी। इससे स्पष्ट हुआ कि औद्योगीकरण के लिए कृषि, खाद्यान्न और विदेशी व्यापार की स्थिति भी मजबूत होना आवश्यक है।

ग) तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–1966)

तृतीय पंचवर्षीय योजना का प्रमुख उद्देश्य भारत को आत्मनिर्भर और स्व-स्फूर्त विकास की दिशा में आगे बढ़ाना था। इस योजना में कृषि तथा उद्योग दोनों के विकास पर जोर दिया गया। कृषि उत्पादन में वृद्धि इसलिए आवश्यक थी ताकि बढ़ती आबादी की खाद्यान्न आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और औद्योगिक विकास के लिए स्थिर आर्थिक आधार तैयार हो। सिंचाई, बिजली, उर्वरक और औद्योगिक क्षमता का विस्तार भी महत्त्वपूर्ण था। लेकिन इस योजना को गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। 1962 के भारत-चीन युद्ध, 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध और 1965–66 के सूखे ने संसाधनों पर दबाव बढ़ाया। रक्षा व्यय की आवश्यकता बढ़ी और कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप योजना के विकास लक्ष्यों को पूरा करना कठिन हुआ। विकास की रणनीति को केवल औद्योगिक निवेश तक सीमित नहीं रखा जा सकता। खाद्य सुरक्षा, कृषि उत्पादकता, बाहरी सुरक्षा और वित्तीय स्थिरता भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

वार्षिक योजनाएँ (योजना अवकाश) और हरित क्रांति (1966–1969)

तृतीय योजना की कठिनाइयों के बाद 1966-1969 के दौरान तीन वार्षिक योजनाएँ लागू की गईं। इस अवधि को सामान्यतः योजना अवकाश भी कहा जाता है। यह पंचवर्षीय योजनाओं के बीच एक

ऐसा समय था जब तत्काल आर्थिक समस्याओं से निपटने पर अधिक जोर दिया गया। इस अवधि में कृषि को विशेष प्राथमिकता मिली। उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई, कृषि अनुसंधान और वैज्ञानिक खेती की पद्धतियों को बढ़ावा दिया गया।

1966 में उच्च उपज वाली किस्मों का कार्यक्रम शुरू हुआ। गेहूँ और चावल जैसी फसलों में बेहतर किस्मों और सहायक कृषि निवेशों के प्रयोग ने हरित क्रांति की नींव रखी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के ऐतिहासिक विवरण में 1966 के उच्च उपज किस्म कार्यक्रम तथा 1967-68 में गेहूँ उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि का उल्लेख मिलता है। हरित क्रांति ने विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने में मदद की जहाँ सिंचाई, उर्वरक और संस्थागत समर्थन उपलब्ध था। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश इसके प्रमुख लाभार्थी क्षेत्रों में शामिल रहे। हालाँकि, हरित क्रांति का लाभ सभी फसलों और क्षेत्रों में समान रूप से नहीं पहुँचा। सिंचित क्षेत्रों और संसाधन-संपन्न किसानों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ मिला, जबकि वर्षा- आधारित कृषि, छोटे किसानों और कुछ पिछड़े क्षेत्रों की समस्याएँ बनी रहीं। इसलिए खाद्यान्न उत्पादन में सफलता को समावेशी कृषि विकास के बराबर नहीं माना जा सकता।

घ) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–1974)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ स्थिरता और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना था। इस अवधि में कृषि उत्पादन, औद्योगिक क्षमता और सामाजिक न्याय से जुड़े मुद्दों पर ध्यान दिया गया। जुलाई 1969 में 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इसका उद्देश्य बैंकिंग संसाधनों को कुछ बड़े औद्योगिक समूहों तक सीमित रहने से रोकना तथा कृषि, छोटे उद्योगों और ग्रामीण क्षेत्रों को अधिक ऋण उपलब्ध कराने में मदद करना था। भारतीय रिजर्व बैंक के ऐतिहासिक विवरण में बैंक राष्ट्रीयकरण को विकास की प्राथमिकताओं के अनुरूप ऋण उपलब्ध कराने से जोड़ा गया है। इस योजना का महत्त्व केवल उत्पादन बढ़ाने में नहीं, बल्कि वित्तीय संसाधनों के वितरण को व्यापक सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ने में भी था।

ङ) पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979)

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन और आत्मनिर्भरता प्रमुख उद्देश्य बने। इस अवधि में यह समझ अधिक स्पष्ट हुई कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि अपने आप गरीबी दूर नहीं करती, इसके लिए रोजगार, सार्वजनिक सुविधाओं और कमजोर वर्गों के जीवन स्तर में सुधार से जुड़े कार्यक्रम भी आवश्यक हैं। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, पेयजल, ग्रामीण सड़कें, बिजली और अन्य बुनियादी सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया गया। उद्देश्य यह था कि विकास का लाभ केवल औद्योगिक उत्पादन अथवा शहरी क्षेत्रों तक सीमित न रहे। 1975 में एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) की शुरुआत भी सामाजिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण थी। पाँचवीं योजना को मूल अवधि पूरी होने से पहले 1978 राजनीतिक अस्थिरता के मध्य ही समाप्त कर दी गयी।

रोलिंग योजना का प्रयोग (1978-1980)

1978 में नई सरकार ने पारंपरिक पंचवर्षीय योजना के स्थान पर रोलिंग योजना का प्रयोग किया। इस दृष्टिकोण में योजना को निश्चित पाँच वर्ष की अवधि तक अपरिवर्तित रखने के बजाय बदलती परिस्थितियों के अनुसार संशोधित करने की कल्पना थी। रोलिंग योजना का विचार यह था कि विकास के लक्ष्य और संसाधनों का आकलन समय-समय पर किया जाए, ताकि नई परिस्थितियों के अनुसार योजनाओं में परिवर्तन संभव हो सके। हालांकि, 1980 में सरकार बदलने के बाद यह प्रयोग समाप्त कर दिया गया और छठी पंचवर्षीय योजना शुरू हुई।

च) छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985)

छठी पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन, रोजगार, तकनीकी आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास को एक साथ आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया। इस दौरान ग्रामीण गरीबी से निपटने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) का राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार हुआ। IRDP का उद्देश्य ग्रामीण गरीब परिवारों को उत्पादक परिसंपत्तियाँ तथा संस्थागत सहायता उपलब्ध कराना था, ताकि वे कृषि, पशुपालन, छोटे व्यवसाय और अन्य आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से आय अर्जित कर सकें।

छ) सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990)

सातवीं पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्न उत्पादन, रोजगार, उत्पादकता और तकनीकी आधुनिकीकरण को प्रमुखता दी गई। देश की अर्थव्यवस्था में आधुनिक तकनीक, दूरसंचार और उत्पादन क्षमता की भूमिका बढ़ रही थी। कृषि में उत्पादन वृद्धि के साथ उद्योगों में दक्षता, ऊर्जा, परिवहन और तकनीकी क्षमता को बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की गई। रोजगार सृजन तथा गरीबी में कमी के प्रयास भी जारी रहे।

इस अवधि में कंप्यूटर और आधुनिक तकनीकी प्रणालियों के उपयोग को प्रोत्साहन मिला। हालांकि, आर्थिक विकास के साथ राजकोषीय दबाव तथा बाहरी भुगतान संबंधी समस्याएँ भी धीरे-धीरे बढ़ती गईं। इसलिए 1980 के दशक के उत्तरार्ध की उपलब्धियों का मूल्यांकन करते समय उत्पादन और आधुनिकीकरण के साथ वित्तीय स्थिरता को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

वार्षिक योजनाएँ (1990-1992) और आठवीं योजना की पृष्ठभूमि

1990 के बाद राजनीतिक अस्थिरता और गंभीर आर्थिक दबावों के कारण 1990-1992 के दौरान वार्षिक योजनाओं की व्यवस्था रही। इस अवधि में भुगतान संतुलन की समस्या और विदेशी मुद्रा की कमी विशेष रूप से गंभीर हो गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि 1992-1997 थी। इसलिए इस अध्याय में उसे उदारीकरण-पूर्व योजनाओं की तरह विस्तार से नहीं दिया गया है।

यहाँ यह समझने की आवश्यकता है की स्वतंत्रता पूर्व की पहलों को संस्थागत रूप से नियोजन के माध्यम से लागू किया गया परन्तु साथ में भारत में इस दौरान कई आतंरिक, बाह्य समस्याओं के साथ राजनीतिक बदलाओं के साथ गुजरते हुए लगातार मजबूत राष्ट्र बनाने की राह में कई नीतियों का निर्माण किया साथ ही संस्थाओं का निर्माण आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें बदलाव भी किये । इन बदलावों में औद्योगिक नीति महत्त्वपूर्ण हैं जिनसे माध्यम से औद्यौगिक विअकास का नियमन एवं नियंत्रण किया जाता है।

2.6 औद्योगिक नीति और औद्योगीकरण की पहलें (Industrial Policy and Industrialization Initiatives)

ब्रिटिश सरकार की औद्योगिक नीति का प्रमुख उद्देश्य भारत का उपयोग ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को पूरा करने के लिए करना था। इस कारण अंग्रेजों ने भारत के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने में विशेष रुचि नहीं दिखाई। वे चाहते थे कि भारत से कच्चे माल का निर्यात ब्रिटेन को किया जाए और इसके बदले ब्रिटेन में निर्मित तैयार वस्तुओं का आयात भारत में हो।

राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते दबाव के कारण अंग्रेजों को भारत में कुछ उपभोक्ता वस्तु उद्योगों (Consumer Goods Industries) की स्थापना की अनुमति देनी पड़ी। हालाँकि, 'मैनेजिंग एजेंसी सिस्टम' (Managing Agency System) के माध्यम से उन्होंने औद्योगिक उपक्रमों के स्वामित्व और प्रबंधन पर अपना नियंत्रण बनाए रखा। भारत को ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था पर निर्भर बनाए रखने

के उद्देश्य से अंग्रेजों ने यहाँ पूँजीगत वस्तु उद्योगों (Capital Goods Industries) के विकास को भी प्रोत्साहित नहीं किया और उनकी स्थापना पर रोक जैसी स्थिति बनाए रखी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार के सामने कई गंभीर चुनौतियाँ थीं। इनमें शरणार्थियों का पुनर्वास, रियासतों का भारतीय संघ में विलय तथा खाद्यान्न की कमी जैसी समस्याएँ प्रमुख थीं। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर स्वतंत्र भारत में **पहली** औद्योगिक नीति, 1948 में आई उसके बाद 1956 में **दूसरी** तथा 23 दिसम्बर 1977 को जनता सरकार ने **तीसरी** औद्योगिक नीति तथा 23 जुलाई 1980 को कांग्रेस में **चौथी** औद्योगिक नीति की घोषणा की।

औद्योगिक क्षेत्र में भी नीतिगत मतभेद सामने आए। मजदूर नेताओं ने उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की वकालत की, जबकि भारतीय पूँजीपति वर्ग इसका समर्थन नहीं कर रहा था। इस प्रकार की अनिश्चितता के कारण सरकार को आशंका थी कि उद्योगों में निवेश प्रभावित हो सकता है। इस स्थिति को स्पष्ट करने और औद्योगिक विकास की दिशा निर्धारित करने के लिए सरकार ने वर्ष 1948 में औद्योगिक नीति की घोषणा की।

औद्योगिक नीति, 1948

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने 6 अप्रैल 1948 को औद्योगिक नीति संकल्प घोषित किया। इसने औद्योगिक विकास में सरकार और निजी क्षेत्र की भूमिकाओं को निर्धारित करने का प्रारंभिक ढाँचा प्रदान किया। इस नीति में कुछ रणनीतिक उद्योगों में राज्य की प्रमुख भूमिका और अन्य क्षेत्रों में निजी उद्यम की भागीदारी को स्वीकार किया गया। लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी महत्त्व दिया गया, क्योंकि वे स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते थे और रोजगार के अवसर पैदा कर सकते थे।

भारत के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) की अवधारणा को अपनाया गया। इस व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह थी कि सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) और निजी क्षेत्र (Private Sector), दोनों को देश के औद्योगिक विकास में भागीदारी निभानी थी। इस नीति के अंतर्गत उद्योगों को चार व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया गया।

(क) राज्य का पूर्ण एकाधिकार (Exclusive Monopoly): इस श्रेणी में उन उद्योगों को शामिल किया गया, जिनका स्वामित्व एवं प्रबंधन पूरी तरह राज्य के अधीन होना था। इनमें हथियारों एवं गोला-बारूद का निर्माण, परमाणु ऊर्जा का उत्पादन एवं नियंत्रण तथा रेलवे परिवहन का स्वामित्व एवं प्रबंधन शामिल थे।

(ख) राज्य द्वारा स्थापित किए जाने वाले नए उपक्रम: इस श्रेणी में ऐसे उद्योग शामिल थे, जिनमें नए उपक्रमों की स्थापना मुख्य रूप से राज्य द्वारा की जानी थी। इनमें कोयला, लोहा एवं इस्पात, विमान निर्माण, जहाज निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ एवं वायरलेस उपकरणों का निर्माण तथा खनिज तेल जैसे उद्योग शामिल थे।

(ग) ऐसे महत्त्वपूर्ण उद्योग, जिनकी योजना एवं नियंत्रण में केंद्र सरकार की भूमिका आवश्यक थी: इस श्रेणी में उन उद्योगों को रखा गया, जो देश के आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण थे और जिनके नियोजन एवं नियंत्रण में केंद्र सरकार की भूमिका आवश्यक मानी गई। इनमें ऑटोमोबाइल, ट्रैक्टर, प्राइम मूवर्स (प्रमुख चालक मशीनें), विद्युत इंजीनियरिंग, भारी

मशीनरी, मशीन टूल्स, भारी रसायन, उर्वरक, अलौह धातुएँ (Non-ferrous Metals), सूती एवं ऊनी वस्त्र, सीमेंट, चीनी तथा हवाई एवं समुद्री परिवहन जैसे उद्योग शामिल थे।

(घ) निजी क्षेत्र के लिए खुले अन्य उद्योग: उपर्युक्त तीन श्रेणियों में शामिल नहीं किए गए शेष उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खुला रखा गया। इनमें व्यक्ति तथा सहकारी संस्थाएँ उद्योगों की स्थापना एवं संचालन कर सकती थीं। राष्ट्रीयकरण के संबंध में सरकार ने घोषणा की कि अगले दस वर्षों तक किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जाएगा। यदि इसके बाद राष्ट्रीयकरण आवश्यक समझा गया, तो उसके लिए मुआवजा दिया जाएगा।

नीति का उद्देश्य था कि औद्योगिक विकास के साथ सामाजिक न्याय, और आर्थिक अवसरों का विस्तार भी हो।

औद्योगिक नीति, 1956

औद्योगिक नीति, **1956 को भारतीय अर्थव्यवस्था का 'आर्थिक संविधान'** कहा जाता है। इसका उद्देश्य मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से समाजवादी लोकतंत्र की स्थापना करना था। इस नीति में सार्वजनिक क्षेत्र को विशेष महत्त्व दिया गया और भारी तथा आधारभूत उद्योगों के विकास की मुख्य जिम्मेदारी उसे सौंपी गई, जबकि निजी क्षेत्र को भी औद्योगिक विकास में भागीदारी का अवसर दिया गया। इसमें उद्योगों को मुख्यतः **तीन श्रेणियों** में विभाजित किया गया था। **प्रथम** श्रेणी में ऐसे 17 उद्योग सम्मिलित थे जिनमें राज्य का एकाधिकार होना था। **द्वितीय** श्रेणी में उन उद्योगों को रखा गया था जिनमें राज्य का स्वामित्व धीरे धीरे बढ़ाना था। तृतीय श्रेणी में उन सभी उद्योगों को सम्मिलित किया गया था जो अग्रलिखित दो श्रेणियों में सम्मिलित नहीं थे, इन्हें निजी क्षेत्र के लिए पूर्णरूपेण छोड़ दिया गया था। इस प्रकार औद्योगिक नीति 1956 प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे-

1. आधारभूत और भारी उद्योगों का विकास।
2. सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से दीर्घकालीन निवेश।
3. मशीन निर्माण और पूँजीगत वस्तुओं की घरेलू क्षमता बढ़ाना जिसके लिए आवश्यक विदेशी पूँजी जुटाना।
4. आर्थिक शक्ति के अत्यधिक केंद्रीकरण को रोकना।
5. पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करना जिससे संतुलित क्षेत्रीय विकास हो सके।
6. रोजगार और तकनीकी कौशल के अवसर बढ़ाना।

इस नीति के प्रभाव से इस्पात, ऊर्जा, मशीन निर्माण, भारी इंजीनियरिंग और अन्य आधारभूत उद्योगों के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान बढ़ा। परंतु औद्योगिक लाइसेंस व्यवस्था, प्रशासनिक नियंत्रण और निजी निवेश पर अनेक प्रतिबंधों के कारण आगे चलकर दक्षता और प्रतिस्पर्धा से संबंधित प्रश्न भी उठे।

औद्योगिक नीति, 1977

23 दिसम्बर, 1977 की औद्योगिक नीति में **लघु, कुटीर और ग्रामीण उद्योगों पर विशेष जोर** दिया गया। इस समय यह चिंता थी कि बड़े उद्योगों पर अत्यधिक ध्यान देने से रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं बन पा रहे थे और ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों का विस्तार सीमित था। लघु उद्योग अपेक्षाकृत कम पूँजी में रोजगार पैदा कर सकते हैं तथा स्थानीय कौशल और संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं। इसलिए छोटे उद्यमों को प्रोत्साहन, उनके लिए सुविधाओं का विस्तार और ग्रामीण औद्योगीकरण इस नीति के प्रमुख पहलुओं में शामिल थे।

छोटे उद्योगों के सामने तकनीक, वित्त, विपणन, गुणवत्ता और बड़े उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा जैसी चुनौतियाँ बनी रहीं। केवल किसी उद्योग को लघु उद्योग की श्रेणी में रखना पर्याप्त नहीं था, उसके विकास के लिए सस्ती पूँजी, बाजार तक पहुँच और तकनीकी सहायता भी आवश्यक थी।

औद्योगिक नीति, 1980

23 जुलाई, 1980 के औद्योगिक नीति वक्तव्य में औद्योगिक उत्पादन, क्षमता के बेहतर उपयोग, **आधुनिकीकरण** और **प्रतिस्पर्धा** पर जोर दिया गया। नीति निर्माताओं ने महसूस किया कि औद्योगिक क्षमता का निर्माण महत्त्वपूर्ण है, लेकिन उपलब्ध मशीनों और कारखानों का कुशल उपयोग भी उतना ही आवश्यक है।

इस अवधि में उत्पादन क्षमता के विस्तार, **तकनीकी सुधार** और उद्योगों के आधुनिकीकरण पर ध्यान दिया गया। औद्योगिक विकास को अधिक गतिशील बनाने की आवश्यकता स्वीकार की गई, हालांकि व्यापक लाइसेंस व्यवस्था और कई प्रशासनिक नियंत्रण बने रहे। इसलिए 1980 के दशक को एक ऐसी अवधि के रूप में समझा जा सकता है जिसमें भारत ने पुराने नियंत्रण-आधारित मॉडल के भीतर रहते हुए भी उत्पादकता, तकनीक और औद्योगिक दक्षता में सुधार की आवश्यकता को अधिक महत्त्व देना शुरू किया।

2.7 उदारीकरण-पूर्व विकास मॉडल की उपलब्धियाँ और सीमाएँ

उदारीकरण-पूर्व भारत के विकास मॉडल का मूल्यांकन संतुलित दृष्टिकोण से करना आवश्यक है। इस अवधि में अनेक संस्थाएँ और औद्योगिक क्षमताएँ विकसित हुईं, लेकिन गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुईं।

प्रमुख उपलब्धियाँ

1. औद्योगिक आधार का निर्माण : भारी उद्योगों, इस्पात, बिजली, मशीन निर्माण और सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार से देश की औद्योगिक क्षमता मजबूत हुई।
2. कृषि उत्पादन में वृद्धि: सिंचाई, उन्नत बीज, कृषि अनुसंधान और हरित क्रांति ने खाद्यान्न उत्पादन में सुधार किया।
3. संस्थागत विकास: योजना आयोग, वित्त आयोग, सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं और कृषि विकास संस्थाओं ने आर्थिक गतिविधियों को संस्थागत आधार दिया।
4. बैंकिंग का विस्तार: बैंक राष्ट्रीयकरण और ग्रामीण बैंकिंग पहलों से औपचारिक बैंकिंग सेवाओं तथा संस्थागत ऋण की पहुँच बढ़ी।
5. सामाजिक विकास पर ध्यान: शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, ग्रामीण रोजगार और गरीबी उन्मूलन से संबंधित कार्यक्रमों ने विकास को सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ने का प्रयास किया।
6. आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रगति: अनेक औद्योगिक क्षेत्रों में घरेलू उत्पादन क्षमता विकसित हुई और खाद्यान्न की घरेलू उपलब्धता में सुधार हुआ।

प्रमुख सीमाएँ

1. गरीबी और बेरोजगारी: विकास के बावजूद बड़ी संख्या में लोगों को पर्याप्त आय और स्थायी रोजगार उपलब्ध नहीं था।
2. असमान क्षेत्रीय विकास: औद्योगिक निवेश, सिंचाई और आधुनिक कृषि तकनीक के लाभ सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं पहुँचे।

3. प्रशासनिक नियंत्रण: औद्योगिक लाइसेंस और अनेक अनुमति प्रक्रियाओं ने कभी-कभी निवेश, विस्तार और प्रतिस्पर्धा को सीमित किया।
4. सार्वजनिक क्षेत्र की दक्षता: कुछ सार्वजनिक उद्यमों में लागत, उत्पादकता, प्रबंधन और वित्तीय प्रदर्शन संबंधी समस्याएँ थीं।
5. कृषि की संरचनात्मक समस्याएँ: भूमि का असमान वितरण, वर्षा पर निर्भरता और छोटे किसानों की सीमित संसाधन क्षमता बनी रही।
6. वित्तीय दबाव: सार्वजनिक व्यय, सब्सिडी, बाहरी उधारी और भुगतान संतुलन से जुड़ी समस्याएँ समय के साथ गंभीर हुईं।
7. असमान समावेशन: विकास कार्यक्रमों के लाभ सभी सामाजिक समूहों तक समान रूप से नहीं पहुँचे। महिलाओं, भूमिहीन श्रमिकों, आदिवासी समुदायों और पिछड़े क्षेत्रों की चुनौतियाँ बनी रहीं।

इन उपलब्धियों और सीमाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि नियोजन ने भारत के आर्थिक और संस्थागत आधार के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन आर्थिक विकास को अधिक उत्पादक, प्रतिस्पर्धी और व्यापक बनाने के लिए नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता भी उभरी।

2.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. 1934 में एम. विश्वेश्वरैया द्वारा ..... वर्षीय नियोजित अर्थव्यवस्था का प्रस्ताव दिया था।

(दस **अथवा** पाँच)

2. भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना का आरम्भ ..... में हुआ था ।

(1991 **अथवा** 1951)

3. भारत में योजन अवकाश का समय ..... से ..... तक है ।

(1966-69 **अथवा** 1990-92)

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. 1956 की औद्योगिक नीति को भारत का आर्थिक संविधान कहा जाता है ।

(सत्य **अथवा** असत्य)

2. 1980 की औद्योगिक नीति का केंद्र बिंदु आधुनिकरण के साथ-साथ तकनीकी सुधार पर था ।

(सत्य **अथवा** असत्य)

2.9 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने स्वतंत्रता-पूर्व नियोजन के विचारों से लेकर स्वतंत्र भारत में नियोजित विकास की शुरुआत और 1991 तक की प्रमुख आर्थिक पहलों का अध्ययन किया।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने कृषि, औद्योगीकरण, आधारभूत संरचना और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया। प्रथम योजना में कृषि और सिंचाई को प्राथमिकता मिली, जबकि द्वितीय योजना में भारी उद्योगों और सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर जोर दिया गया। बाद की योजनाओं में कृषि उत्पादन, स्थिरता, गरीबी उन्मूलन, रोजगार, तकनीकी

आधुनिकीकरण और सामाजिक सुविधाओं के विस्तार पर अलग-अलग स्तरों पर ध्यान दिया गया। औद्योगिक नीति संकल्पों ने सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की भूमिकाएँ निर्धारित कीं।

इस प्रकार उदारीकरण-पूर्व भारत की आर्थिक नीतियों को केवल सफलताओं या केवल विफलताओं के आधार पर नहीं आँकना चाहिए। इन नीतियों ने औद्योगिक और संस्थागत आधार तैयार किया, जबकि उनकी सीमाओं ने आगे की नीतिगत दिशा में बदलाव की आवश्यकता को उजागर किया।

2.10 शब्दावली (Glossary)

- **मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy):** ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक और निजी क्षेत्र दोनों की भूमिका होती है।
- **अलौह धातुएँ (Non-ferrous Metals):** वे धातुएँ होती हैं जिनमें लोहा (Iron) मुख्य घटक के रूप में मौजूद नहीं होता। उदाहरण के लिए- ताँबा, एल्युमिनियम, जस्ता, सीसा और टिन। उद्योगों के विकास के लिए आवश्यक कच्चा माल
- **औद्योगिक नीति (Industrial Policy):** उद्योगों के विकास, नियंत्रण, निवेश और संचालन से संबंधित सरकारी नीति है। भारत में चार औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा की गयी ।
- **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector):** सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में संचालित आर्थिक संस्थाएँ सार्वजनिक क्षेत्र कहलाते हैं ।
- **हरित क्रांति (Green Revolution):** उन्नत कृषि तकनीक और संसाधनों के उपयोग से कृषि उत्पादन बढ़ाने की प्रक्रिया है, जिसे भारत में 1960 के दशक में लाया गया है।
- **भुगतान संतुलन (Balance of Payments):** किसी देश और शेष विश्व के बीच एक वित्तीय वर्ष में आर्थिक लेन-देन का लेखा भुगतान संतुलन कहलाता है।
- **समावेशी विकास (Inclusive Growth):** ऐसा विकास जिसमें विभिन्न सामाजिक वर्गों और क्षेत्रों को अवसर तथा लाभ प्राप्त हों समावेशी विकास कहलाता है।
- **उदारीकरण (Liberalization):** आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी प्रतिबंधों और नियंत्रणों को कम करने की प्रक्रिया उदारीकरण कहलाता है।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers to Practice Questions)

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. दस 2. 1951 3. 1966-69

निम्नलिखित कथनों में से सत्य या असत्य कथन चुनिये-

1. सत्य 2. सत्य

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

Government of India Resolution on Industrial Policy, 6 April 1948.

- मिश्रा, एस. के. एवं वी. के. पुरी (1986), Development and Planning: Theory and Practice, Himalayan Publishing House, नई दिल्ली।

- सिंह, बी. एन. पी. (2004), Indian Economy Today: Changing Contours, Deep & Deep Publication, नई दिल्ली।
- जैन, पी. सी. (1965), Economic Problems of India, Chaitanya Publishing House, इलाहाबाद।
- माथुर, बी. एल. "भारतीय अर्थवयवस्था" (2009), अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण 1991–92 — Industrial Policy Reforms.

2.13 उपयोगी पाठ्य सामग्री (Helpful Text)

- भारत सरकार, योजना आयोग: प्रथम से सप्तम पंचवर्षीय योजनाओं के दस्तावेज।
- प्रसाद, सी. एस. एवं अन्य (2007), Sixty Years of Indian Economy 1947–2007, New Century Publications, नई दिल्ली।
- भारत सरकार, Economic Survey, 2006–07।
- सूरी, एम. एम. (2004), Indian Economy in the 21st Century: Prospects and Challenges, New Century Publications, नई दिल्ली।

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. स्वतंत्रता-पूर्व नियोजन के विचारों से स्वतंत्र भारत की नियोजन व्यवस्था तक के विकास का वर्णन कीजिए।
2. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में बदलती विकास प्राथमिकताओं का विश्लेषण कीजिए।
3. स्वतंत्रता के बाद कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए किए गए प्रमुख प्रयासों का मूल्यांकन कीजिए।
4. क्या उदारीकरण-पूर्व भारत का आर्थिक नियोजन समावेशी विकास सुनिश्चित कर सका? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

इकाई 5: ग्रामीण विकास- एक अवलोकन (Rural Development-An Overview)

5.1परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं परिभाषा

5.3.1 ग्रामीण विकास का अर्थ एवं अवधारणा

5.4 ग्रामीण विकास की प्रकृति एवं विशेषताएँ

5.5 ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्य

5.6 ग्रामीण विकास के प्रमुख आयाम

5.7 भारत में ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.7.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में ग्रामीण विकास

5.7.2 औपनिवेशिक काल में ग्रामीण विकास की स्थिति

5.7.3 स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास का संस्थागत चरण

5.7.4 गरीबी उन्मूलन एवं समग्र ग्रामीण विकास का चरण

5.7.5 विकेंद्रीकरण से समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास तक

5.8 ग्रामीण विकास की प्रमुख चुनौतियाँ

5.9 सारांश

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.11 संदर्भ ग्रंथ

5.1परिचय

ग्रामीण विकास भारत के समावेशी, संतुलित एवं सतत राष्ट्रीय विकास की आधारशिला है। भारतीय ग्रामीण समाज न केवल कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों का केंद्र है, बल्कि देश की सांस्कृतिक विरासत, पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक सहयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का भी महत्त्वपूर्ण संवाहक है। तथापि, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, सामाजिक असमानता, आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा आजीविका संबंधी अनिश्चितताएँ विकास की प्रक्रिया के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं। ग्रामीण विकास एक बहुआयामी, सहभागी एवं परिवर्तनकारी प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों की आर्थिक उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ उनके सामाजिक सशक्तीकरण, मानवीय क्षमताओं के विस्तार तथा जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत कृषि आधुनिकीकरण, ग्रामीण उद्यमिता, रोजगार सृजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण, वित्तीय समावेशन, डिजिटल साक्षरता तथा प्राकृतिक संसाधनों के सतत प्रबंधन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास का लक्ष्य केवल ग्रामीण गरीबी का उन्मूलन नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर, समतामूलक, सशक्त एवं पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ ग्रामीण समुदायों का निर्माण करना है। इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्थाओं, स्थानीय समुदायों, स्वयं सहायता समूहों, सहकारी संगठनों तथा सरकारी योजनाओं की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। अतः ग्रामीण विकास को ग्रामीण समाज की संरचनात्मक समस्याओं के समाधान, स्थानीय संसाधनों के प्रभावी उपयोग तथा समावेशी राष्ट्र-निर्माण की एक व्यापक रणनीति के रूप में समझा जाना चाहिए।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी:

- ग्रामीण विकास की अवधारणा, प्रकृति एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्यों एवं आयामों की व्याख्या कर सकेंगे।
- ग्रामीण समाज की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ग्रामीण विकास के प्रमुख सिद्धांतों एवं दृष्टिकोणों को समझ सकेंगे।
- भारत में ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं नीतिगत विकास का अध्ययन कर सकेंगे।
- सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास की संभावनाओं और चुनौतियों का आलोचनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।

5.3 ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं परिभाषा

ग्रामीण विकास किसी राष्ट्र की समावेशी प्रगति, सामाजिक न्याय, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा सतत विकास का आधारभूत घटक है। ग्रामीण समाज केवल कृषि उत्पादन की इकाई नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक परंपराओं, स्थानीय ज्ञान, प्राकृतिक संसाधनों, सामुदायिक संस्थाओं और मानवीय क्षमताओं से निर्मित एक जटिल सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है। अतः ग्रामीण विकास को समझने के लिए गाँवों में विद्यमान आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ उनकी सामाजिक संरचना, शक्ति-संबंधों, संसाधनों के वितरण, संस्थागत व्यवस्थाओं तथा विकास के अवसरों का समग्र अध्ययन आवश्यक है। विकास-अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास की अवधारणा समय के साथ उल्लेखनीय रूप से परिवर्तित हुई है। प्रारंभिक दृष्टिकोण में इसे मुख्यतः कृषि उत्पादन में वृद्धि, सिंचाई सुविधाओं के विस्तार, उन्नत कृषि तकनीकों के प्रयोग और ग्रामीण आधारभूत संरचना के निर्माण से जोड़कर देखा जाता था। किंतु अनुभवजन्य अध्ययनों ने स्पष्ट किया कि उत्पादन और आय में वृद्धि अपने आप गरीबी, सामाजिक असमानता, बेरोजगारी अथवा अवसरों की विषमता को समाप्त नहीं करती। यदि विकास के लाभ समाज के कुछ वर्गों तक सीमित रह जाएँ, तो आर्थिक प्रगति के बावजूद व्यापक ग्रामीण समुदाय की जीवन-स्थितियों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हो पाता। इसी कारण आधुनिक ग्रामीण विकास की अवधारणा कृषि-केंद्रित विकास से आगे बढ़कर मानव-केंद्रित, सहभागितापूर्ण, समावेशी और सतत विकास की व्यापक अवधारणा के रूप में विकसित हुई है। इसमें ग्रामीण परिवारों की आय और रोजगार में वृद्धि के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण, आवास, स्वच्छ पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, लैंगिक समानता, स्थानीय स्वशासन और पर्यावरणीय संरक्षण को भी समान महत्त्व प्रदान किया जाता है। यह दृष्टिकोण ग्रामीण समुदाय को केवल सरकारी योजनाओं का लाभार्थी नहीं, बल्कि अपनी विकास-प्रक्रिया का सक्रिय निर्माता मानता है। भारत के संदर्भ में ग्रामीण विकास का महत्त्व विशेष रूप से व्यापक है। कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों पर निर्भरता, छोटे और सीमांत कृषकों की चुनौतियाँ, भूमिहीन श्रमिकों की आजीविका, मौसमी बेरोजगारी, ग्रामीण-शहरी प्रवास तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक असमान पहुँच जैसे मुद्दे ग्रामीण विकास को एक बहुआयामी नीति-विषय बनाते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य में दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियाँ, सीमित कृषि भूमि, जल एवं वन संसाधनों का संरक्षण, पलायन और स्थानीय रोजगार के अवसरों का सृजन ग्रामीण विकास की विशिष्ट चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार, ग्रामीण विकास का वास्तविक आशय केवल गाँवों में भौतिक सुविधाओं का विस्तार करना नहीं, बल्कि ऐसी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का निर्माण करना है, जिनमें ग्रामीण निवासी सम्मानजनक जीवन जी सकें, अपनी क्षमताओं का विकास कर सकें, निर्णय-निर्माण में भाग ले सकें तथा स्थानीय संसाधनों का न्यायसंगत और टिकाऊ उपयोग करते हुए अपने समुदाय की प्रगति में योगदान दे सकें।

5.3.1 ग्रामीण विकास का अर्थ एवं अवधारणा : ग्रामीण विकास दो मूलभूत शब्दों 'ग्रामीण' तथा 'विकास' का संयुक्त रूप है। 'ग्रामीण' शब्द सामान्यतः ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों और समुदायों को संदर्भित करता है, जिनकी सामाजिक एवं आर्थिक संरचना में कृषि, प्राकृतिक संसाधनों, स्थानीय व्यवसायों तथा अपेक्षाकृत छोटे समुदायों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। तथापि, ग्रामीणता की प्रकृति सभी क्षेत्रों में समान नहीं होती। मैदानी कृषि-प्रधान गाँवों, पर्वतीय बस्तियों, आदिवासी क्षेत्रों तथा ग्रामीण औद्योगिक केंद्रों की आजीविका, सामाजिक संरचना और विकास संबंधी आवश्यकताएँ अलग-अलग हो सकती हैं। 'विकास' का अर्थ केवल किसी आर्थिक गतिविधि की मात्रा में वृद्धि नहीं है। यह एक ऐसी परिवर्तनकारी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्तियों और समुदायों की क्षमताओं, अवसरों, जीवन-स्तर, सामाजिक स्थिति तथा संस्थागत भागीदारी में सुधार होता है। इस दृष्टि से विकास का मूल्यांकन केवल आय, उत्पादन अथवा भौतिक परिसंपत्तियों से नहीं, बल्कि इस आधार पर भी किया जाना चाहिए कि लोगों को बेहतर जीवन जीने के कितने वास्तविक अवसर प्राप्त हुए हैं। ग्रामीण विकास की अवधारणा को अकादमिक दृष्टि से अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इसे केवल विद्वानों की परिभाषाओं के संकलन के रूप में प्रस्तुत करना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए ग्रामीण विकास के सैद्धांतिक विकास, विभिन्न विचारधाराओं, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन, मानवीय क्षमताओं, सहभागितापूर्ण नियोजन और सतत आजीविका के बीच अंतर्संबंधों को समझना आवश्यक है। ग्रामीण विकास का अध्ययन विशेष रूप से इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि ग्रामीण समाज में विकास की समस्याएँ केवल आर्थिक संसाधनों की कमी से उत्पन्न नहीं होतीं, बल्कि भूमि एवं संपत्ति के असमान वितरण, संस्थागत कमजोरियों, सामाजिक स्तरीकरण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीमित पहुँच और निर्णय-निर्माण में असमान भागीदारी से भी संबंधित होती हैं। इस कारण ग्रामीण विकास को एक ऐसी परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, सामुदायिक स्वायत्तता और पर्यावरणीय संतुलन को भी सुदृढ़ करे।

- उमा लेले की पुस्तक The Design of Rural Development: Lessons from Africa ग्रामीण विकास की रणनीतियों के विश्लेषण में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने ग्रामीण विकास को केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने की गतिविधि के रूप में देखने के बजाय ग्रामीण निर्धनता कम करने, उत्पादकता बढ़ाने तथा ग्रामीण आबादी के जीवन-स्तर में सुधार लाने की व्यापक प्रक्रिया के रूप में समझने का आधार प्रदान किया। उनके दृष्टिकोण का केंद्रीय तत्त्व यह है कि ग्रामीण विकास की योजनाएँ स्थानीय परिस्थितियों, उपलब्ध संसाधनों, संस्थागत व्यवस्थाओं और ग्रामीण समुदाय की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए।
- चेम्बर्स की पुस्तक Rural Development: Putting the Last First ग्रामीण विकास के सहभागी एवं जन-केंद्रित दृष्टिकोण की प्रमुख कृतियों में शामिल है। उनका दृष्टिकोण उन ग्रामीण समूहों की समस्याओं को प्राथमिकता देता है, जो संसाधनों, संस्थागत प्रतिनिधित्व और विकास के अवसरों से अपेक्षाकृत वंचित रहते हैं। चेम्बर्स के विचारों का मूल संदेश यह है कि विकास की प्रक्रिया को ग्रामीण समुदायों की वास्तविक आवश्यकताओं, स्थानीय ज्ञान और जीवनानुभवों से जोड़ना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, किसी पर्वतीय गाँव में सिंचाई की समस्या का समाधान स्थानीय जलस्रोतों, वर्षा के स्वरूप, पारंपरिक जल-संरक्षण प्रणालियों और ग्रामीण परिवारों की आवश्यकताओं का अध्ययन करके अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।
- अमर्त्य सेन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Development as Freedom में विकास को मानवीय स्वतंत्रताओं और क्षमताओं के विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया। यह ग्रामीण विकास की प्रत्यक्ष शब्दशः परिभाषा नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज में विकास को समझने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक आधार है। सेन के अनुसार, विकास का मूल्यांकन केवल आय या आर्थिक उत्पादन में वृद्धि से नहीं, बल्कि इस आधार पर भी किया जाना चाहिए कि लोगों को अपनी इच्छानुसार मूल्यवान जीवन जीने के कितने वास्तविक अवसर उपलब्ध हैं।
- Ellis और Biggs ने अपने शोध-पत्र Evolving Themes in Rural Development 1950s–2000s में ग्रामीण विकास संबंधी विचारों के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि ग्रामीण विकास की अवधारणा समय के साथ कृषि आधुनिकीकरण और उत्पादन वृद्धि से आगे बढ़कर गरीबी उन्मूलन, सहभागी विकास, ग्रामीण गैर-कृषि गतिविधियों और सतत आजीविका जैसे

विषयों को समाहित करने लगी। उत्तराखंड के संदर्भ में बागवानी, स्थानीय खाद्य प्रसंस्करण, हस्तशिल्प, मधुमक्खी पालन और सामुदायिक पर्यटन को प्रोत्साहित करना इस दृष्टिकोण का व्यावहारिक उदाहरण हो सकता है।

- Chambers और Conway ने अपने शोध-पत्र Sustainable Rural Livelihoods: Practical Concepts for the 21st Century में सतत आजीविका की अवधारणा विकसित की। उनके अनुसार, आजीविका में व्यक्तियों की क्षमताएँ, परिसंपत्तियाँ भौतिक एवं सामाजिक संसाधनों सहित और जीवनयापन के लिए की जाने वाली गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं। आजीविका तभी सतत मानी जाती है, जब वह संकटों का सामना कर सके, उनसे उबर सके और भविष्य की पीढ़ियों के लिए अवसरों को बनाए रख सके। यह दृष्टिकोण बताता है कि ग्रामीण विकास का उद्देश्य केवल वर्तमान आय बढ़ाना नहीं, बल्कि ग्रामीण परिवारों की संकटों से निपटने की क्षमता को मजबूत करना भी है। उदाहरण के लिए, कृषि के साथ पशुपालन, गैर-कृषि रोजगार, स्वयं सहायता समूहों और स्थानीय उद्यमों को प्रोत्साहित करने से ग्रामीण परिवारों की आर्थिक असुरक्षा कम हो सकती है।
- John Friedmann ने अपनी पुस्तक Empowerment: The Politics of Alternative Development में विकास को स्थानीय समुदायों की निर्णय लेने की क्षमता, सामाजिक शक्ति और संसाधनों तक पहुँच से जोड़ा। इस दृष्टिकोण के अनुसार, ग्रामीण विकास तभी सार्थक होगा, जब ग्रामीण समुदाय केवल योजनाओं के लाभ प्राप्त न करे, बल्कि स्थानीय संसाधनों और विकास की प्राथमिकताओं के निर्धारण में भी प्रभावी भूमिका निभाए। ग्राम सभा में सक्रिय भागीदारी, महिलाओं के सामूहिक संगठन और स्थानीय नेतृत्व का विकास इस दृष्टिकोण के व्यावहारिक उदाहरण हैं।
- Michael Lipton ने Why Poor People Stay Poor: Urban Bias in World Development में विकास नीतियों में शहरी पक्षपात (Urban Bias) की आलोचना की। उनका विश्लेषण इस बात पर केंद्रित था कि राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाएँ कभी-कभी शहरी समूहों के हितों को प्राथमिकता देती हैं, जबकि ग्रामीण उत्पादकों और श्रमिकों के हित अपेक्षाकृत उपेक्षित रह जाते हैं। यह दृष्टिकोण ग्रामीण विकास को संसाधनों के वितरण और ग्रामीण-शहरी संबंधों के विश्लेषण से जोड़ता है।
- Glasmeier और Howland ने ग्रामीण आर्थिक विकास में सेवा क्षेत्र की भूमिका का विश्लेषण किया। उनका शोध इस प्रश्न को उठाता है कि क्या सेवाओं का विस्तार ग्रामीण आर्थिक विकास को स्वतंत्र रूप

से गति दे सकता है, अथवा इसके लिए कृषि, विनिर्माण और अन्य उत्पादक गतिविधियों के साथ समन्वय आवश्यक है।

5.4 ग्रामीण विकास की प्रकृति एवं विशेषताएँ

ग्रामीण विकास एक व्यापक, बहुआयामी एवं सतत सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण समाज के जीवन-स्तर में गुणात्मक सुधार लाना, आर्थिक अवसरों का विस्तार करना, सामाजिक असमानताओं को कम करना तथा ग्रामीण समुदायों को आत्मनिर्भर, सशक्त और विकास की मुख्यधारा से जोड़ना है। इसे केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि अथवा ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क, बिजली और आवास जैसी सुविधाओं के विस्तार तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, ग्रामीण विकास ऐसी समन्वित प्रक्रिया है, जिसमें आर्थिक समृद्धि, सामाजिक न्याय, मानवीय क्षमताओं का विकास, संस्थागत सुदृढ़ीकरण, पर्यावरणीय संरक्षण और लोकतांत्रिक सहभागिता एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। ग्रामीण विकास की प्रकृति को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:

चित्र सं०: 5.1 ग्रामीण विकास की प्रकृति एवं विशेषताएँ



❖ **बहुआयामी एवं समग्र प्रकृति:** ग्रामीण विकास की प्रकृति बहुआयामी है, क्योंकि ग्रामीण जीवन की समस्याएँ एक-दूसरे से अंतर्संबंधित होती हैं। कृषि की कम उत्पादकता का प्रभाव आय, पोषण, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार पर पड़ सकता है। इसी प्रकार, शिक्षा एवं कौशल की कमी गैर-कृषि रोजगार के अवसरों को सीमित कर सकती है। इसलिए ग्रामीण विकास के लिए कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, वित्तीय समावेशन और सामाजिक सुरक्षा का समन्वित विकास आवश्यक है। उदाहरण के लिए, किसी गाँव में सड़क निर्माण तभी व्यापक विकास का आधार बन सकता है, जब उसके साथ बाजार तक पहुँच, परिवहन सुविधाएँ, कृषि उत्पादों के भंडारण और विपणन की व्यवस्था भी विकसित हो।

❖ **आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया:** ग्रामीण विकास केवल आय में वृद्धि की प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों, संस्थाओं और जीवन-शैली में सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम भी है। आर्थिक विकास ग्रामीण परिवारों की क्रय-शक्ति बढ़ाता है, जबकि सामाजिक विकास शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता और सामाजिक प्रतिष्ठा को सुदृढ़ करता है। उदाहरणार्थ, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को बचत, ऋण और उद्यमिता के अवसर प्राप्त होने से उनकी आर्थिक स्थिति के साथ-साथ परिवार एवं समुदाय में निर्णय लेने की भूमिका भी मजबूत हो सकती है।

❖ **मानव-केंद्रित:** ग्रामीण विकास का केंद्रीय बिंदु ग्रामीण समुदाय का मानव विकास है। इसका उद्देश्य केवल उत्पादन या भौतिक संसाधनों का विस्तार नहीं, बल्कि व्यक्तियों की क्षमताओं, ज्ञान, कौशल, स्वास्थ्य और आत्मविश्वास को विकसित करना भी है। इस दृष्टिकोण में ग्रामीण व्यक्ति को निष्क्रिय लाभार्थी के बजाय सक्षम एवं सक्रिय सहभागी माना जाता है। उदाहरण के लिए, किसानों को केवल कृषि उपकरण उपलब्ध कराने की अपेक्षा उन्हें आधुनिक कृषि तकनीकों, जल प्रबंधन, बाजार विश्लेषण और वित्तीय साक्षरता का प्रशिक्षण देना अधिक टिकाऊ परिणाम उत्पन्न कर सकता है।

❖ **सहभागितापूर्ण एवं जन-केंद्रित :** ग्रामीण विकास की सफलता स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। ग्रामीण समुदाय अपनी आवश्यकताओं, संसाधनों, समस्याओं और प्राथमिकताओं को सबसे निकट से समझता है। इसलिए विकास योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन में ग्रामसभा, पंचायतों, स्वयं सहायता समूहों, किसान संगठनों तथा स्थानीय नागरिकों की सहभागिता आवश्यक है। प्रिटी (Pretty, 1995) ने सतत कृषि एवं ग्रामीण विकास में सहभागितापूर्ण अधिगम और

स्थानीय ज्ञान के महत्त्व को रेखांकित किया है। उदाहरण के लिए, किसी गाँव में जल-संकट के समाधान हेतु स्थानीय लोगों के अनुभवों को शामिल करके तालाबों के पुनर्जीवन, वर्षा जल-संचयन और जल उपयोग के सामुदायिक नियम विकसित किए जा सकते हैं।

- **समावेशी एवं सामाजिक न्यायपरक प्रकृति:** ग्रामीण समाज में भूमि के स्वामित्व, आय, शिक्षा, जाति, लिंग और सामाजिक स्थिति के आधार पर असमानताएँ विद्यमान हो सकती हैं। ग्रामीण विकास की प्रकृति समावेशी तभी मानी जाएगी, जब विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचें और विशेष रूप से वंचित समुदायों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता मिले। भूमिहीन मजदूरों, सीमांत किसानों, महिलाओं, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों, दिव्यांग व्यक्तियों और दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों को विकास प्रक्रिया में समान अवसर प्रदान करना इसका आवश्यक पक्ष है। उदाहरण के लिए, ग्रामीण कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महिलाओं और आर्थिक रूप से कमजोर युवाओं की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करना समावेशी विकास का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

- **स्थानीय संसाधनों पर आधारित प्रकृति:** ग्रामीण विकास की प्रभावशीलता स्थानीय प्राकृतिक, मानवीय, सामाजिक और सांस्कृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर निर्भर करती है। भूमि, जल, वन, पशुधन, पारंपरिक ज्ञान, स्थानीय शिल्प और सामुदायिक सहयोग ग्रामीण विकास के महत्त्वपूर्ण आधार हैं। प्रत्येक ग्रामीण क्षेत्र की भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ अलग होती हैं; इसलिए विकास की रणनीतियाँ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में फलोत्पादन, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती, मधुमक्खी पालन, स्थानीय हस्तशिल्प और ग्रामीण पर्यटन की संभावनाएँ मैदानी क्षेत्रों की कृषि एवं औद्योगिक संभावनाओं से भिन्न हो सकती हैं।

- **आजीविका-केंद्रित एवं आत्मनिर्भरता-उन्मुख प्रकृति:** ग्रामीण विकास का एक प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण परिवारों को स्थिर, सुरक्षित और विविध आजीविका के अवसर उपलब्ध कराना है। केवल कृषि पर निर्भरता कई बार मौसमी बेरोजगारी, प्राकृतिक आपदाओं, बाजार में उतार-चढ़ाव और आय की अनिश्चितता को बढ़ा सकती है। इसलिए कृषि के साथ पशुपालन, मत्स्यपालन, खाद्य प्रसंस्करण, कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, ग्रामीण सेवाओं और स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। चैम्बर्स और कॉनवे (Chambers & Conway, 1992) के सतत ग्रामीण आजीविका दृष्टिकोण में आजीविका को

केवल आय तक सीमित न मानकर क्षमताओं, परिसंपत्तियों और गतिविधियों के समुच्चय के रूप में समझा गया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, ग्रामीण परिवारों की आजीविका तभी अधिक टिकाऊ बनती है, जब वे संकटों का सामना करने, संसाधनों को सुरक्षित रखने और भविष्य के अवसरों का लाभ उठाने में सक्षम हों।

- **विकेंद्रीकृत एवं संस्थागत:** ग्रामीण विकास में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं और सामुदायिक संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विकेंद्रीकरण के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप योजनाएँ तैयार करने, संसाधनों का उपयोग करने और जवाबदेही सुनिश्चित करने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। ग्राम पंचायत, ग्रामसभा और अन्य स्थानीय संस्थाएँ ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को निर्धारित करने तथा योजनाओं की निगरानी में योगदान दे सकती हैं। हालाँकि, विकेंद्रीकरण की सफलता के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रशासनिक क्षमता, पारदर्शिता और नागरिक सहभागिता आवश्यक हैं।

- **पर्यावरणीय संतुलन एवं सतत विकास:** ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार प्राकृतिक संसाधनों से निकटता से जुड़ा होता है। भूमि की उर्वरता, जल की उपलब्धता, वन संपदा और जैव विविधता ग्रामीण आजीविका की निरंतरता को प्रभावित करते हैं। इसलिए ऐसा विकास आवश्यक है, जो वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की संसाधन संबंधी संभावनाओं को क्षति न पहुँचाए। इसके अंतर्गत मृदा संरक्षण, जल-संचयन, जैविक एवं प्राकृतिक संसाधन-आधारित कृषि, वनीकरण, नवीकरणीय ऊर्जा और जलवायु-अनुकूल आजीविका को प्रोत्साहित किया जा सकता है। स्कून्स (Scoones, 1998) का सतत ग्रामीण आजीविका ढाँचा प्राकृतिक, मानवीय, सामाजिक, भौतिक और वित्तीय संसाधनों के परस्पर संबंधों को समझने में उपयोगी है।

- **गतिशील एवं परिवर्तनशील:** ग्रामीण विकास एक स्थिर या एकबारगी प्रक्रिया नहीं, बल्कि समय, तकनीक, जनसंख्या, बाजार, नीतियों और पर्यावरणीय परिस्थितियों के साथ बदलने वाली निरंतर प्रक्रिया है। पहले ग्रामीण विकास में कृषि उत्पादन और सिंचाई पर अधिक बल दिया जाता था, जबकि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कौशल विकास, डिजिटल सेवाएँ, उद्यमिता, बाजार संपर्क, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के विविध अवसर भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। एलिस और बिग्स (Ellis & Biggs, 2001) ने ग्रामीण विकास संबंधी विचारों और नीतिगत प्राथमिकताओं के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करते हुए इस क्षेत्र में बदलते दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया है।

5.5 ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्य

ग्रामीण विकास एक बहुआयामी, गतिशील एवं परिवर्तनकारी प्रक्रिया है, जिसका मूल उद्देश्य ग्रामीण समाज की आर्थिक समृद्धि, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा तथा जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार सुनिश्चित करना है। इसे केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि अथवा ग्रामीण आय के विस्तार तक सीमित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वास्तविक ग्रामीण विकास तभी संभव है, जब आर्थिक अवसरों का सृजन, सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन, आधारभूत सुविधाओं का विस्तार और स्थानीय समुदायों का सशक्तीकरण एक-दूसरे के पूरक बनें। Ellis और Biggs (2001) ने ग्रामीण विकास की अवधारणा में समय के साथ हुए परिवर्तनों को रेखांकित करते हुए कृषि-केंद्रित दृष्टिकोण से व्यापक आजीविका, सहभागिता एवं गरीबी उन्मूलन की ओर बढ़ते महत्त्व को स्पष्ट किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास का लक्ष्य ग्रामीण समुदायों को विकास के निष्क्रिय लाभार्थियों से सक्रिय भागीदारों एवं परिवर्तन के वाहकों में रूपांतरित करना है। ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. गरीबी एवं बेरोजगारी का उन्मूलन: ग्रामीण परिवारों के लिए स्थायी रोजगार, नियमित आय, स्वरोजगार तथा गैर-कृषि गतिविधियों के अवसर उत्पन्न करना, ताकि आर्थिक असुरक्षा एवं बहुआयामी गरीबी को कम किया जा सके।
2. कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण: कृषि उत्पादकता, सिंचाई, आधुनिक तकनीक, पशुपालन, बागवानी, कुटीर उद्योग तथा ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विविधीकरण करना।
3. सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास: महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, भूमिहीन श्रमिकों तथा अन्य वंचित वर्गों को संसाधनों, अवसरों और निर्णय-निर्माण में समान भागीदारी प्रदान करना।
4. मानव विकास एवं जीवन-स्तर में सुधार: गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण, स्वच्छता, सुरक्षित पेयजल तथा कौशल विकास के माध्यम से ग्रामीण जनसंख्या की क्षमताओं का विस्तार करना।
5. आधारभूत सुविधाओं एवं ग्रामीण अवसंरचना का विस्तार: सड़क, बिजली, आवास, पेयजल, सिंचाई, संचार और डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करके ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ना।

6. महिला सशक्तीकरण एवं लैंगिक समानता: महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, संपत्ति पर अधिकार, उद्यमिता तथा पंचायतों और सामुदायिक संस्थाओं में प्रभावी भागीदारी को बढ़ावा देना।
7. सहभागी लोकतंत्र एवं स्थानीय स्वशासन: ग्राम सभा, पंचायती राज संस्थाओं और स्वयं सहायता समूहों को सशक्त बनाकर विकास योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में स्थानीय समुदाय की भूमिका सुनिश्चित करना।
8. पर्यावरणीय संतुलन एवं सतत विकास: जल, भूमि, वन और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करना तथा भावी पीढ़ियों के हितों की रक्षा करना।
9. ग्रामीण-शहरी असमानताओं में कमी: शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, तकनीक और सार्वजनिक सुविधाओं तक समान पहुँच विकसित करके ग्रामीण एवं शहरी जीवन-स्तर के बीच की खाई को कम करना।
10. स्थानीय आत्मनिर्भरता एवं सुदृढ़ आजीविका: स्थानीय कौशल, पारंपरिक ज्ञान, सहकारिता और गैर-कृषि रोजगार को प्रोत्साहित करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विविधतापूर्ण एवं संकटों के प्रति अधिक सक्षम बनाना (Allison & Ellis, 2001)।
11. निष्कर्षतः, ग्रामीण विकास का अंतिम उद्देश्य ऐसे सशक्त, समावेशी, आत्मनिर्भर एवं पर्यावरण-संवेदनशील ग्रामीण समाज का निर्माण करना है, जिसमें विकास के लाभों का न्यायसंगत वितरण हो और प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन जीने के अवसर प्राप्त हों।

5.6 ग्रामीण विकास के प्रमुख आयाम

ग्रामीण विकास एक बहुआयामी, समावेशी एवं सतत प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा पर्यावरणीय जीवन-स्तर में गुणात्मक सुधार लाना है। इसे केवल कृषि उत्पादन अथवा ग्रामीण आय में वृद्धि तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसमें रोजगार के अवसरों का विस्तार, सामाजिक न्याय की स्थापना, आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता, महिला सशक्तीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग भी सम्मिलित है। Chambers (1983) ने ग्रामीण विकास को ग्रामीण निर्धनता, असुरक्षा और वंचना को दूर करने की व्यापक प्रक्रिया के संदर्भ में समझने पर बल दिया। इसी प्रकार Sen (1999) का क्षमता दृष्टिकोण विकास को मानव की स्वतंत्रताओं, अवसरों और वास्तविक क्षमताओं के विस्तार से जोड़ता है। इस दृष्टि से ग्रामीण विकास के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं।

❖ **आर्थिक विकास:** आर्थिक विकास ग्रामीण विकास का आधारभूत आयाम है। इसमें कृषि एवं पशुपालन की उत्पादकता में वृद्धि, लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास, ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहन, गैर-कृषि रोजगार का सृजन तथा किसानों और श्रमिकों की आय में वृद्धि सम्मिलित है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए कृषि विविधीकरण, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, मत्स्यपालन और स्थानीय उत्पादों के विपणन को बढ़ावा देना आवश्यक है। इससे ग्रामीण परिवारों की आर्थिक निर्भरता कम होती है और आजीविका के वैकल्पिक साधन विकसित होते हैं।

❖ **सामाजिक विकास:** सामाजिक विकास का उद्देश्य ग्रामीण समाज में समानता, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा तथा सामुदायिक सहयोग को बढ़ावा देना है। जाति, वर्ग, लिंग और आर्थिक स्थिति पर आधारित असमानताओं को कम करना इस आयाम का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, भूमिहीन श्रमिकों तथा अन्य वंचित समूहों को विकास के अवसरों से जोड़ना आवश्यक है। सामाजिक सुरक्षा, पोषण, स्वच्छता और सामुदायिक सहभागिता के माध्यम से ग्रामीण समाज को अधिक समावेशी बनाया जा सकता है।

❖ **शैक्षिक एवं कौशल विकास:** शिक्षा ग्रामीण विकास का प्रमुख प्रेरक तत्त्व है, क्योंकि यह व्यक्तियों की ज्ञान, निर्णय-क्षमता और रोजगार संबंधी संभावनाओं का विस्तार करती है। गुणवत्तापूर्ण विद्यालयी शिक्षा, वयस्क साक्षरता, डिजिटल साक्षरता, व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास ग्रामीण युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक हैं। शिक्षा के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उद्यमशीलता और तकनीकी दक्षता का विकास भी आवश्यक है।

❖ **स्वास्थ्य एवं पोषण विकास:** स्वास्थ्य और पोषण ग्रामीण समुदाय की कार्यक्षमता तथा समग्र कल्याण के मूलभूत आधार हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, टीकाकरण, स्वच्छ पेयजल, पोषण कार्यक्रमों और स्वच्छता सुविधाओं का विस्तार ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार करता है। स्वास्थ्य सेवाओं तक समान पहुँच से बीमारी के कारण होने वाली आर्थिक हानि घटती है तथा मानव संसाधन अधिक उत्पादक बनते हैं।

❖ **आधारभूत संरचना का विकास:** सड़क, बिजली, आवास, सिंचाई, परिवहन, संचार, इंटरनेट तथा बाजार सुविधाएँ ग्रामीण विकास की भौतिक आधारशिला हैं। बेहतर संपर्क व्यवस्था से किसानों को बाजार तक पहुँच, विद्यार्थियों को शैक्षिक अवसर और ग्रामीण उद्यमियों को व्यापक व्यावसायिक

संभावनाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार आधारभूत संरचना ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच विकासात्मक अंतर को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- **राजनीतिक एवं संस्थागत विकास:** ग्राम पंचायतों, ग्राम सभाओं, सहकारी समितियों और स्वयं सहायता समूहों की सक्रिय भागीदारी ग्रामीण विकास को लोकतांत्रिक एवं उत्तरदायी बनाती है। विकेंद्रीकृत नियोजन, पारदर्शिता, सामाजिक अंकेक्षण और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप संसाधनों का आवंटन विकास कार्यक्रमों की प्रभावशीलता बढ़ाते हैं। ग्रामीण नागरिकों की निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में सहभागिता से स्थानीय स्वामित्व और जवाबदेही सुदृढ़ होती है।
- **महिला सशक्तीकरण एवं लैंगिक समानता:** ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा, संपत्ति, ऋण, रोजगार, तकनीकी प्रशिक्षण और नेतृत्व के अवसर उपलब्ध कराना समावेशी विकास की अनिवार्य शर्त है। स्वयं सहायता समूहों तथा महिला उद्यमिता के माध्यम से उनकी आर्थिक स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि होती है। लैंगिक समानता परिवार के कल्याण के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उत्पादकता को भी प्रोत्साहित करती है।
- **पर्यावरणीय एवं सतत विकास:** सतत ग्रामीण विकास प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करता है। जल संरक्षण, मृदा प्रबंधन, वनीकरण, जैविक खेती, जैव विविधता संरक्षण और नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग इसके प्रमुख घटक हैं। Kageyama (2004) ने ग्रामीण विकास के मापन में आर्थिक, सामाजिक, जनसांख्यिकीय और पर्यावरणीय पहलुओं को महत्त्वपूर्ण माना है।

5.7 भारत में ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। भारतीय सभ्यता का विकास मुख्यतः ग्राम-केंद्रित सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत हुआ, जहाँ कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग और सामुदायिक सहयोग आजीविका के प्रमुख आधार थे। समय के साथ ग्रामीण समाज की संरचना, उत्पादन संबंधों, भूमि स्वामित्व, प्रशासनिक व्यवस्था तथा विकास संबंधी नीतियों में परिवर्तन हुए। स्वतंत्रता-पूर्व काल से लेकर स्वतंत्र भारत की पंचवर्षीय योजनाओं, पंचायती राज संस्थाओं और समकालीन ग्रामीण विकास कार्यक्रमों तक की यात्रा भारतीय ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को स्पष्ट करती है।

5.7.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में ग्रामीण विकास: प्राचीन भारत में ग्राम आर्थिक उत्पादन, सामाजिक संगठन और स्थानीय प्रशासन की आधारभूत इकाई था। कृषि के साथ पशुपालन, हस्तशिल्प, सिंचाई तथा स्थानीय विनिमय व्यवस्था ग्रामीण जीवन के प्रमुख अंग थे। अनेक क्षेत्रों में ग्राम समुदाय जल संसाधनों, कृषि भूमि और सामुदायिक संपत्तियों के प्रबंधन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। हालांकि, ग्रामीण समाज जातिगत विभाजन, सामाजिक असमानता तथा संसाधनों के असमान वितरण से भी प्रभावित था। मध्यकाल में कृषि का विस्तार, सिंचाई व्यवस्थाओं का विकास और ग्रामीण शिल्प उत्पादन अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण घटक बने रहे। विभिन्न शासनों के दौरान भूमि-राजस्व व्यवस्था में परिवर्तन हुए, जिनका कृषकों की आर्थिक स्थिति और ग्रामीण उत्पादन संबंधों पर प्रभाव पड़ा। इस काल में ग्रामीण विकास आधुनिक अर्थों में नियोजित विकास नहीं था, बल्कि कृषि उत्पादन, स्थानीय संस्थाओं और राजस्व प्रशासन से संबंधित प्रक्रियाओं के माध्यम से संचालित होता था।

5.7.2 औपनिवेशिक काल में ग्रामीण विकास की स्थिति: ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन हुए। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी जैसी भू-राजस्व प्रणालियों ने भूमि स्वामित्व, कृषक अधिकारों तथा कृषि संबंधों को प्रभावित किया। उच्च राजस्व माँग, ऋणग्रस्तता, जमींदारी शोषण और वाणिज्यिक फसलों के विस्तार ने अनेक क्षेत्रों में कृषकों की आर्थिक असुरक्षा बढ़ाई। पारंपरिक कुटीर एवं हस्तशिल्प उद्योगों के पतन ने भी ग्रामीण आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। औपनिवेशिक काल के उत्तरार्ध में ग्रामीण पुनर्निर्माण के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयास भी हुए। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने श्रीनिकेतन परियोजना के माध्यम से ग्रामीण आत्मनिर्भरता, शिक्षा, कृषि सुधार और सामुदायिक सहभागिता पर बल दिया। महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए विकेंद्रीकरण, कुटीर उद्योग, स्वावलंबन और ग्राम समुदायों की आत्मनिर्भरता को स्वतंत्र भारत के विकास का आधार माना। इन विचारों ने स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास की नीतियों को वैचारिक दिशा प्रदान की।

5.7.3 स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास का संस्थागत चरण: 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण विकास को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, गरीबी उन्मूलन और सामाजिक न्याय की आधारशिला माना गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1956) में कृषि, सिंचाई, ग्रामीण आधारभूत संरचना और सामुदायिक विकास को प्राथमिकता दी गई। 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme) प्रारंभ किया गया तथा 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा के माध्यम से विकास गतिविधियों का विस्तार हुआ। इन कार्यक्रमों

का उद्देश्य कृषि उत्पादन बढ़ाना, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार करना तथा ग्रामीण समुदायों में आत्मनिर्भरता और सहभागिता विकसित करना था (Sinha, 2008)। 1957 में बलवंतराय मेहता समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की समीक्षा करते हुए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की सिफारिश की। इसके परिणामस्वरूप 1959 से पंचायती राज व्यवस्था का विकास हुआ। हरित क्रांति के दौरान उन्नत बीजों, सिंचाई, उर्वरकों और कृषि तकनीकों को प्रोत्साहन मिला, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई; हालांकि, इसके लाभ विभिन्न क्षेत्रों और कृषक वर्गों में समान रूप से वितरित नहीं हुए।

5.7.4 गरीबी उन्मूलन एवं समग्र ग्रामीण विकास का चरण: 1970 और 1980 के दशकों में ग्रामीण विकास की रणनीति कृषि उत्पादन तक सीमित न रहकर गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन और कमजोर वर्गों के आर्थिक सशक्तीकरण की ओर उन्मुख हुई। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) जैसे प्रयासों ने ग्रामीण परिवारों की आय और रोजगार के अवसरों को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया। Gaikwad (1979) ने पूर्ववर्ती ग्रामीण विकास रणनीतियों की समीक्षा करते हुए उनके सीमित प्रभाव और लाभार्थियों तक विकास के अपर्याप्त प्रसार जैसे प्रश्न उठाए।

5.7.5 विकेंद्रीकरण से समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास तक: 1992 के 73वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया, जिससे स्थानीय नियोजन और ग्रामीण शासन को संस्थागत आधार मिला। इसके बाद स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (2000), महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (2005), राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन तथा प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण जैसे कार्यक्रमों ने रोजगार, संपर्क, आवास और आजीविका संवर्धन को प्राथमिकता दी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास का संबंध डिजिटल समावेशन, महिला सशक्तीकरण, कौशल विकास, स्वच्छता, जल संरक्षण, सामाजिक सुरक्षा और सतत आजीविका से भी है।

5.8 ग्रामीण विकास की प्रमुख चुनौतियाँ

ग्रामीण विकास भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना के रूपांतरण, समावेशी विकास तथा सतत राष्ट्रीय प्रगति का एक अनिवार्य आधार है। ग्रामीण विकास का तात्पर्य केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि अथवा ग्रामीण आय में

सुधार से नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज में विद्यमान आर्थिक विषमताओं, सामाजिक बहिष्करण, संस्थागत कमजोरियों और अवसरों की असमानता को दूर करते हुए जीवन की गुणवत्ता में समग्र सुधार करना है। महात्मा गांधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा से लेकर अमर्त्य सेन के क्षमता-विकास दृष्टिकोण तक, विकास संबंधी विचारधाराएँ इस बात पर बल देती हैं कि वास्तविक विकास तभी संभव है, जब ग्रामीण समुदायों को संसाधनों, अवसरों, निर्णय-निर्माण तथा सम्मानजनक जीवन तक समान पहुँच प्राप्त हो। तथापि, भारत में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया अनेक अंतर्संबंधित चुनौतियों से प्रभावित होती है, जिनका समाधान समन्वित, सहभागी और क्षेत्र-विशिष्ट विकास रणनीतियों के माध्यम से ही संभव है।

- **गरीबी, आय-विषमता एवं संसाधनों का असमान वितरण:** ग्रामीण गरीबी केवल कम आय की समस्या नहीं, बल्कि भूमि, पूँजी, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक अवसरों तक सीमित पहुँच का परिणाम भी है। भूमिहीन कृषि श्रमिक, सीमांत किसान तथा सामाजिक रूप से वंचित समुदाय आर्थिक असुरक्षा के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। भूमि स्वामित्व में असमानता, ऋण की अनुपलब्धता और बाजार में कमजोर सौदेबाजी क्षमता ग्रामीण परिवारों की आर्थिक उन्नति को बाधित करती है। फलस्वरूप, विकास योजनाओं के बावजूद अनेक परिवार गरीबी के अंतःपीढ़ीगत चक्र से बाहर नहीं निकल पाते।
- **कृषि संकट एवं उत्पादकता संबंधी समस्याएँ:** कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार होने के बावजूद छोटी एवं खंडित जोतें, सिंचाई की अपर्याप्तता, गुणवत्तापूर्ण बीजों और आधुनिक तकनीकों तक सीमित पहुँच तथा कृषि निवेश की बढ़ती लागत इसकी उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, मौसम की अनिश्चितता, फसल क्षति, बाजार मूल्यों में उतार-चढ़ाव और भंडारण सुविधाओं का अभाव किसानों की आय को अस्थिर बनाते हैं। इसलिए कृषि विकास को केवल उत्पादन वृद्धि तक सीमित रखने के बजाय कृषि विविधीकरण, मूल्य संवर्धन, किसान उत्पादक संगठनों तथा बाजार-संपर्क के विस्तार से जोड़ना आवश्यक है।
- **बेरोजगारी, अल्परोजगार एवं आजीविका का संकट:** ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या केवल बेरोजगारी तक सीमित नहीं है; मौसमी रोजगार, कम उत्पादकता वाले कार्य और अपर्याप्त मजदूरी भी इसकी गंभीर अभिव्यक्तियाँ हैं। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता के कारण वर्ष के कुछ समय में श्रमिकों को पर्याप्त काम नहीं मिल पाता। ग्रामीण उद्योगों, खाद्य प्रसंस्करण, हस्तशिल्प, पर्यटन और सेवा क्षेत्र का

अपर्याप्त विकास गैर-कृषि रोजगार के अवसरों को सीमित करता है। परिणामस्वरूप, ग्रामीण युवाओं का नगरों की ओर पलायन बढ़ता है, जिससे गाँवों में कुशल मानव संसाधन की कमी तथा परिवारों और समुदायों की सामाजिक संरचना में परिवर्तन उत्पन्न होता है।

- **शिक्षा, कौशल एवं मानव पूँजी का अपर्याप्त विकास:** गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और रोजगारोन्मुख कौशल किसी भी ग्रामीण समाज की दीर्घकालीन प्रगति के आधार हैं। किंतु विद्यालयों में संसाधनों की कमी, डिजिटल शिक्षण तक असमान पहुँच, व्यावसायिक प्रशिक्षण के सीमित अवसर तथा शिक्षा और रोजगार की आवश्यकताओं के बीच असंगति ग्रामीण युवाओं की उत्पादक क्षमता को प्रभावित करती है। परिणामस्वरूप, ग्रामीण युवा उपलब्ध रोजगार के अनुरूप कौशल विकसित नहीं कर पाते और उनकी आर्थिक गतिशीलता बाधित होती है।
- **स्वास्थ्य, पोषण एवं स्वच्छता संबंधी चुनौतियाँ:** ग्रामीण विकास का वास्तविक मूल्यांकन तभी संभव है, जब ग्रामीण नागरिकों को सुलभ, गुणवत्तापूर्ण और किफायती स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध हों। चिकित्सकों, स्वास्थ्य केंद्रों, दवाओं, पोषण सेवाओं तथा सुरक्षित पेयजल की अपर्याप्तता विशेष रूप से दूरस्थ क्षेत्रों में गंभीर समस्या बन सकती है। स्वास्थ्य पर अधिक निजी व्यय परिवारों को ऋणग्रस्तता और आर्थिक असुरक्षा की ओर धकेल सकता है। इसलिए स्वास्थ्य एवं पोषण को केवल कल्याणकारी सुविधाओं के रूप में नहीं, बल्कि मानव विकास और आर्थिक उत्पादकता के आधार के रूप में देखा जाना चाहिए।
- **सामाजिक विषमता एवं लैंगिक भेदभाव:** जाति, वर्ग, लिंग और सामाजिक स्थिति पर आधारित असमानताएँ ग्रामीण विकास के लाभों के समान वितरण में बाधा उत्पन्न करती हैं। महिलाओं की भूमि एवं संपत्ति पर सीमित स्वामित्व, अवैतनिक घरेलू श्रम, वित्तीय संसाधनों तक अपर्याप्त पहुँच और निर्णय-निर्माण में सीमित भागीदारी उनकी आर्थिक स्वतंत्रता को प्रभावित करती है। इसी प्रकार, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य वंचित समुदायों के लिए अवसरों की असमानता सामाजिक समावेशन को चुनौती देती है। अतः ग्रामीण विकास को न्यायपूर्ण बनाने के लिए समान अवसर, सामाजिक सुरक्षा और प्रभावी महिला सशक्तीकरण आवश्यक हैं।
- **आधारभूत संरचना एवं डिजिटल विभाजन:** ग्रामीण सड़कों, परिवहन, बिजली, सिंचाई, भंडारण, इंटरनेट और बाजार सुविधाओं की कमी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को कमजोर

करती है। डिजिटल सेवाओं के विस्तार के बावजूद इंटरनेट की गुणवत्ता, डिजिटल साक्षरता और उपकरणों की उपलब्धता में अंतर बना रह सकता है। इससे किसान, विद्यार्थी, छोटे उद्यमी और दूरस्थ क्षेत्रों के नागरिक सरकारी सेवाओं तथा ऑनलाइन बाजारों का पूरा लाभ नहीं उठा पाते।

- **पर्यावरणीय अवनयन एवं जलवायु परिवर्तन:** जलवायु परिवर्तन ग्रामीण आजीविका के लिए एक बढ़ती हुई संरचनात्मक चुनौती है। अनियमित वर्षा, तापमान में वृद्धि, सूखा, बाढ़, मृदा क्षरण और जलस्रोतों का ह्रास कृषि तथा पशुपालन की स्थिरता को प्रभावित करते हैं। Thein et al. (2025) ने ग्रामीण भारत के पर्वतीय कृषि समुदायों में जलवायु परिवर्तन के प्रति आजीविका की संवेदनशीलता और अनुकूलन संबंधी बाधाओं का अध्ययन किया है। उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्यों में इन चुनौतियों के साथ भूस्खलन, वन संसाधनों पर निर्भरता और मौसमी पलायन भी ग्रामीण विकास की योजना में विशेष ध्यान की माँग करते हैं।
- **प्रशासनिक एवं संस्थागत कमजोरियाँ:** ग्रामीण विकास योजनाओं की सफलता केवल वित्तीय आवंटन पर नहीं, बल्कि प्रभावी क्रियान्वयन, पारदर्शिता, जनभागीदारी और जवाबदेही पर निर्भर करती है। ग्राम पंचायतों की सीमित तकनीकी क्षमता, विभिन्न विभागों के बीच समन्वय का अभाव, लाभार्थियों में जागरूकता की कमी और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन न होना योजनाओं के अपेक्षित परिणामों को सीमित कर सकता है। इसलिए विकेंद्रीकृत नियोजन, सामाजिक अंकेक्षण तथा ग्राम सभाओं की सक्रिय भागीदारी को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

5.9 सारांश

ग्रामीण विकास भारत के समावेशी, संतुलित एवं सतत राष्ट्रीय विकास का आधार है। इसका उद्देश्य ग्रामीण समुदायों की आर्थिक स्थिति में सुधार, सामाजिक असमानताओं का उन्मूलन तथा जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाना है। ग्रामीण विकास की अवधारणा कृषि उत्पादन एवं आधारभूत सुविधाओं के विस्तार से आगे बढ़कर मानव विकास, सामाजिक न्याय, सहभागिता और पर्यावरणीय संरक्षण को समाहित करती है। उमा लेले, रॉबर्ट चैम्बर्स तथा अमर्त्य सेन जैसे विद्वानों के विचार ग्रामीण विकास में स्थानीय आवश्यकताओं, जनभागीदारी और मानवीय क्षमताओं के विस्तार के महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। ग्रामीण विकास की प्रमुख विशेषताओं में इसकी बहुआयामी प्रकृति, मानव-केंद्रित दृष्टिकोण, समावेशिता, आत्मनिर्भरता, विकेंद्रीकरण तथा सतत आजीविका

शामिल हैं। इसके प्रमुख उद्देश्यों में गरीबी एवं बेरोजगारी का उन्मूलन, कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार, महिला सशक्तीकरण तथा ग्रामीण-शहरी असमानताओं में कमी लाना सम्मिलित है। इसके आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य, संस्थागत एवं पर्यावरणीय आयाम परस्पर संबंधित हैं। भारत में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया प्राचीन ग्राम व्यवस्था से प्रारंभ होकर स्वतंत्रता के बाद सामुदायिक विकास कार्यक्रम, पंचायती राज व्यवस्था तथा विभिन्न गरीबी उन्मूलन योजनाओं के माध्यम से विकसित हुई है। वर्तमान में गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक विषमता, कृषि संकट, डिजिटल विभाजन एवं जलवायु परिवर्तन प्रमुख चुनौतियाँ हैं। अतः प्रभावी ग्रामीण विकास के लिए सहभागी नियोजन, स्थानीय संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग और समावेशी नीतियों का क्रियान्वयन आवश्यक है।

5.10 अभ्यास प्रश्न

- ग्रामीण विकास की अवधारणा, अर्थ एवं परिभाषा की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
- ग्रामीण विकास की प्रकृति एवं प्रमुख विशेषताओं का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।
- ग्रामीण विकास के प्रमुख उद्देश्यों एवं विभिन्न आयामों का विस्तृत विवेचन कीजिए।
- भारत में ग्रामीण विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का स्वतंत्रता-पूर्व काल से वर्तमान समय तक वर्णन कीजिए।
- भारत में ग्रामीण विकास की प्रमुख चुनौतियों का विश्लेषण करते हुए उनके समाधान के उपाय सुझाइए।
- ग्रामीण विकास में सहभागी नियोजन, स्थानीय स्वशासन एवं पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
- सतत ग्रामीण आजीविका की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ग्रामीण परिवारों की आर्थिक सुरक्षा में इसके महत्त्व की विवेचना कीजिए।
- अमर्त्य सेन के क्षमता दृष्टिकोण तथा रॉबर्ट चैम्बर्स के सहभागी विकास दृष्टिकोण के संदर्भ में ग्रामीण विकास की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए।

5.11 संदर्भ ग्रंथ

- Allison, E. H., & Ellis, F. (2001). The livelihoods approach and management of small-scale fisheries. Marine Policy, 25(5), 377–388. https://doi.org/10.1016/S0308-597X(01)00023-9
- Arnold, D. (2005). Agriculture and 'improvement' in early colonial India: A pre-history of development. Journal of Agrarian Change, 5(4), 505–525. https://doi.org/10.1111/j.1471-0366.2005.00110.x
- Cadernos de Ciência & Tecnologia, 21(3), 379–408. https://doi.org/10.35977/0104-1096.cct2004.v21.8702
- Chambers, R. (1983). Rural development: Putting the last first. Longman.
- Chambers, R. (1983). Rural development: Putting the last first. Longman.
- Chambers, R., & Conway, G. R. (1992). Sustainable rural livelihoods: Practical concepts for the 21st century (IDS Discussion Paper 296). Institute of Development Studies.
- Chambers, R., & Conway, G. R. (1992). Sustainable rural livelihoods: Practical concepts for the 21st century (IDS Discussion Paper 296). Institute of Development Studies. https://opendocs.ids.ac.uk/articles/report/Sustainable_rural_livelihoods_practical_concepts_for_the_21st_century/26473510
- Choithani, C., van Duijne, R. J., & Nijman, J. (2021). Changing livelihoods at India's rural–urban transition. World Development, 146, Article 105617. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2021.105617
- Ellis, F., & Biggs, S. (2001). Evolving themes in rural development 1950s–2000s. Development Policy Review, 19(4), 437–448. https://doi.org/10.1111/1467-7679.00143
- Friedmann, J. (1992). Empowerment: The politics of alternative development. Blackwell.
- Glasmeier, A. K., & Howland, M. (1993). Service-led rural development: Definitions, theories, and empirical evidence. International Regional Science Review, 16(1–2), 197–229. https://doi.org/10.1177/016001769401600110
- Gupta, D., Fischer, H., Shrestha, S., Ali, S. S., Chhatre, A., Devkota, K., Fleischman, F., Khatri, D. B., & Rana, P. (2021). Dark and bright spots in the shadow of the pandemic: Rural livelihoods, social vulnerability, and local governance in India and

Nepal. World Development, 141, Article 105370. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2020.105370

- https://www.iima.ac.in/publication/critical-appraisal-past-strategies-rural-development-india
- Kuklierius, M., & Balezentis, T. (2026). Measuring the sustainable rural development: A bibliometric survey. Sustainable Development. https://doi.org/10.1002/sd.71269
- Lele, U. (1975). The design of rural development: Lessons from Africa. Johns Hopkins University Press.
- Lipton, M. (1977). Why poor people stay poor: Urban bias in world development. Temple Smith.
- Mukherjee, M. (2026). Stuck in the fields: How rising temperatures deepen gender inequality in rural India (WIDER Working Paper 73/2026). UNU-WIDER. https://doi.org/10.35188/UNU-WIDER/2026/755-8
- Nijman, J., van Duijne, R. J., & Choithani, C. (2026). Urbanization and social change in rural India. Urban Studies, 63(3). https://doi.org/10.1177/00420980251364677
- Pretty, J. N. (1995). Participatory learning for sustainable agriculture. World Development, 23(8), 1247–1263. https://doi.org/10.1016/0305-750X(95)00046-F
- Pretty, J. N. (1995). Participatory learning for sustainable agriculture. World Development, 23(8), 1247–1263. https://doi.org/10.1016/0305-750X(95)00046-F
- Scoones, I. (1998). Sustainable rural livelihoods: A framework for analysis (IDS Working Paper 72). Institute of Development Studies. https://opendocs.ids.ac.uk/articles/report/Sustainable_Rural_Livelihoods_A_Framework_for_Analysis/26472430
- Scoones, I. (1998). Sustainable rural livelihoods: A framework for analysis (IDS Working Paper 72). Institute of Development Studies. https://opendocs.ids.ac.uk/articles/report/Sustainable_Rural_Livelihoods_A_Framework_for_Analysis/26473384
- Sen, A. (1999). Development as freedom. Alfred A. Knopf.
- Sinha, S. (2008). Lineages of the developmentalist state: Transnationality and village India, 1900–1965. Comparative Studies in Society and History, 50(1), 57–90. https://doi.org/10.1017/S0010417508000054

- Thein, K. Y. M., Kumar, V., Chariar, V. M., & Tsusaka, T. W. (2025). Assessing livelihood vulnerability to climate change in rural India. World Development Sustainability, 7, Article 100249. https://doi.org/10.1016/j.wds.2025.100249
- Thyen, K., & Wolkenhauer, A. (2026). What's 'rural' in rural development? Interrogating internationalised visions for the African countryside. Journal of International Relations and Development, 29, Article 8. https://doi.org/10.1057/s41268-025-00367-4
- Tomlinson, B. R. (2013). Agriculture, 1860–1950: Land, labour and capital. In The economy of modern India: From 1860 to the twenty-first century (pp. 24–76). Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/CBO9781139108638.004
- Veréb, V. (2024). What is rural well-being and how is it measured? An attempt to order chaos. Rural Sociology. https://doi.org/10.1111/ruso.12536

इकाई 10: शहरी विकास(Urban Development)

इकाई-सूची (Unit Index)

10.1 परिचय (Introduction)

10.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading):

10.3 शहरी विकास: अर्थ, अवधारणा एवं परिभाषा

10.3.1 शहरी विकास की अवधारणा

10.4 शहरीकरण : स्वरूप, प्रवृत्तियाँ एवं निर्धारक

10.4.1 शहरीकरण का स्वरूप: शहरीकरण का स्वरूप बहुआयामी है।

10.4.2 शहरीकरण की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: समकालीन विश्व में शहरीकरण की सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति शहरी

10.4.3 शहरीकरण के प्रमुख निर्धारक: शहरीकरण किसी एक कारक का परिणाम नहीं है, बल्कि अनेक परस्पर

10.5 शहरी विकास के प्रमुख आयाम

10.6 भारत में शहरी विकास की प्रमुख चुनौतियाँ

10.7 उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी विकास

10.8 सारांश एवं निष्कर्ष

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 संदर्भ एवं अध्ययन सामग्री

10.1 परिचय (Introduction)

भारत में तीव्र आर्थिक, सामाजिक एवं तकनीकी परिवर्तन के साथ शहरीकरण की प्रक्रिया निरंतर बढ़ रही है। शहर आज केवल जनसंख्या के निवास-स्थल नहीं हैं, बल्कि वे आर्थिक गतिविधियों, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, व्यापार, नवाचार तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रमुख केंद्र बन चुके हैं। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर जनसंख्या का प्रवास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, औद्योगिकीकरण तथा बेहतर सुविधाओं की उपलब्धता ने शहरी क्षेत्रों के विस्तार को गति प्रदान की है। शहरी विकास का अर्थ केवल शहरों के भौतिक विस्तार से नहीं है, बल्कि इसमें आर्थिक प्रगति, सामाजिक समावेशन, गुणवत्तापूर्ण आधारभूत सुविधाएँ, बेहतर आवास, परिवहन, स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण, सुशासन तथा नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार भी शामिल है। इसलिए आधुनिक संदर्भ में शहरी विकास को एक बहुआयामी एवं सतत प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है। तेजी से बढ़ते शहरीकरण ने जहाँ विकास और रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए हैं, वहीं अनियोजित शहरी विस्तार, यातायात की समस्या, प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, जल संकट, आवास की कमी, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार और सामाजिक असमानता जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इन चुनौतियों का समाधान समावेशी, सहभागी, पर्यावरण-अनुकूल और सतत शहरी नियोजन के माध्यम से किया जाना आवश्यक है। इस इकाई में शहरी विकास की अवधारणा, शहरीकरण की प्रवृत्तियों, भारत में शहरी विकास के स्वरूप, प्रमुख चुनौतियों, शहरी शासन, सतत एवं स्मार्ट शहरी विकास तथा उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी विकास का अध्ययन किया जाएगा।

10.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading):

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी:

- ❖ शहरी विकास की अवधारणा, अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे।
- ❖ शहरीकरण की प्रक्रिया तथा उसके प्रमुख निर्धारकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- ❖ शहरी विकास के आर्थिक, सामाजिक, भौतिक एवं पर्यावरणीय आयामों की पहचान कर सकेंगे।
- ❖ तीव्र एवं अनियोजित शहरीकरण से उत्पन्न प्रमुख समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।

- ❖ शहरी विकास से संबंधित भारत सरकार की प्रमुख योजनाओं एवं पहलों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ❖ उत्तराखंड के संदर्भ में शहरीकरण एवं शहरी विकास की चुनौतियों को समझ सकेंगे।
- ❖ शहरी विकास में समुदाय की भागीदारी एवं नागरिक सहभागिता के महत्व को समझ सकेंगे।

10.3 शहरी विकास: अर्थ, अवधारणा एवं परिभाषा

शहरी विकास आधुनिक समाज की आर्थिक संरचना, सामाजिक संबंधों, भौतिक अवसंरचना तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति, रोजगार के अवसरों का विस्तार तथा ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या का प्रवास शहरी विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। वर्तमान समय में शहर केवल जनसंख्या के संकेंद्रण के स्थान नहीं हैं, बल्कि वे आर्थिक उत्पादन, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, नवाचार तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र भी हैं। हालाँकि, शहरी विकास को केवल नगरों के भौतिक विस्तार, भवन निर्माण अथवा जनसंख्या वृद्धि के संदर्भ में समझना पर्याप्त नहीं है। वास्तविक शहरी विकास वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शहरों की आधारभूत सुविधाओं, आर्थिक अवसरों, सामाजिक सेवाओं, पर्यावरणीय गुणवत्ता और प्रशासनिक व्यवस्था में समन्वित सुधार किया जाता है। इस दृष्टि से शहरी विकास का अंतिम उद्देश्य नागरिकों को सुरक्षित, सुविधाजनक, सम्मानजनक तथा गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करना है। संयुक्त राष्ट्र मानव बस्तियाँ कार्यक्रम (UN-Habitat, 2022) के अनुसार, भविष्य के शहरों का विकास समावेशिता, आर्थिक एवं पर्यावरणीय लचीलेपन, प्रभावी शासन और सतत शहरी नियोजन पर आधारित होना चाहिए। इसी प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य 11 में शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, लचीला तथा टिकाऊ बनाने पर बल दिया गया है (United Nations, n.d.)। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक शहरी विकास की अवधारणा भौतिक निर्माण से आगे बढ़कर सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और मानव कल्याण को भी अपने अंतर्गत समाहित करती है। शहरी विकास की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा इसके सभी आयामों को पूरी तरह व्यक्त नहीं करती। विभिन्न अध्ययनों और नीतिगत दस्तावेजों में इसे भौतिक अवसंरचना, आर्थिक प्रगति, सामाजिक समावेशन तथा पर्यावरणीय स्थिरता के संदर्भ में समझाया गया है।

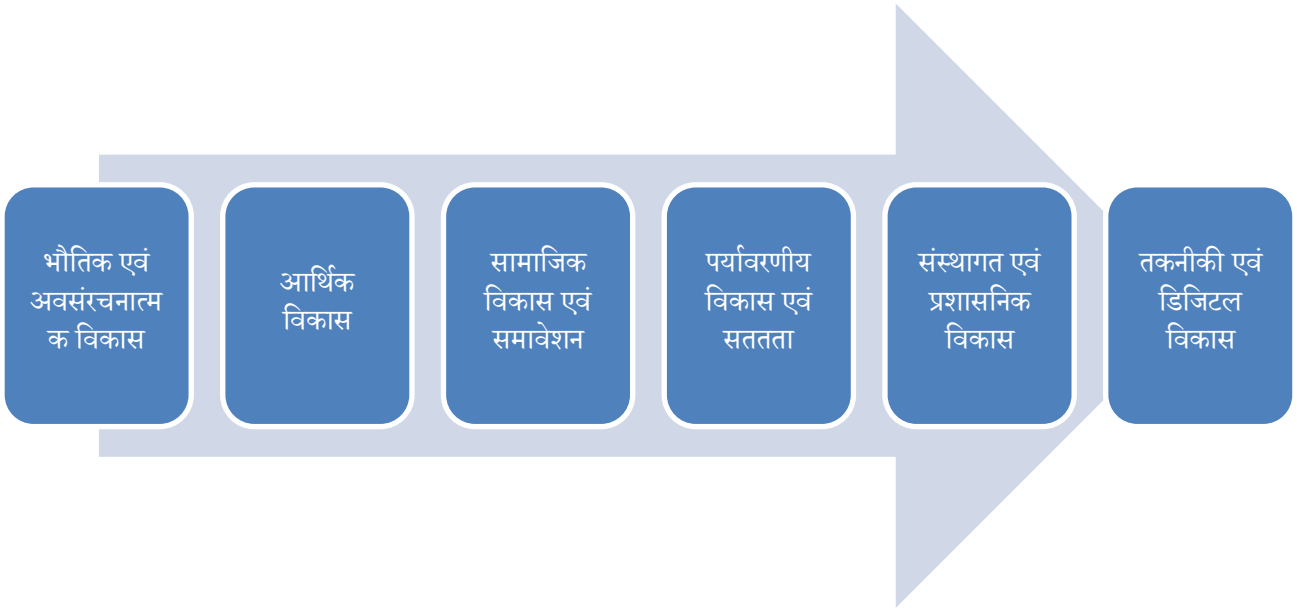
शब्द विन्यास के आधार पर देखने पर हम पाते है कि शहरी विकास (Urban Development) दो शब्दों अर्थात 'शहरी' तथा 'विकास' से मिलकर बना है। जहाँ 'शहरी' शब्द का संबंध नगरों और शहरों से है, तो वहीँ दूसरी ओर 'विकास' का आशय किसी व्यवस्था की संरचना, कार्यक्षमता, गुणवत्ता अथवा परिस्थितियों में होने वाले सकारात्मक और व्यवस्थित परिवर्तन से लिया जाता है। इस प्रकार, शहरी विकास का सामान्य अर्थ नगरों की भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, संस्थागत तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों में योजनाबद्ध सुधार से है। शहरी विकास के अंतर्गत आवासीय सुविधाओं का विस्तार, सड़कों और परिवहन व्यवस्था का विकास, पेयजल की उपलब्धता, विद्युत आपूर्ति, सीवरेज व्यवस्था, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं का विस्तार, रोजगार सृजन तथा सार्वजनिक स्थलों का विकास सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त, शहरी विकास में नागरिकों की सुरक्षा, सामाजिक समानता, डिजिटल सेवाओं की उपलब्धता, हरित क्षेत्रों का संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने की क्षमता भी महत्वपूर्ण है।

Tang और Lee (2016) ने सतत शहरी विकास की व्याख्या करते हुए पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक-आर्थिक विकास, शहरी व्यवस्था की कार्यक्षमता तथा निवासियों के कल्याण के बीच समन्वय पर बल दिया। उनका अध्ययन स्पष्ट करता है कि शहरी विकास को किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं किया जा सकता, क्योंकि शहर की आर्थिक समृद्धि, पर्यावरणीय गुणवत्ता और नागरिकों का जीवन-स्तर परस्पर संबंधित हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी शहर में बड़े व्यावसायिक भवनों, चौड़ी सड़कों और औद्योगिक इकाइयों का निर्माण होता है, लेकिन वहाँ स्वच्छ पेयजल, किफायती आवास, सार्वजनिक परिवहन तथा उचित अपशिष्ट प्रबंधन उपलब्ध नहीं है, तो ऐसे विकास को पूर्ण शहरी विकास नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, यदि किसी नगर में पर्यावरण संरक्षण के प्रयास किए जाते हैं, लेकिन स्थानीय निवासियों के लिए रोजगार और मूलभूत सुविधाओं का अभाव बना रहता है, तो विकास की प्रक्रिया अधूरी मानी जाएगी। अतः शहरी विकास का अर्थ केवल शहरी क्षेत्र के आकार अथवा आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि नहीं, बल्कि शहरी जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार है। इसी व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर शहरी विकास को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि "शहरी विकास वह योजनाबद्ध, बहुआयामी एवं निरंतर प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी नगर या शहर की भौतिक अवसंरचना, आर्थिक गतिविधियों, सामाजिक सेवाओं, पर्यावरणीय

गुणवत्ता तथा प्रशासनिक व्यवस्था में समन्वित सुधार करते हुए नागरिकों के जीवन-स्तर, समान अवसरों और समग्र कल्याण को बढ़ावा दिया जाता है।"

10.3.1 शहरी विकास की अवधारणा: शहरी विकास की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित हुई है। प्रारंभिक दृष्टिकोण में इसका प्रमुख संबंध नगरों के विस्तार, भवन निर्माण, औद्योगिक विकास, सड़क निर्माण तथा आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता से था। आधुनिक दृष्टिकोण में शहरी विकास को एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है, जिसमें आर्थिक उत्पादकता, सामाजिक समावेशन, पर्यावरणीय स्थिरता, प्रभावी प्रशासन और नागरिक सहभागिता को समान महत्व दिया जाता है। Tang और Lee (2016) के अनुसार, सतत शहरी विकास के लिए पर्यावरणीय गुणवत्ता और मानव कल्याण को विकास की व्यापक रूपरेखा में सम्मिलित करना आवश्यक है। इस आधार पर शहरी विकास की अवधारणा को निम्नलिखित प्रमुख आयामों में समझा जा सकता है:

चित्र सं० 1.1 शहरी विकास की अवधारणा



- **भौतिक एवं अवसंरचनात्मक विकास:** भौतिक विकास शहरी विकास का आधारभूत आयाम है। इसमें आवास, सड़क, पुल, सार्वजनिक परिवहन, जलापूर्ति, विद्युत, सीवरेज, संचार व्यवस्था, विद्यालय, अस्पताल तथा सार्वजनिक सुविधाओं का विकास शामिल है। पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण अवसंरचना शहर की कार्यक्षमता बढ़ाती है तथा नागरिकों के दैनिक जीवन को सुविधाजनक बनाती है। हालाँकि, अवसंरचना का विकास

स्थानीय आवश्यकताओं, जनसंख्या वृद्धि और भविष्य की शहरी जरूरतों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। अनियोजित निर्माण से यातायात जाम, जलभराव, आवासीय असमानता और पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

- **आर्थिक विकास:** शहर औद्योगिक उत्पादन, व्यापार, बैंकिंग, परिवहन, पर्यटन, सूचना प्रौद्योगिकी तथा सेवा क्षेत्र के महत्वपूर्ण केंद्र होते हैं। शहरी विकास स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने, निवेश आकर्षित करने, रोजगार सृजित करने और नागरिकों की आय में वृद्धि करने में योगदान देता है। आर्थिक विकास की सफलता केवल सकल उत्पादन या निवेश में वृद्धि से निर्धारित नहीं की जानी चाहिए। यह भी देखना आवश्यक है कि रोजगार के अवसर कितने व्यापक हैं, श्रमिकों को उचित कार्य परिस्थितियाँ मिल रही हैं या नहीं तथा आर्थिक गतिविधियों का लाभ समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँच रहा है या नहीं।
- **सामाजिक विकास एवं समावेशन:** शहरी विकास का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना है। शहरों में आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के बावजूद आय, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच में असमानताएँ बनी रह सकती हैं। इसलिए महिलाओं, बच्चों, वृद्धजनों, दिव्यांग व्यक्तियों, निम्न आय वर्गों, प्रवासी श्रमिकों तथा अन्य वंचित समूहों की आवश्यकताओं को शहरी नियोजन में शामिल करना आवश्यक है। किफायती आवास, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुलभ स्वास्थ्य सेवाएँ और सुरक्षित सार्वजनिक स्थल सामाजिक रूप से समावेशी शहरी विकास के प्रमुख संकेतक हैं। संयुक्त राष्ट्र का सतत विकास लक्ष्य 11 भी सभी लोगों के लिए पर्याप्त आवास, सुरक्षित परिवहन, सुलभ सार्वजनिक स्थलों तथा समावेशी शहरी नियोजन के महत्व को रेखांकित करता है (United Nations, n.d.)।
- **पर्यावरणीय विकास एवं सततता:** तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या और आर्थिक गतिविधियों के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट, हरित क्षेत्रों में कमी, जल संकट तथा शहरी ताप द्वीप प्रभाव जैसी समस्याएँ शहरों की पर्यावरणीय गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। Tang और Lee (2016) ने पर्यावरण संरक्षण और मानव कल्याण के बीच संतुलन को सतत शहरी विकास का महत्वपूर्ण आधार माना। इस दृष्टि से वर्षा जल संचयन, जल निकायों का संरक्षण, ऊर्जा दक्षता, हरित

भवन, सार्वजनिक परिवहन, वृक्षारोपण और वैज्ञानिक अपशिष्ट प्रबंधन शहरी विकास के आवश्यक घटक हैं। पर्यावरणीय सततता का आशय यह सुनिश्चित करना है कि वर्तमान शहरी आवश्यकताओं की पूर्ति प्राकृतिक संसाधनों को इस सीमा तक क्षति पहुँचाए बिना हो कि भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाए।

- **संस्थागत एवं प्रशासनिक विकास:** शहरों का प्रभावी विकास सक्षम स्थानीय प्रशासन और उत्तरदायी संस्थागत व्यवस्था पर निर्भर करता है। नगर निगम, नगर पालिकाएँ, विकास प्राधिकरण तथा अन्य स्थानीय संस्थाएँ शहरी सेवाओं के नियोजन, वित्तीय प्रबंधन और क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पारदर्शिता, जवाबदेही, नागरिक सहभागिता, डिजिटल प्रशासन तथा प्रभावी वित्तीय प्रबंधन शहरी शासन की गुणवत्ता को बेहतर बनाते हैं। UN-Habitat (2022) ने भविष्य के शहरों के लिए प्रभावी शासन, समावेशिता और लचीलेपन को महत्वपूर्ण माना है।
- **तकनीकी एवं डिजिटल विकास:** आधुनिक शहरी विकास में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका निरंतर बढ़ रही है। डिजिटल प्रशासन, ऑनलाइन नागरिक सेवाएँ, यातायात प्रबंधन, स्मार्ट ऊर्जा प्रणालियाँ तथा डिजिटल शिकायत निवारण व्यवस्थाएँ शहरी प्रबंधन को अधिक प्रभावी बना सकती हैं। हालाँकि, तकनीकी विकास तभी उपयोगी होगा जब डिजिटल सेवाएँ समाज के सभी वर्गों के लिए सुलभ हों। डिजिटल विभाजन, तकनीकी असमानता और नागरिकों की निजता से संबंधित चिंताओं का समाधान भी आवश्यक है।

10.4 शहरीकरण : स्वरूप, प्रवृत्तियाँ एवं निर्धारक

शहरीकरण (Urbanization) आधुनिक समाज के सामाजिक, आर्थिक, जनसांख्यिकीय तथा स्थानिक रूपांतरण की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह केवल ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जनसंख्या के स्थानांतरण तक सीमित नहीं है, बल्कि आर्थिक गतिविधियों के पुनर्गठन, जीवन-शैली में परिवर्तन, सामाजिक संबंधों के पुनर्संयोजन, तकनीकी विस्तार तथा नगरीय संस्कृति के प्रसार की व्यापक प्रक्रिया है। शहरीकरण के परिणामस्वरूप नगर आर्थिक विकास, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, नवाचार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रमुख केन्द्र बनते हैं।

Kingsley Davis (1965) ने शहरीकरण को उस प्रक्रिया के रूप में देखा जिसमें किसी समाज की कुल जनसंख्या में नगरों में रहने वाली जनसंख्या का अनुपात लगातार बढ़ता जाता है। इसी प्रकार, Wirth (1938) ने शहरी जीवन को केवल भौगोलिक स्थान से नहीं, बल्कि बड़ी जनसंख्या, उच्च जनसंख्या घनत्व और सामाजिक विषमता से निर्मित एक विशिष्ट सामाजिक जीवन-पद्धति के रूप में समझाया। इस दृष्टि से शहरीकरण जनसंख्या के स्थानांतरण के साथ-साथ सामाजिक संरचना और मानवीय व्यवहार में होने वाला परिवर्तन भी है।

10.4.1 शहरीकरण का स्वरूप: शहरीकरण का स्वरूप बहुआयामी है।

- ❖ इसका पहला आयाम जनसांख्यिकीय शहरीकरण है, जिसके अंतर्गत नगरों में रहने वाली जनसंख्या तथा कुल जनसंख्या में उसके अनुपात में वृद्धि होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर प्रवास, प्राकृतिक जनसंख्या वृद्धि तथा ग्रामीण बस्तियों का नगरों में रूपांतरण इसके प्रमुख आधार हैं।
- ❖ दूसरा आयाम आर्थिक शहरीकरण है। पारंपरिक कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था से उद्योग, व्यापार, परिवहन, वित्त, सूचना-प्रौद्योगिकी और सेवा क्षेत्र की ओर संक्रमण शहरीकरण को गति प्रदान करता है। शहर उत्पादन, उपभोग, निवेश और रोजगार के प्रमुख केन्द्र बनते हैं। Jacobs (1969) के अनुसार, शहरों में विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों का सह-अस्तित्व नवाचार और आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करता है।
- ❖ तीसरा आयाम सामाजिक-सांस्कृतिक शहरीकरण है। नगरीय क्षेत्रों में विविध जातीय, भाषायी, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समूहों का सह-अस्तित्व सामाजिक संपर्क के नए रूपों को जन्म देता है। व्यक्तिवाद, व्यावसायिक गतिशीलता, सामाजिक गतिशीलता, उपभोक्तावाद तथा आधुनिक संचार माध्यम शहरी जीवन-पद्धति को प्रभावित करते हैं।
- ❖ चौथा आयाम स्थानिक एवं भौगोलिक शहरीकरण है। नगरों का विस्तार प्रशासनिक सीमाओं से बाहर निकलकर आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों तक होता है। इसके परिणामस्वरूप उपनगरीकरण (Suburbanization), परि-शहरीकरण (Peri-urbanization), महानगरीकरण (Metropolitanization) और नगरीय गलियारों (Urban Corridors) का विकास होता है।

10.4.2 शहरीकरण की प्रमुख प्रवृत्तियाँ: समकालीन विश्व में शहरीकरण की सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति शहरी जनसंख्या का निरंतर विस्तार है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, वैश्विक जनसंख्या का आधे से अधिक भाग अब शहरी क्षेत्रों में निवास करता है और आने वाले दशकों में शहरी जनसंख्या में उल्लेखनीय वृद्धि होने की संभावना है (United Nations, 2019)।

1. **महानगरीकरण की प्रवृत्ति:** बड़े शहर आर्थिक एवं प्रशासनिक गतिविधियों के केन्द्र बनने के साथ-साथ आसपास के क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रहे हैं। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, हैदराबाद, चेन्नई और कोलकाता जैसे महानगरों के आसपास विस्तृत महानगरीय क्षेत्र विकसित हुए हैं।
2. **छोटे एवं मध्यम नगरों का विकास:** शहरीकरण केवल महानगरों तक सीमित नहीं है। औद्योगिक केन्द्रों, विश्वविद्यालयों, पर्यटन स्थलों, जिला मुख्यालयों और परिवहन केन्द्रों के विकास से छोटे एवं मध्यम शहर भी क्षेत्रीय विकास के महत्वपूर्ण केन्द्र बन रहे हैं।
3. **ग्रामीण-शहरी प्रवास:** रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, बेहतर आय तथा जीवन की सुविधाओं की तलाश में ग्रामीण आबादी का नगरों की ओर प्रवास शहरीकरण की प्रमुख प्रेरक शक्ति है। Ravenstein (1885) के प्रवास संबंधी सिद्धांत में आर्थिक अवसरों और दूरी को प्रवास के महत्वपूर्ण निर्धारकों के रूप में रेखांकित किया गया था।
4. **परि-शहरी क्षेत्रों का विस्तार:** नगरों की सीमाओं के बाहर स्थित ग्रामीण क्षेत्र धीरे-धीरे नगरीय विशेषताओं को ग्रहण कर रहे हैं। कृषि भूमि का आवासीय, वाणिज्यिक एवं औद्योगिक उपयोग में परिवर्तन परि-शहरीकरण की प्रमुख विशेषता है।
5. **अनौपचारिक क्षेत्र का विस्तार:** विकासशील देशों में शहरी अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़ा है। रेहड़ी-पटरी, छोटे व्यापार, घरेलू उद्योग, अस्थायी रोजगार तथा विभिन्न प्रकार की अनौपचारिक सेवाएँ बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करती हैं।
6. **डिजिटल एवं स्मार्ट शहरीकरण:** सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने शहरीकरण को एक नया आयाम दिया है। स्मार्ट परिवहन, डिजिटल शासन, ऑनलाइन सेवाएँ, ई-कॉमर्स और डिजिटल भुगतान आधुनिक शहरों के स्वरूप को परिवर्तित कर रहे हैं।

10.4.3 शहरीकरण के प्रमुख निर्धारक: शहरीकरण किसी एक कारक का परिणाम नहीं है, बल्कि अनेक परस्पर संबंधित कारकों की संयुक्त प्रक्रिया है।

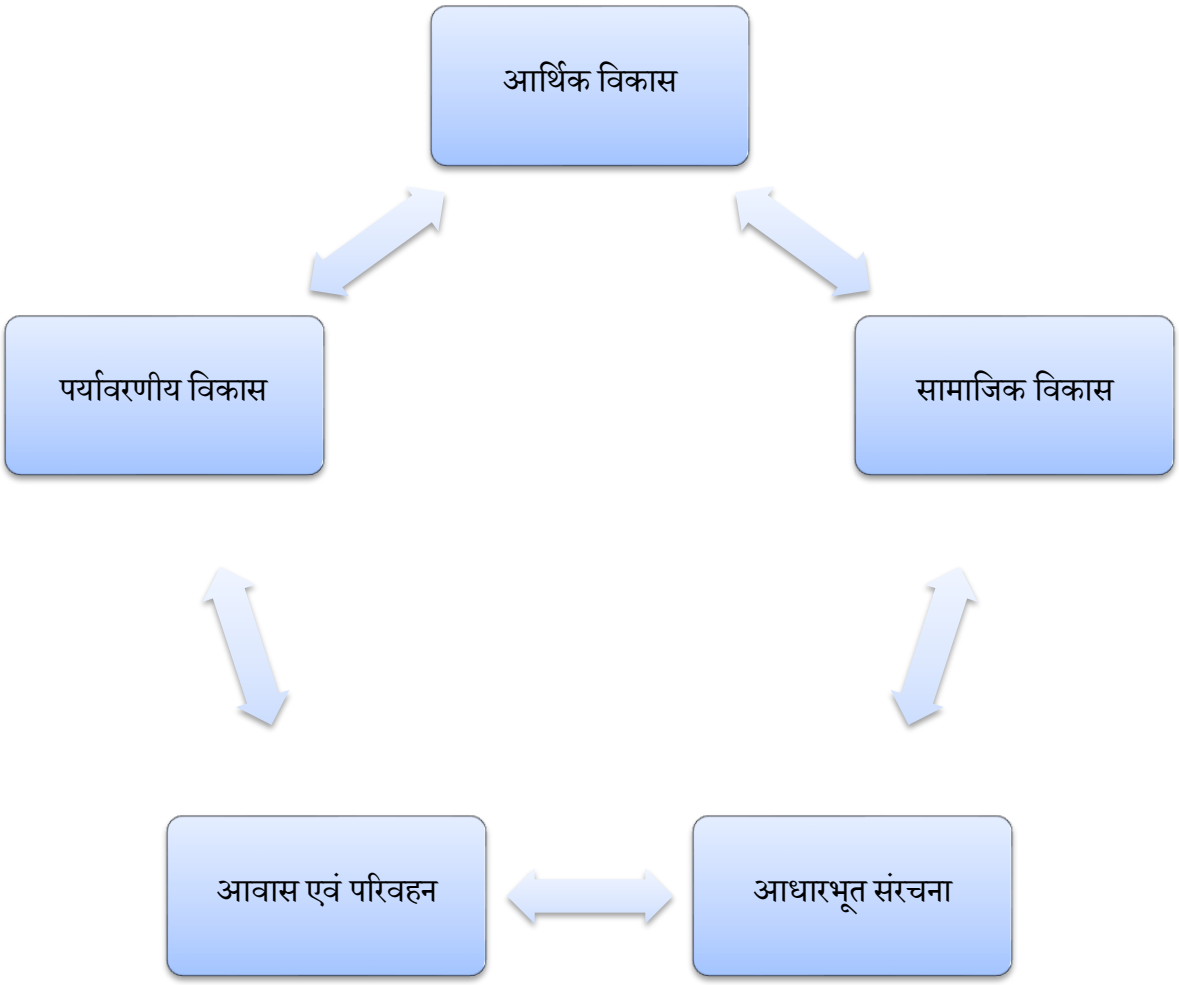
- ❖ औद्योगिकीकरण इसका प्रमुख निर्धारक है। उद्योगों की स्थापना से रोजगार और आय के अवसर उत्पन्न होते हैं तथा जनसंख्या शहरों की ओर आकर्षित होती है।
- ❖ रोजगार एवं आर्थिक अवसर भी शहरीकरण को तीव्र करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरों में विविध प्रकार के रोजगार उपलब्ध होने के कारण प्रवास की संभावना बढ़ती है।
- ❖ शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ भी महत्वपूर्ण निर्धारक हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों, विशिष्ट चिकित्सा सेवाओं और आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता शहरों को आकर्षण का केन्द्र बनाती है।
- ❖ परिवहन एवं संचार शहरों के विस्तार को गति प्रदान करते हैं। बेहतर सड़क, रेल, सार्वजनिक परिवहन और डिजिटल कनेक्टिविटी ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच दूरी को कम करती है।
- ❖ सरकारी नीतियाँ एवं नगरीय नियोजन भी शहरीकरण की दिशा और स्वरूप निर्धारित करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र, आवासीय योजनाएँ, स्मार्ट सिटी परियोजनाएँ, परिवहन गलियारे और आधारभूत संरचना में निवेश शहरी विकास को प्रभावित करते हैं।
- ❖ इसके अतिरिक्त जनसंख्या वृद्धि, वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, पर्यटन, राजनीतिक-प्रशासनिक केन्द्रों का विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी शहरीकरण के महत्वपूर्ण निर्धारक हैं।

10.5 शहरी विकास के प्रमुख आयाम

शहरी विकास आधुनिक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की एक जटिल, बहुआयामी एवं गतिशील प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत नगरीय क्षेत्रों की आर्थिक उत्पादकता, सामाजिक संरचना, आधारभूत सुविधाओं, आवास व्यवस्था, परिवहन प्रणाली तथा पर्यावरणीय गुणवत्ता में समन्वित सुधार किया जाता है। समकालीन विकास विमर्श में शहरों को केवल जनसंख्या संकेंद्रण अथवा औद्योगिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में नहीं, बल्कि आर्थिक अवसरों, सामाजिक परिवर्तन, तकनीकी नवाचार और सांस्कृतिक अंतःक्रिया के प्रमुख केंद्रों के रूप में देखा जाता है। शहरी विकास की

वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि नगर अपने नागरिकों को रोजगार, गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक सेवाएँ, सुरक्षित आवास, सुगम परिवहन और स्वच्छ पर्यावरण उपलब्ध कराने में कितना सक्षम है। Michalina et al. (2021) ने शहरी सततता के मूल्यांकन में आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय और संस्थागत आयामों तथा उनसे संबंधित संकेतकों के महत्त्व को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार Merino-Saum et al. (2020) ने विभिन्न शहरी सततता मूल्यांकन पहलों का विश्लेषण करते हुए यह प्रदर्शित किया कि शहरों के विकास का आकलन अनेक परस्पर संबंधित संकेतकों के आधार पर किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से शहरी विकास के पाँच प्रमुख आयामों जैसे आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, आधारभूत संरचना, आवास एवं परिवहन तथा पर्यावरणीय विकास का अध्ययन आवश्यक है।

चित्र सं० 1.2: शहरी विकास के प्रमुख आयाम



❖ **आर्थिक विकास (Economic Development):** आर्थिक विकास शहरी विकास का एक आधारभूत आयाम है। इसके अंतर्गत नगरों की उत्पादन क्षमता, रोजगार सृजन, आय में वृद्धि, औद्योगिक विस्तार, व्यापारिक गतिविधियों, उद्यमिता तथा निवेश के अवसरों में सुधार शामिल है। शहर सामान्यतः उद्योग, वाणिज्य, बैंकिंग, शिक्षा, स्वास्थ्य, सूचना प्रौद्योगिकी और पर्यटन जैसी गतिविधियों के केंद्र होते हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से वे स्थानीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ-साथ क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय आर्थिक विकास में भी योगदान देते हैं। आर्थिक विकास का महत्त्व केवल सकल उत्पादन अथवा आय की वृद्धि तक सीमित नहीं है। इसका वास्तविक उद्देश्य आर्थिक अवसरों का विस्तार करना और उनके लाभों को समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचाना है। Rodrigues और Franco (2020) ने नगरों के सतत विकास के मूल्यांकन में आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संकेतकों को समेकित रूप से देखने की आवश्यकता पर बल दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि आर्थिक प्रगति को सामाजिक एवं पर्यावरणीय परिणामों से अलग करके नहीं समझा जा सकता। शहरी आर्थिक विकास में लघु एवं मध्यम उद्यम, स्थानीय बाजार, स्वरोजगार, कौशल विकास, नवाचार और अनौपचारिक क्षेत्र की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि आर्थिक अवसर केवल उच्च आय वाले समूहों अथवा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों तक सीमित रह जाते हैं, तो शहर में आर्थिक असमानता और सामाजिक विभाजन बढ़ सकता है। आर्थिक विकास शहरों में रोजगार सृजन, आय वृद्धि, गरीबी में कमी और सार्वजनिक सेवाओं के लिए संसाधनों की उपलब्धता को प्रभावित करता है। इसलिए समावेशी आर्थिक विकास शहरी समृद्धि के साथ-साथ सामाजिक स्थिरता का भी आधार है।

❖ **सामाजिक विकास (Social Development):** सामाजिक विकास शहरी विकास का वह आयाम है जो नागरिकों की जीवन-गुणवत्ता, सामाजिक समानता, मानव क्षमताओं, सामुदायिक सहभागिता और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच से संबंधित है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक स्थानों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की उपलब्धता शामिल है। शहरों में विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के लोग निवास करते हैं। इस विविधता के कारण सामाजिक विकास के लिए ऐसी नीतियों की आवश्यकता होती है जो सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करें। विशेष रूप से

महिलाओं, बच्चों, वृद्धों, दिव्यांग व्यक्तियों, प्रवासी श्रमिकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की आवश्यकताओं को शहरी नियोजन में सम्मिलित करना आवश्यक है। Dempsey et al. (2011) ने शहरी सामाजिक सततता की व्याख्या करते हुए समान अवसरों, संसाधनों तक न्यायसंगत पहुँच और समुदाय की स्थिरता को महत्त्वपूर्ण तत्व माना है। उनके अध्ययन के अनुसार सामाजिक सततता का संबंध केवल भौतिक सुविधाओं की उपलब्धता से नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों और समुदाय के दीर्घकालिक कल्याण से भी है। सामाजिक विकास यह सुनिश्चित करता है कि शहरी आर्थिक प्रगति का लाभ समाज के सभी वर्गों को प्राप्त हो। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, सुरक्षित सार्वजनिक स्थान और सामाजिक सुरक्षा नागरिकों की क्षमताओं को बढ़ाते हैं। इसके विपरीत, सामाजिक असमानता और सेवाओं तक सीमित पहुँच शहरी विकास के लाभों को कमजोर कर सकती है।

- **आधारभूत संरचना (Urban Infrastructure):** आधारभूत संरचना शहरी विकास की कार्यात्मक आधारशिला है। इसमें सड़कें, पेयजल आपूर्ति, विद्युत व्यवस्था, सीवरेज, जल निकासी, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, डिजिटल कनेक्टिविटी, स्वास्थ्य संस्थान, शैक्षणिक संस्थान तथा अन्य सार्वजनिक सुविधाएँ सम्मिलित हैं। इन सुविधाओं की गुणवत्ता और उपलब्धता किसी शहर की आर्थिक दक्षता, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा नागरिकों की दैनिक जीवन-व्यवस्था को प्रभावित करती है। तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण आधारभूत सुविधाओं पर दबाव बढ़ता है। यदि नगरीय नियोजन जनसंख्या वृद्धि, भूमि उपयोग और भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं किया जाता, तो जल संकट, यातायात जाम, जलभराव, अनियोजित बस्तियों और अपशिष्ट प्रबंधन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। Michalina et al. (2021) के अध्ययन में शहरी सततता के विभिन्न संकेतकों का विश्लेषण करते हुए पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत पक्षों के समन्वित मूल्यांकन की आवश्यकता स्पष्ट की गई है। इस परिप्रेक्ष्य में आधारभूत संरचना का विकास केवल निर्माण कार्य नहीं, बल्कि दीर्घकालिक शहरी क्षमता निर्माण का महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रभावी आधारभूत संरचना आर्थिक गतिविधियों को सुचारु बनाती है, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करती है और नागरिकों को आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराती है। अतः इसका विकास समावेशी, सुलभ, संसाधन-कुशल और आपदाओं के प्रति लचीला होना चाहिए।

❖ **आवास एवं परिवहन (Housing and Transportation):** आवास एवं परिवहन शहरी विकास के ऐसे परस्पर संबंधित आयाम हैं जो नागरिकों की जीवन-गुणवत्ता, आर्थिक अवसरों तक पहुँच और सामाजिक समावेशन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। आवास का अर्थ केवल रहने के लिए भवन उपलब्ध कराना नहीं है, बल्कि सुरक्षित, पर्याप्त, किफायती और बुनियादी सुविधाओं से युक्त निवास सुनिश्चित करना भी है। तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या और भूमि की बढ़ती कीमतों के कारण निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लिए उपयुक्त आवास प्राप्त करना कठिन हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप अनौपचारिक बस्तियों का विस्तार, भीड़भाड़ और आवासीय असमानता बढ़ने की आशंका रहती है। इसलिए शहरी आवास नीति में भूमि उपयोग, आवास की वहनीयता, पेयजल, स्वच्छता और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। परिवहन व्यवस्था शहर के विभिन्न भागों को जोड़ने के साथ-साथ नागरिकों को रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य और बाजार तक पहुँच प्रदान करती है। सार्वजनिक परिवहन, पैदल मार्ग, साइकिल ट्रैक और सुरक्षित सड़कें एक प्रभावी एवं समावेशी परिवहन प्रणाली के प्रमुख घटक हैं। आवास और परिवहन के बीच संतुलन न होने पर नागरिकों को रोजगार केंद्रों तक पहुँचने में अधिक समय और धन खर्च करना पड़ता है। इसके विपरीत, उचित स्थान पर किफायती आवास तथा विश्वसनीय सार्वजनिक परिवहन आर्थिक अवसरों तक समान पहुँच को बढ़ावा देते हैं। इसलिए आवास एवं परिवहन को अलग-अलग नीतिगत विषयों के बजाय एकीकृत शहरी नियोजन के हिस्से के रूप में देखना आवश्यक है।

❖ **पर्यावरणीय विकास (Environmental Development):** पर्यावरणीय विकास शहरीकरण को प्रकृति के साथ संतुलित करने तथा वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ जीवन-परिस्थितियाँ सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है। तीव्र और अनियोजित शहरीकरण से वायु एवं जल प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट, हरित क्षेत्रों में कमी, प्राकृतिक जल निकायों का क्षरण और शहरी तापमान में वृद्धि जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। पर्यावरणीय दृष्टि से सतत शहरों के निर्माण के लिए हरित क्षेत्र, शहरी वन, वर्षा जल संचयन, जल संरक्षण, नवीकरणीय ऊर्जा, ऊर्जा-कुशल भवन, अपशिष्ट पुनर्चक्रण और पर्यावरण-अनुकूल परिवहन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, बाढ़, अत्यधिक गर्मी, जल संकट और अन्य जलवायु संबंधी जोखिमों के प्रति शहरी क्षेत्रों की अनुकूलन क्षमता बढ़ाना भी महत्त्वपूर्ण है। Merino-Saum et al. (2020) ने शहरी

सततता के 2,847 संकेतकों का विश्लेषण करते हुए बताया कि विभिन्न मूल्यांकन प्रणालियों में सामाजिक और पर्यावरणीय विषयों के साथ-साथ रोजगार, सेवाओं तक पहुँच और जीवन-गुणवत्ता जैसे पहलुओं पर भी विचार किया जाता है। यह अध्ययन संकेत करता है कि पर्यावरणीय विकास को अन्य शहरी आयामों से अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए। पर्यावरणीय विकास नागरिकों के स्वास्थ्य, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और शहरों की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए आवश्यक है। पर्यावरणीय संतुलन की उपेक्षा से आर्थिक उपलब्धियों और सामाजिक कल्याण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

10.6 भारत में शहरी विकास की प्रमुख चुनौतियाँ

भारत में शहरी विकास आर्थिक प्रगति, औद्योगीकरण, रोजगार सृजन, सामाजिक परिवर्तन तथा आधुनिक जीवन-शैली का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। नगर केवल जनसंख्या के संकेंद्रण के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे उत्पादन, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन और सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र भी हैं। तथापि, तीव्र नगरीकरण, अनियोजित भूमि उपयोग, जनसंख्या का बढ़ता दबाव तथा आधारभूत सुविधाओं की अपर्याप्तता ने भारतीय शहरों के समक्ष अनेक जटिल चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। Hoelscher और Aijaz (2016) के अनुसार, भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को शहरी शासन, सामाजिक-आर्थिक बहिष्करण तथा जलवायु परिवर्तन जैसी परस्पर संबंधित समस्याओं के संदर्भ में समझना आवश्यक है। इसी प्रकार, Ghosh और Kansal (2014) ने शहरी विकास से संबंधित प्रमुख चुनौतियों में झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, जल उपलब्धता, सीवेज व्यवस्था तथा वायु प्रदूषण को रेखांकित किया है। अतः भारत में शहरी विकास का प्रश्न केवल भौतिक अवसंरचना के विस्तार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन, आर्थिक अवसरों तथा सुशासन से भी संबंधित है।

चित्र सं० 1.3: भारत में शहरी विकास की प्रमुख चुनौतियाँ



❖ **तीव्र एवं अनियोजित नगरीकरण:** भारत में तीव्र नगरीकरण के कारण अनेक शहरों का विस्तार उनकी नियोजन क्षमता और आधारभूत सुविधाओं के विकास से अधिक तेजी से हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों से रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में होने वाला प्रवास शहरी जनसंख्या को बढ़ाता है। परिणामस्वरूप, शहरों की सीमाओं पर अनधिकृत कॉलोनियों, अनियोजित आवासीय क्षेत्रों तथा अव्यवस्थित व्यावसायिक गतिविधियों का विस्तार होता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली-राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में शहरी विस्तार ने आसपास के ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्रों पर भूमि उपयोग परिवर्तन का दबाव बढ़ाया है। इसी प्रकार, बेंगलुरु और हैदराबाद में सूचना प्रौद्योगिकी तथा सेवा क्षेत्र के विस्तार के साथ आवास, परिवहन और

जल आपूर्ति की मांग बढ़ी है। Patel et al. (2024) के स्थानिक अध्ययन संबंधी समीक्षा साहित्य से स्पष्ट होता है कि भारत में शहरी विस्तार भूमि उपयोग एवं भूमि आवरण में व्यापक परिवर्तन ला रहा है। जब शहरी विस्तार वैज्ञानिक नियोजन, परिवहन व्यवस्था और पर्यावरणीय आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होता, तब भूमि उपयोग में असंतुलन, यातायात जाम, जलभराव तथा सार्वजनिक सुविधाओं पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न होता है।

- **आवास की कमी एवं झुग्गी-बस्तियों का विस्तार:** शहरी विकास की एक प्रमुख चुनौती सभी आय-वर्गों को सुरक्षित, पर्याप्त और किफायती आवास उपलब्ध कराना है। भूमि की बढ़ती कीमतों, महँगे किराये तथा निम्न-आय वर्ग की सीमित क्रय-क्षमता के कारण अनेक परिवार अनौपचारिक बस्तियों में रहने को विवश होते हैं। इन क्षेत्रों में स्वच्छ पेयजल, शौचालय, जल निकासी, ठोस अपशिष्ट संग्रहण और सुरक्षित आवास जैसी सुविधाएँ अपर्याप्त हो सकती हैं। Tripathi (2015) ने भारत के 52 बड़े शहरी समूहों के अध्ययन में झुग्गी-बस्तियों की व्यापकता तथा उससे संबंधित आर्थिक और नगरीय कारकों का विश्लेषण किया। इसी प्रकार, Patel et al. (2020) ने दर्शाया कि आवासीय अभाव को केवल झुग्गी-बस्ती में निवास करने के आधार पर नहीं समझा जा सकता; आवास की गुणवत्ता, बुनियादी सुविधाओं और जीवन-स्थितियों में विद्यमान अनेक प्रकार की वंचनाओं का भी मूल्यांकन आवश्यक है। मुंबई में भूमि की ऊँची कीमतें और रोजगार केंद्रों के निकट आवास की सीमित उपलब्धता निम्न-आय वर्ग के लिए आवासीय संकट को गंभीर बनाती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए किफायती आवास, किराये के आवास, बुनियादी सुविधाओं के विस्तार तथा झुग्गी-बस्तियों के मानवीय पुनर्विकास को प्राथमिकता देना आवश्यक है।
- **यातायात एवं सार्वजनिक परिवहन की समस्या:** शहरी जनसंख्या में वृद्धि के साथ दैनिक आवागमन की आवश्यकता भी बढ़ती है। निजी वाहनों की बढ़ती संख्या, सीमित सड़क क्षमता, अपर्याप्त सार्वजनिक परिवहन तथा पैदल यात्रियों के लिए सुरक्षित मार्गों की कमी यातायात व्यवस्था को प्रभावित करती है। इसके परिणामस्वरूप यात्रा समय, ईंधन की खपत, वायु प्रदूषण और दुर्घटनाओं का जोखिम बढ़ता है। Pucher et al. (2005) ने भारतीय शहरी परिवहन व्यवस्था में सार्वजनिक परिवहन की बढ़ती मांग तथा उपलब्ध सेवाओं और संसाधनों के बीच असंतुलन को रेखांकित किया। दिल्ली, बेंगलुरु और पुणे जैसे शहरों में व्यस्त

समय के दौरान यातायात जाम आर्थिक उत्पादकता और नागरिकों के दैनिक जीवन को प्रभावित करता है। मेट्रो सेवाओं के विस्तार से कुछ क्षेत्रों में आवागमन के विकल्प बढ़े हैं, लेकिन अंतिम छोर तक संपर्क, बस सेवाओं और पैदल मार्गों का समुचित विकास भी आवश्यक है। इस चुनौती से निपटने के लिए एकीकृत सार्वजनिक परिवहन, प्रभावी बस नेटवर्क, सुरक्षित पैदल मार्ग, साइकिल पथ और परिवहन-केंद्रित शहरी नियोजन को प्रोत्साहित करना चाहिए।

- **जल संकट एवं स्वच्छता संबंधी समस्याएँ:** शहरीकरण से घरेलू, औद्योगिक और व्यावसायिक गतिविधियों के लिए जल की मांग बढ़ती है। दूसरी ओर, भूजल का अत्यधिक दोहन, जल स्रोतों का प्रदूषण, वितरण नेटवर्क में रिसाव तथा जल निकायों पर अतिक्रमण उपलब्ध जल संसाधनों को प्रभावित करते हैं। Karmaksh और Kumar (2026) ने भारतीय शहरों में शहरी विकास तथा जल निकायों के बीच संबंधों की समीक्षा करते हुए जल आपूर्ति, जल निकायों के संरक्षण, शासन व्यवस्था और जलवायु संबंधी जोखिमों को महत्त्वपूर्ण विषयों के रूप में प्रस्तुत किया है। बेंगलुरु में जल उपलब्धता से जुड़ी समस्याएँ शहरी विस्तार, भूजल पर दबाव तथा जल प्रबंधन की आवश्यकता को उजागर करती हैं। इसी प्रकार, मुंबई की कुछ अनौपचारिक बस्तियों में जलापूर्ति की असमानता सामाजिक एवं संस्थागत कारणों से भी संबंधित है (Lubeck-Schricker et al., 2023)। इसके अतिरिक्त, सीवेज के अपर्याप्त उपचार से नदियों और झीलों में प्रदूषण बढ़ता है। अतः वर्षा जल संचयन, जल निकायों का पुनर्जीवन, अपशिष्ट जल का उपचार तथा पुनः उपयोग और समान जल वितरण शहरी विकास की प्राथमिकताएँ होनी चाहिए।
- **ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की चुनौती:** जनसंख्या वृद्धि, उपभोग के बदलते स्वरूप तथा व्यावसायिक गतिविधियों के विस्तार से शहरों में घरेलू और व्यावसायिक कचरे की मात्रा बढ़ती है। अनेक नगर निकायों के लिए कचरे का पृथक्करण, संग्रहण, परिवहन, प्रसंस्करण और सुरक्षित निस्तारण चुनौतीपूर्ण बना हुआ है। Kumar और Agrawal (2020) ने भारतीय शहरों में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की समीक्षा करते हुए स्रोत पर कचरे का पृथक्करण न होना, अपर्याप्त प्रसंस्करण व्यवस्था, वित्तीय सीमाएँ और नीतियों के क्रियान्वयन से संबंधित समस्याओं को रेखांकित किया। चंडीगढ़ में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन संबंधी पहलों का अध्ययन दर्शाता

है कि प्रभावी संस्थागत व्यवस्था, नागरिक सहभागिता और बेहतर प्रबंधन पद्धतियाँ शहरी स्वच्छता सुधारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं (Gupta & Gupta, 2015)।

- **पर्यावरणीय प्रदूषण एवं जलवायु परिवर्तन:** शहरी विकास के दौरान हरित क्षेत्रों में कमी, वाहनों से उत्सर्जन, निर्माण गतिविधियों से धूल, औद्योगिक प्रदूषण तथा जल निकायों के क्षरण से पर्यावरणीय गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसके साथ ही, जलवायु परिवर्तन शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक तापमान, हीटवेव, बाढ़ और जलभराव के जोखिम को बढ़ाता है। Imam और Banerjee (2016) ने भारतीय शहरों में हरित क्षेत्रों के क्षरण, शहरी ऊष्मा द्वीप प्रभाव और वायु प्रदूषण के बीच संबंधों का विश्लेषण किया। उन्होंने शहरी हरियाली तथा नियोजन संबंधी उपायों के महत्त्व को रेखांकित किया। दिल्ली में वायु प्रदूषण तथा अहमदाबाद में अत्यधिक गर्मी से निपटने की आवश्यकता इस चुनौती की गंभीरता को स्पष्ट करती है। Khosla और Bhardwaj (2019) के अनुसार, भारतीय शहरों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए शमन और अनुकूलन दोनों प्रकार के उपाय आवश्यक हैं। इसलिए शहरी वनीकरण, ऊर्जा-कुशल भवन, वर्षा जल प्रबंधन, जल निकायों का संरक्षण तथा जलवायु-अनुकूल अवसंरचना विकसित करना आवश्यक है।
- **शहरी गरीबी एवं सामाजिक असमानता:** आर्थिक गतिविधियों का संकेंद्रण शहरों में रोजगार के अवसर पैदा करता है, लेकिन इन अवसरों का लाभ सभी वर्गों को समान रूप से नहीं मिलता। अनौपचारिक श्रमिक, प्रवासी मजदूर, घरेलू कामगार और सड़क विक्रेता अक्सर रोजगार की अनिश्चितता, सीमित सामाजिक सुरक्षा तथा आवासीय असुरक्षा का सामना करते हैं। शहरी क्षेत्रों में आय, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और सार्वजनिक सुविधाओं तक पहुँच की असमानता सामाजिक बहिष्करण को बढ़ा सकती है। Devika (2016) ने केरल की एक शहरी बस्ती के अध्ययन में जाति, वर्ग और लैंगिक संबंधों से जुड़ी असमानताओं के महत्त्व को उजागर किया। किसी शहर के आधुनिक व्यावसायिक क्षेत्र में उपलब्ध सुविधाओं और उसी शहर की निम्न-आय बस्ती में उपलब्ध सुविधाओं के बीच अंतर शहरी विकास के असमान स्वरूप को दर्शा सकता है। इसलिए सामाजिक रूप से समावेशी विकास के लिए गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, कौशल विकास, सामाजिक सुरक्षा तथा कमजोर वर्गों की नियोजन प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है।

❖ **शहरी शासन एवं वित्तीय संसाधनों की सीमाएँ:** शहरी विकास की प्रभावशीलता नगर निकायों की प्रशासनिक क्षमता, वित्तीय संसाधनों, तकनीकी दक्षता तथा नागरिक सहभागिता पर निर्भर करती है। अनेक नगर निकायों के समक्ष सीमित राजस्व, प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी, विभागों के बीच समन्वय का अभाव और योजनाओं के कमजोर क्रियान्वयन जैसी समस्याएँ रहती हैं। जब परिवहन, जलापूर्ति, आवास और पर्यावरण से संबंधित विभाग अलग-अलग योजनाओं पर कार्य करते हैं, तब विकास की प्राथमिकताओं में असंगति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए स्थानीय शासन को मजबूत करना, वित्तीय विकेंद्रीकरण, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा नागरिक सहभागिता को बढ़ावा देना आवश्यक है।

10.7 उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी विकास

उत्तराखंड, जिसे अपनी हिमालयी भौगोलिक संरचना, प्राकृतिक संसाधनों, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विरासत तथा पर्यटन की अपार संभावनाओं के लिए जाना जाता है, भारत के उन राज्यों में से एक है जहाँ शहरी विकास की प्रकृति अन्य राज्यों से काफी भिन्न है। राज्य का गठन 9 नवंबर 2000 को उत्तर प्रदेश से अलग होकर हुआ। राज्य का लगभग 86 प्रतिशत क्षेत्र पर्वतीय तथा लगभग 65 प्रतिशत क्षेत्र वनाच्छादित है। ऐसी भौगोलिक एवं पारिस्थितिक विशिष्टता के कारण उत्तराखंड में शहरीकरण केवल जनसंख्या के ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह पर्वतीय पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधनों, पर्यटन, तीर्थाटन, औद्योगीकरण, प्रवास तथा क्षेत्रीय विकास के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रक्रिया भी है। उत्तराखंड में शहरीकरण मुख्यतः दो भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में दिखाई देता है। पर्वतीय क्षेत्र में देहरादून, नैनीताल, मसूरी, अल्मोड़ा, रानीखेत, पौड़ी, श्रीनगर और पिथौरागढ़ जैसे नगर प्रशासन, शिक्षा, पर्यटन, स्वास्थ्य एवं सेवाओं के केंद्र हैं। दूसरी ओर, तराई-भाबर एवं मैदानी क्षेत्र में हरिद्वार, ऋषिकेश, हल्द्वानी, रुद्रपुर, काशीपुर तथा रुड़की जैसे नगर औद्योगिक, वाणिज्यिक, शैक्षिक, परिवहन और धार्मिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र बन चुके हैं। इस प्रकार उत्तराखंड का शहरी तंत्र एक ओर हिमालयी नगरों की पारिस्थितिक संवेदनशीलता और दूसरी ओर मैदानी नगरों के तीव्र आर्थिक विस्तार का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करता है। जनगणना 2011 के अनुसार उत्तराखंड की लगभग 30.2 प्रतिशत आबादी शहरी क्षेत्रों में निवास करती थी। हालांकि राज्य का शहरीकरण राष्ट्रीय औसत से बहुत अधिक भिन्न नहीं था, लेकिन पिछले दशकों में कुछ चुनिंदा नगरों में शहरी

जनसंख्या, निर्मित क्षेत्र और आर्थिक गतिविधियों का तीव्र विस्तार हुआ है। विशेष रूप से देहरादून, हरिद्वार और हल्द्वानी जैसे नगर क्षेत्रीय विकास के प्रमुख growth centres के रूप में उभरे हैं।

देहरादून उत्तराखंड की राजधानी होने के कारण प्रशासनिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य, सेवा एवं रियल एस्टेट गतिविधियों का प्रमुख केंद्र है। इसके परिणामस्वरूप आसपास के ग्रामीण एवं कृषि क्षेत्रों में तेजी से भूमि-उपयोग परिवर्तन हुआ है। हाल के अध्ययन से पता चलता है कि देहरादून जिले में निर्मित क्षेत्र के विस्तार के साथ भूमि उपयोग में परिवर्तन, तापमान वृद्धि तथा पर्यावरणीय दबाव भी बढ़े हैं (Dhankar et al., 2024)। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि यदि शहरी विस्तार को वैज्ञानिक भूमि-उपयोग नियोजन से नियंत्रित नहीं किया गया, तो विकास स्वयं पर्यावरणीय जोखिम का कारण बन सकता है। हल्द्वानी कुमाऊँ क्षेत्र का प्रमुख प्रवेशद्वार और व्यापारिक केंद्र है। यह नैनीताल, अल्मोड़ा, बागेश्वर, पिथौरागढ़ तथा अन्य पर्वतीय जिलों को मैदानी बाजारों और संस्थानों से जोड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, परिवहन और आवासीय विकास के कारण हल्द्वानी-भाबर क्षेत्र में तेजी से शहरी विस्तार हुआ है। इस क्षेत्र के विकास में नियोजित परिवहन, जलापूर्ति, सीवरेज, पार्किंग, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और हरित क्षेत्र विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्तराखंड के शहरी विकास को पर्यटन एवं तीर्थाटन से अलग करके नहीं देखा जा सकता। हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारनाथ, नैनीताल, मसूरी और हेमकुंड साहिब जैसे स्थानों पर पर्यटन एवं तीर्थाटन स्थानीय अर्थव्यवस्था को रोजगार और आय प्रदान करते हैं। परंतु पर्यटन सीजन में इन नगरों की वास्तविक आबादी में अस्थायी रूप से अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इससे यातायात, जलापूर्ति, ठोस अपशिष्ट, सीवरेज और सार्वजनिक सुविधाओं पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। विशेष रूप से पर्वतीय नगरों में पर्यटन आधारित अनियोजित निर्माण पर्यावरणीय वहन क्षमता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए उत्तराखंड के लिए “Tourism-led but ecology-sensitive urban development” की अवधारणा अधिक उपयुक्त होगी, जिसमें पर्यटन से प्राप्त आर्थिक लाभ और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। उत्तराखंड के पर्वतीय नगरों में शहरी विकास की सबसे बड़ी चुनौती उनकी भौगोलिक संवेदनशीलता है। सीमित समतल भूमि, तीव्र ढाल, भूस्खलन, भूकंपीय जोखिम, अनियमित वर्षा और जलस्रोतों पर दबाव के कारण सामान्य मैदानी शहरी नियोजन मॉडल पर्वतीय क्षेत्रों में सीधे लागू नहीं किए जा सकते। अत्यधिक निर्माण से ढलानों की स्थिरता प्रभावित हो सकती है और प्राकृतिक जल निकासी अवरुद्ध हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, अनेक छोटे पर्वतीय नगरों में रोजगार के सीमित अवसरों के कारण युवा आबादी का मैदानी क्षेत्रों की ओर प्रवास एक महत्त्वपूर्ण समस्या है।

परिणामस्वरूप कुछ पर्वतीय बस्तियों में जनसंख्या क्षरण (population decline) और दूसरी ओर देहरादून, हल्द्वानी, हरिद्वार तथा रुद्रपुर जैसे नगरों में जनसंख्या एवं अवसंरचना पर बढ़ता दबाव दिखाई देता है। इसलिए उत्तराखंड की शहरी नीति में "balanced urbanisation" अर्थात् संतुलित शहरीकरण को प्राथमिकता देना आवश्यक है। उत्तराखंड में भविष्य का शहरी विकास सतत, आपदा-रोधी, समावेशी और क्षेत्र-विशिष्ट होना चाहिए। पर्वतीय नगरों में slope-sensitive zoning, वैज्ञानिक भवन मानक, वर्षा जल संचयन, प्राकृतिक जल निकासी तंत्र का संरक्षण तथा हरित क्षेत्रों का विस्तार आवश्यक है। मैदानी नगरों में सार्वजनिक परिवहन, पार्किंग, सीवरेज, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और अनियंत्रित शहरी फैलाव को नियंत्रित करना अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। GIS एवं remote sensing जैसी आधुनिक तकनीकों के माध्यम से भूमि उपयोग परिवर्तन, शहरी फैलाव और पर्यावरणीय जोखिमों की निरंतर निगरानी की जा सकती है। साथ ही, स्थानीय निकायों की वित्तीय एवं तकनीकी क्षमता बढ़ाने और नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। छोटे नगरों में स्थानीय कृषि उत्पाद, हस्तशिल्प, पर्यटन, डिजिटल सेवाएँ और लघु उद्यम विकसित करके स्थानीय रोजगार बढ़ाया जा सकता है। इससे ग्रामीण-से-शहरी मजबूरन प्रवास को कम करने में सहायता मिलेगी।

10.8 सारांश

शहरी विकास समकालीन समाज में होने वाले आर्थिक, सामाजिक, जनसांख्यिकीय, भौतिक, तकनीकी एवं पर्यावरणीय परिवर्तनों की एक बहुआयामी, गतिशील, योजनाबद्ध एवं निरंतर प्रक्रिया है। आधुनिक शहर केवल जनसंख्या के संकेन्द्रण अथवा आवास के स्थान नहीं हैं, बल्कि वे उत्पादन, रोजगार, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशासन, नवाचार, पर्यटन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। अतः शहरी विकास का वास्तविक उद्देश्य केवल सड़कों, भवनों और अन्य भौतिक संरचनाओं का विस्तार करना नहीं, बल्कि नागरिकों को सुरक्षित, सुविधाजनक, समावेशी, स्वस्थ एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन-परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना है। इकाई में शहरी विकास की अवधारणा को व्यापक दृष्टिकोण से समझाया गया है। इसके अंतर्गत भौतिक एवं आधारभूत अवसंरचना, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास एवं समावेशन, पर्यावरणीय विकास एवं सततता, संस्थागत एवं प्रशासनिक विकास तथा तकनीकी एवं डिजिटल विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है। पर्याप्त आवास, सड़क, परिवहन, पेयजल, विद्युत, सीवरेज, स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी आधारभूत सुविधाएँ शहरों की कार्यक्षमता का आधार हैं। दूसरी ओर,

रोजगार, निवेश, उद्यमिता और स्थानीय आर्थिक गतिविधियों का विस्तार आर्थिक विकास को गति देता है। सामाजिक समावेशन यह सुनिश्चित करता है कि महिलाओं, बच्चों, वृद्धों, दिव्यांगों, प्रवासी श्रमिकों तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को विकास के समान अवसर प्राप्त हों। शहरी विकास का एक महत्वपूर्ण आधार पर्यावरणीय सततता है। तीव्र शहरीकरण प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ाता है और वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट, हरित क्षेत्रों में कमी, जल संकट तथा शहरी ताप द्वीप जैसी समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है। इसलिए वर्षा जल संचयन, जल निकायों का संरक्षण, ऊर्जा-कुशल भवन, नवीकरणीय ऊर्जा, हरित क्षेत्र, सार्वजनिक परिवहन तथा वैज्ञानिक अपशिष्ट प्रबंधन जैसे उपाय आवश्यक हैं। साथ ही, प्रभावी स्थानीय शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही, वित्तीय क्षमता, डिजिटल प्रशासन और नागरिक सहभागिता शहरी विकास को अधिक प्रभावी एवं उत्तरदायी बनाते हैं। शहरीकरण को इकाई में केवल ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जनसंख्या के प्रवास के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं स्थानिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जनसांख्यिकीय, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा स्थानिक-भौगोलिक शहरीकरण इसके प्रमुख स्वरूप हैं। महानगरीकरण, छोटे एवं मध्यम नगरों का विकास, ग्रामीण-शहरी प्रवास, परि-शहरीकरण, अनौपचारिक क्षेत्र का विस्तार तथा डिजिटल एवं स्मार्ट शहरीकरण इसकी प्रमुख समकालीन प्रवृत्तियाँ हैं। औद्योगिकीकरण, रोजगार एवं आर्थिक अवसर, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, सरकारी नीतियाँ, जनसंख्या वृद्धि, वैश्वीकरण, पर्यटन तथा तकनीकी विकास शहरीकरण के प्रमुख निर्धारक हैं। इकाई में शहरी विकास के आर्थिक, सामाजिक, आधारभूत संरचनात्मक, आवास एवं परिवहन तथा पर्यावरणीय आयामों पर विशेष बल दिया गया है। आर्थिक विकास रोजगार, आय, उद्यमिता और निवेश को बढ़ावा देता है; सामाजिक विकास जीवन-गुणवत्ता, समान अवसर और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करता है। आधारभूत संरचना शहर की कार्यात्मक आधारशिला है, जबकि किफायती आवास और सुगम परिवहन सामाजिक एवं आर्थिक अवसरों तक पहुँच को प्रभावित करते हैं। पर्यावरणीय विकास वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ एवं सुरक्षित शहरी परिवेश सुनिश्चित करने का माध्यम है। इन सभी आयामों को अलग-अलग नहीं, बल्कि परस्पर संबद्ध एवं एकीकृत व्यवस्था के रूप में समझना आवश्यक है। समग्र रूप से, इकाई यह स्पष्ट करती है कि शहरी विकास का अर्थ केवल "बड़े और आधुनिक शहर" बनाना नहीं, बल्कि ऐसे शहरों का निर्माण करना है जो आर्थिक रूप से सक्षम, सामाजिक रूप से समावेशी, पर्यावरणीय रूप से सतत, तकनीकी रूप से सक्षम, प्रशासनिक रूप से उत्तरदायी तथा आपदाओं एवं भविष्य की चुनौतियों के प्रति लचीले हों। इस दृष्टिकोण से सतत शहरी विकास मानव कल्याण, सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण और दीर्घकालिक क्षेत्रीय विकास के बीच संतुलन स्थापित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

10.9 अभ्यास प्रश्न

- ❖ शहरी विकास की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
- ❖ शहरीकरण और शहरी विकास के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
- ❖ शहरी विकास में सामाजिक समावेशन के महत्व की व्याख्या कीजिए।

- ❖ शहरी विकास और पर्यावरणीय सततता के बीच संबंध स्पष्ट कीजिए।
- ❖ शहरीकरण के आर्थिक एवं सामाजिक निर्धारकों की व्याख्या कीजिए।
- ❖ आवास एवं परिवहन को शहरी विकास के महत्वपूर्ण आयाम क्यों माना जाता है?
- ❖ भारत में अनियोजित शहरीकरण से उत्पन्न प्रमुख समस्याओं को समझाइए।
- ❖ उत्तराखंड में पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों के शहरी विकास की परिस्थितियों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
- ❖ अपने निकटवर्ती नगर में शहरी विकास के किसी एक आयाम की पहचान करते हुए उसका उदाहरण दीजिए।
- ❖ किसी नगर में बढ़ते यातायात की समस्या के समाधान के लिए शहरी विकास की अवधारणाओं का प्रयोग करते हुए उपाय सुझाइए।
- ❖ किसी स्थानीय क्षेत्र में जल संकट की स्थिति का अध्ययन करके जल संरक्षण के उपयुक्त उपाय सुझाइए।
- ❖ अपने नगर में ठोस अपशिष्ट प्रबंधन को बेहतर बनाने के लिए इकाई में वर्णित सिद्धांतों को लागू करते हुए एक कार्ययोजना तैयार कीजिए।
- ❖ किसी पर्वतीय नगर के लिए आपदा-संवेदनशील शहरी नियोजन के दो उपयुक्त उपाय सुझाइए।
- ❖ अपने क्षेत्र में नागरिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए स्थानीय निकाय द्वारा अपनाए जा सकने वाले उपायों को लागू कीजिए।

10.10 संदर्भ एवं अध्ययन सामग्री

- ❖ Bafarasat, A. Z. (2023). Strategic urban design for sustainable development: A framework for studio and practice. Sustainable Development, 31(3), 1861–1872. https://doi.org/10.1002/sd.2489\
- ❖ Bisht, H., Deepak, Lohani, R., Tiwari, P. C., & Das, A. (2026). Comparative study with urban growth and urban sprawl: A study of Dehradun and Haldwani city. In Advances in Geographic Information Science (pp. 199–212). Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-032-12737-2_10
- ❖ Davis, K. (1965). The urbanization of the human population. Scientific American, 213(3), 40–53. https://doi.org/10.1038/scientificamerican0965-40
- ❖ Dempsey, N., Bramley, G., Power, S., & Brown, C. (2011). The social dimension of sustainable development: Defining urban social sustainability. *Sustainable Development, 19*(5), 289–300. https://doi.org/10.1002/sd.417

- Dhankar, S. D., Singh, G. S., & Kumar, K. (2024). Impacts of urbanization on land use, air quality, and temperature dynamics in Dehradun district of Uttarakhand, India: A comprehensive analysis. Frontiers in Environmental Science, 12, 1324186. https://doi.org/10.3389/fenvs.2024.1324186
- Government of Uttarakhand, Town and Country Planning Department. (n.d.). Urbanization in Uttarakhand. Government of Uttarakhand.
- Jacobs, J. (1969). The economy of cities. Random House.
- Merino-Saum, A., Halla, P., Superti, V., Boesch, A., & Binder, C. R. (2020). Indicators for urban sustainability: Key lessons from a systematic analysis of 67 measurement initiatives. *Ecological Indicators, 119*, Article 106879. https://doi.org/10.1016/j.ecolind.2020.106879
- Michalina, D., Mederly, P., Diefenbacher, H., & Held, B. (2021). Sustainable urban development: A review of urban sustainability indicator frameworks. *Sustainability, 13*(16), Article 9348. https://doi.org/10.3390/su13169348
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Smart cities mission: Guidelines. Government of India.
- Ravenstein, E. G. (1885). The laws of migration. Journal of the Statistical Society of London, 48(2), 167–235. https://doi.org/10.2307/2979181
- Rodrigues, M., & Franco, M. (2020). Measuring the urban sustainable development in cities through a composite index: The case of Portugal. *Sustainable Development, 28*(4), 507–520. https://doi.org/10.1002/sd.2005
- Tang, H.-T., & Lee, Y.-M. (2016). The making of sustainable urban development: A synthesis framework. Sustainability, 8(5), Article 492. DOI: 10.3390/su8050492
- United Nations Human Settlements Programme. (2022). World cities report 2022: Envisaging the future of cities. United Nations Human Settlements Programme. Official report
- United Nations Human Settlements Programme. (2022). World cities report 2022: Envisaging the future of cities. UN-Habitat.
- United Nations Human Settlements Programme. (2022). World cities report 2022: Envisaging the future of cities. UN-Habitat.

- United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development*. United Nations.
- United Nations. (2019). World urbanization prospects: The 2018 revision. Department of Economic and Social Affairs, Population Division.
- United Nations. (n.d.). Goal 11: Make cities and human settlements inclusive, safe, resilient and sustainable. https://sdgs.un.org/goals/goal11
- Wirth, L. (1938). Urbanism as a way of life. American Journal of Sociology, 44(1), 1–24. https://doi.org/10.1086/217913
- World Bank. (2023). Urban development. World Bank.

इकाई 11: प्रवास और शहरी समस्याएं (Migration and Urban Problems)

इकाई-सूची

11.1 परिचय (Introduction)

11.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading):

11.3 प्रवास: अर्थ, अवधारणा एवं प्रकार, प्रवास की संकल्पना, प्रमुख प्रकार एवं प्रवास के बदलते स्वरूप।

11.4 प्रवास के कारण एवं निर्धारक (आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, पारिवारिक, पर्यावरणीय एवं राजनीतिक कारक।

11.5 प्रवास और शहरीकरण का अंतर्संबंध

11.6 प्रमुख शहरी समस्याएँ

11.7 प्रवासी आबादी की सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ

11.8 उत्तराखंड के संदर्भ में प्रवास और शहरी समस्याएँ

11.9 समाधान एवं समावेशी शहरी विकास

11.10 सारांश

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.12 संदर्भ एवं अनुशंसित पठन

11.1 परिचय (Introduction)

प्रवास (Migration) मानव समाज की एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति या परिवार रोजगार, शिक्षा, बेहतर जीवन-स्तर, सुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं अथवा अन्य अवसरों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर अस्थायी या स्थायी रूप से स्थानांतरित होते हैं। आधुनिक समय में ग्रामीण से नगरीय क्षेत्रों की ओर होने वाला प्रवास शहरीकरण की गति को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक बन गया है। आर्थिक अवसरों की उपलब्धता, औद्योगीकरण, सेवा क्षेत्र का विस्तार तथा बेहतर आधारभूत सुविधाएँ प्रवास के प्रमुख आकर्षण हैं (Castles et al., 2014)। भारत में तीव्र शहरीकरण और आंतरिक प्रवास ने शहरों के आर्थिक विकास को गति देने के साथ-साथ अनेक सामाजिक एवं पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। प्रवासी श्रमिक निर्माण, विनिर्माण, परिवहन, घरेलू सेवाओं, व्यापार तथा अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। दूसरी ओर, अनियोजित प्रवास और तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण आवास की कमी, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, यातायात दबाव, बेरोजगारी, जल एवं स्वच्छता की समस्या, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, वायु प्रदूषण तथा सार्वजनिक सेवाओं पर बढ़ता दबाव जैसी समस्याएँ सामने आती हैं (UN-Habitat, 2022)। शहरी समस्याएँ केवल भौतिक अवसंरचना तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनमें सामाजिक असमानता, गरीबी, सामाजिक बहिष्करण, असुरक्षित रोजगार और जीवन की गुणवत्ता से संबंधित प्रश्न भी शामिल हैं। विशेष रूप से प्रवासी आबादी को आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा रोजगार की अस्थिरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। अतः समावेशी एवं सतत शहरी विकास के लिए प्रवास की प्रकृति और उसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों को समझना आवश्यक है। यह इकाई प्रवास की अवधारणा, प्रकार एवं कारणों के साथ-साथ शहरीकरण, नगरीय समस्याओं, प्रवासी आबादी की चुनौतियों तथा उनके संभावित समाधान और समावेशी, सतत एवं सहभागी शहरी विकास की आवश्यकता को समझने का आधार प्रदान करती है।

11.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- ❖ प्रवास की अवधारणा, प्रकार एवं प्रमुख कारणों को समझ सकेंगे।
- ❖ प्रवास और शहरीकरण के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ आवास, रोजगार, यातायात, प्रदूषण, झुग्गी-बस्तियों एवं मूलभूत सुविधाओं जैसी प्रमुख शहरी समस्याओं की पहचान कर सकेंगे।
- ❖ प्रवास के सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ❖ प्रवासी समुदायों के समक्ष आने वाली असमानता, असुरक्षा एवं सामाजिक बहिष्करण जैसी चुनौतियों को समझ सकेंगे।
- ❖ समावेशी, सतत एवं सहभागी शहरी विकास के लिए प्रभावी समाधान सुझा सकेंगे।

11.3 प्रवास: अर्थ, अवधारणा एवं प्रकार, प्रवास की संकल्पना, एवं प्रवास के प्रमुख प्रकार

'प्रवास' अंग्रेज़ी शब्द Migration का हिंदी रूप है, जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन शब्द migratio से मानी जाती है, जिसका अर्थ है—एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाना या निवास में परिवर्तन करना। सामान्य अर्थ में, जब कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह अपने सामान्य निवास स्थान से किसी दूसरे स्थान पर अस्थायी, अर्द्धस्थायी अथवा स्थायी रूप से निवास करने के उद्देश्य से जाता है, तो इस प्रक्रिया को प्रवास कहा जाता है। प्रवास केवल भौगोलिक स्थान परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के आर्थिक अवसरों, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक परिवेश, जीवन-शैली तथा पहचान में परिवर्तन लाने वाली बहुआयामी प्रक्रिया है। दार्शनिक दृष्टि से मनुष्य को प्राचीन काल से ही एक गतिशील सामाजिक प्राणी माना गया है। अरस्तू (Aristotle) ने मनुष्य को "political animal" अर्थात् सामाजिक/राजनीतिक प्राणी माना। उनके विचारों से यह समझने में सहायता मिलती है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, सुरक्षा तथा सामाजिक जीवन के संगठन के लिए स्थान और समुदाय से जुड़ता है। इस दृष्टि से स्थान परिवर्तन को केवल भौगोलिक घटना न मानकर मानव आवश्यकताओं और सामाजिक संगठन की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

प्लेटो (Plato) के राजनीतिक दर्शन में आदर्श राज्य, श्रम-विभाजन और सामाजिक संगठन का विचार मिलता है। उनके दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि समाज में विभिन्न कार्यों और संसाधनों का स्थानिक वितरण मानव जीवन को प्रभावित करता है। आधुनिक संदर्भ में रोजगार, शिक्षा और संसाधनों की असमान उपलब्धता लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है। इब्न खल्दून (Ibn Khaldun) ने Muqaddimah में 'उमरान' (ʿumrān) अर्थात् मानव सभ्यता और सामाजिक संगठन के विकास पर बल दिया। उन्होंने ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के बीच अंतर और जनसंख्या की गतिशीलता को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ा। उनके विचारों के आधार पर प्रवास को ग्रामीण-नगरीय परिवर्तन, आजीविका और सभ्यता के विकास की व्यापक प्रक्रिया के संदर्भ में समझा जा सकता है।

- Ravenstein (1885) ने अपने प्रसिद्ध Laws of Migration में प्रवास के नियमों को प्रस्तुत किया। उनके अनुसार प्रवास प्रायः दूरी, आर्थिक अवसरों और गंतव्य की आकर्षण शक्ति से प्रभावित होता है। उन्होंने यह भी बताया कि अधिकांश प्रवास छोटी दूरी का होता है तथा आर्थिक कारण प्रवास के महत्त्वपूर्ण प्रेरक हैं।
- Everett S. Lee (1966) ने A Theory of Migration में प्रवास को निवास स्थान में स्थायी अथवा अर्द्धस्थायी परिवर्तन के रूप में समझाया। Lee के अनुसार प्रवास का निर्णय चार प्रमुख तत्वों से प्रभावित होता है—(i) मूल स्थान के कारक, (ii) गंतव्य स्थान के कारक, (iii) intervening obstacles अर्थात् मध्यवर्ती बाधाएँ तथा (iv) व्यक्तिगत कारक।
- Harris और Todaro (1970) ने आर्थिक दृष्टिकोण से ग्रामीण-नगरीय प्रवास की व्याख्या की। उनके अनुसार व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध आय की तुलना में शहर में मिलने वाली अपेक्षित आय और रोजगार के अवसरों को ध्यान में रखकर प्रवास का निर्णय ले सकता है।
- Massey et al. (1993) ने प्रवास को केवल व्यक्तिगत आर्थिक निर्णय न मानकर सामाजिक नेटवर्क, परिवार, संस्थागत व्यवस्था और संरचनात्मक परिस्थितियों से जुड़ी प्रक्रिया माना। इस दृष्टिकोण से एक व्यक्ति का प्रवास आगे चलकर अन्य व्यक्तियों के लिए भी प्रवास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

अतः प्रवास को "व्यक्ति या समूह द्वारा अपने सामान्य निवास स्थान में अस्थायी, अर्द्धस्थायी अथवा स्थायी परिवर्तन की ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया, जो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित होती है" के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

11.3.1 प्रवास के प्रमुख प्रकार: प्रवास के प्रमुख प्रकारों को स्पष्ट करते हुए Ravenstein (1885) ने अपने प्रसिद्ध Laws of Migration में प्रवास के प्रतिरूपों तथा दूरी, आर्थिक अवसरों और जनसंख्या की गतिशीलता के बीच संबंधों का विश्लेषण किया। इसी क्रम में Lee (1966) ने प्रवास के निर्णय को समझाने के लिए उद्गम स्थल के कारकों, गंतव्य स्थल के कारकों, मध्यवर्ती बाधाओं तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों को महत्त्वपूर्ण माना। इन दृष्टिकोणों से स्पष्ट होता है कि प्रवास किसी एक कारण का परिणाम नहीं, बल्कि अनेक परस्पर संबंधित परिस्थितियों की उपज है। अध्ययन की दृष्टि से प्रवास को मुख्यतः भौगोलिक सीमा, दिशा, अवधि, उद्देश्य, निर्णय की प्रकृति तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है:

आंतरिक प्रवास (Internal Migration): जब व्यक्ति किसी देश की अंतरराष्ट्रीय सीमा पार किए बिना अपने सामान्य निवास स्थान को बदलता है, तो उसे आंतरिक प्रवास कहते हैं। इसके प्रमुख कारण रोजगार, शिक्षा, विवाह, स्वास्थ्य सुविधाएँ, कृषि संकट तथा बेहतर जीवन स्तर की खोज हैं। आंतरिक प्रवास के चार प्रमुख स्वरूप हैं:

- ग्रामीण-ग्रामीण प्रवास: एक गाँव से दूसरे गाँव में स्थानांतरण।
- ग्रामीण-नगरीय प्रवास: गाँव से शहर की ओर जाना।
- नगरीय-नगरीय प्रवास: एक शहर से दूसरे शहर में निवास परिवर्तन।
- नगरीय-ग्रामीण प्रवास: शहर से गाँव की ओर वापस जाना अथवा ग्रामीण क्षेत्र में बसना।

उदाहरण: उत्तराखंड के पर्वतीय गाँवों से हल्द्वानी, देहरादून तथा अन्य शहरी केंद्रों की ओर रोजगार, उच्च शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए लोगों का जाना आंतरिक प्रवास है। इस प्रकार का प्रवास गंतव्य क्षेत्रों में श्रमशक्ति और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत, मूल क्षेत्रों में युवा आबादी की कमी, कृषि गतिविधियों में गिरावट तथा कुछ गाँवों में जनसंख्या असंतुलन जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

अंतरराष्ट्रीय प्रवास (International Migration): जब कोई व्यक्ति एक देश से दूसरे देश में अपने सामान्य निवास स्थान को बदलता है, तो उसे अंतरराष्ट्रीय प्रवास कहा जाता है। इसमें रोजगार, उच्च शिक्षा, पारिवारिक पुनर्मिलन, व्यवसाय तथा राजनीतिक परिस्थितियों जैसे कारक महत्त्वपूर्ण होते हैं। अंतरराष्ट्रीय प्रवास के दो प्रमुख स्वरूप हैं:

- ❖ आप्रवास (Immigration): किसी दूसरे देश से आकर किसी देश में निवास स्थापित करना।
- ❖ उत्प्रवास (Emigration): अपने देश से दूसरे देश में निवास स्थापित करने के लिए जाना।

उदाहरण: भारत से कनाडा या ऑस्ट्रेलिया में उच्च शिक्षा अथवा रोजगार के लिए जाना उत्प्रवास है, जबकि इन देशों में भारत से आने वाले लोगों का निवास स्थापित करना वहाँ के दृष्टिकोण से आप्रवास है। अंतरराष्ट्रीय प्रवास से धन प्रेषण (Remittances), कौशल हस्तांतरण तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिल सकता है। हालाँकि, इसके कारण मूल देशों में कुशल श्रमिकों की कमी, परिवारों से दीर्घकालिक दूरी और प्रवासियों के समायोजन की समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं।

ग्रामीण-नगरीय प्रवास (Rural-to-Urban Migration): ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर निवास परिवर्तन को ग्रामीण-नगरीय प्रवास कहते हैं। यह प्रवास विशेष रूप से औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा गैर-कृषि रोजगार के विस्तार से जुड़ा है। इसके प्रमुख प्रेरक कारकों में ग्रामीण बेरोजगारी, कृषि पर बढ़ता जनसंख्या दबाव, कम आय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अभाव तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता शामिल हैं। दूसरी ओर, शहरों में रोजगार, परिवहन, उच्च शिक्षा और आधुनिक सेवाओं की उपलब्धता लोगों को आकर्षित करती है। उदाहरण: उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों से हल्द्वानी और देहरादून की ओर विद्यार्थियों, युवाओं तथा श्रमिकों का स्थानांतरण। यह प्रवास आर्थिक अवसरों को बढ़ाता है, लेकिन अनियोजित नगरीय विस्तार, आवास संकट, यातायात दबाव और मूलभूत सुविधाओं पर अतिरिक्त भार जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न कर सकता है।

मौसमी एवं अस्थायी प्रवास (Seasonal and Temporary Migration): जब व्यक्ति किसी विशेष मौसम, कृषि चक्र या सीमित अवधि के रोजगार के लिए अपना निवास स्थान छोड़ता है, तो इसे मौसमी अथवा अस्थायी

प्रवास कहते हैं। इसमें व्यक्ति प्रायः रोजगार समाप्त होने के बाद अपने मूल स्थान पर लौट आता है। मौसमी प्रवास कृषि, निर्माण, पर्यटन, ईंट-भट्ठों तथा अन्य श्रम-प्रधान गतिविधियों से जुड़ा हो सकता है। इसका उद्देश्य प्रायः परिवार की आय बढ़ाना और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध रोजगार की कमी को पूरा करना होता है। उदाहरण: कृषि कार्य के लिए दूसरे राज्य में जाना अथवा पर्यटन के मौसम में पर्वतीय क्षेत्रों से पर्यटन केंद्रों की ओर अस्थायी रोजगार हेतु जाना। इस प्रकार का प्रवास परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधार सकता है, लेकिन अनिश्चित रोजगार, असुरक्षित कार्य परिस्थितियों, सामाजिक सुरक्षा की कमी तथा बच्चों की शिक्षा में व्यवधान जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न कर सकता है।

स्वैच्छिक प्रवास (Voluntary Migration): जब व्यक्ति अपनी इच्छा, आकांक्षाओं और उपलब्ध विकल्पों के आधार पर बेहतर अवसरों की तलाश में स्थान परिवर्तन करता है, तो इसे स्वैच्छिक प्रवास कहा जाता है। इसके प्रमुख कारण बेहतर वेतन, उच्च शिक्षा, व्यवसाय का विस्तार, विवाह, पारिवारिक पुनर्मिलन तथा जीवन स्तर में सुधार हैं। उदाहरण: किसी विद्यार्थी का उच्च शिक्षा के लिए दूसरे शहर जाना या किसी कर्मचारी का बेहतर वेतन और पदोन्नति के अवसरों के कारण नई नौकरी स्वीकार करना। स्वैच्छिक प्रवास व्यक्तिगत विकास और सामाजिक गतिशीलता का माध्यम बन सकता है। हालाँकि, प्रत्येक प्रवास को पूर्णतः स्वतंत्र निर्णय का परिणाम नहीं माना जा सकता, क्योंकि आर्थिक असमानता और सीमित अवसर भी व्यक्ति के विकल्पों को प्रभावित करते हैं।

बाध्यकारी प्रवास (Forced Migration): जब व्यक्ति युद्ध, हिंसा, उत्पीड़न, प्राकृतिक आपदा अथवा गंभीर पर्यावरणीय संकट जैसी परिस्थितियों के कारण अपना निवास स्थान छोड़ने के लिए विवश होता है, तो इसे बाध्यकारी प्रवास कहा जाता है। उदाहरण: बाढ़, भूस्खलन या अन्य आपदाओं से प्रभावित परिवारों का सुरक्षित क्षेत्रों में स्थानांतरण। इस प्रवास में जीवन एवं संपत्ति की सुरक्षा, आवास, आजीविका, शिक्षा और सामाजिक पुनर्वास प्रमुख चुनौतियाँ होती हैं। पर्यावरणीय आपदाओं के कारण होने वाले प्रत्येक स्थानांतरण की परिस्थितियाँ अलग हो सकती हैं; इसलिए ऐसे मामलों का विश्लेषण स्थानीय परिस्थितियों और विस्थापन की प्रकृति के आधार पर किया जाना चाहिए।

स्थायी एवं दीर्घकालिक प्रवास (Permanent and Long-Term Migration): जब व्यक्ति किसी अन्य स्थान पर स्थायी रूप से अथवा दीर्घकालिक निवास स्थापित करने के उद्देश्य से जाता है, तो इसे स्थायी या

दीर्घकालिक प्रवास कहा जाता है। इसका संबंध प्रायः रोजगार, विवाह, परिवार के पुनर्वास तथा बेहतर जीवन परिस्थितियों से होता है। उदाहरण: किसी परिवार का रोजगार और बच्चों की शिक्षा के बेहतर अवसरों के कारण गाँव से शहर में स्थायी रूप से बस जाना। इसके विपरीत, अल्पकालिक प्रवास में निवास परिवर्तन सीमित अवधि के लिए होता है। हालाँकि, स्थायी और दीर्घकालिक प्रवास की सटीक परिभाषा संबंधित देश की सांख्यिकीय पद्धति और अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार अलग हो सकती है।

चक्रीय प्रवास (Circular Migration): चक्रीय प्रवास में व्यक्ति रोजगार या अन्य अवसरों के लिए अपने मूल स्थान और गंतव्य के बीच बार-बार आवागमन करता है। इसमें प्रवासी का मूल क्षेत्र से संबंध बना रहता है और वह परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न स्थानों पर काम करता है। उदाहरण: उत्तराखंड का कोई श्रमिक पर्यटन के मौसम में किसी अन्य क्षेत्र में काम करना और मौसम समाप्त होने पर अपने गाँव लौट आना। चक्रीय प्रवास से आय के विविध स्रोत विकसित हो सकते हैं। दूसरी ओर, बार-बार स्थान परिवर्तन के कारण आवास, सामाजिक सुरक्षा, बच्चों की देखभाल और नियमित शिक्षा जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

11.4 प्रवास के निर्धारक

मनुष्य प्राचीन काल से ही भोजन, जल, सुरक्षा, रोजगार और बेहतर जीवन की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गतिशील रहा है। आधुनिक समय में प्रवास का स्वरूप अधिक जटिल हो गया है। अब व्यक्ति केवल आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ही नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, विवाह, सामाजिक नेटवर्क, पर्यावरणीय परिवर्तन, राजनीतिक परिस्थितियों, जीवन-शैली और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के कारण भी स्थान परिवर्तन करता है। अतः प्रवास किसी एक कारण का परिणाम न होकर 'प्रेरक कारकों' (Push Factors) और 'आकर्षक कारकों' (Pull Factors) की परस्पर क्रिया का परिणाम है। प्रवास के निर्धारकों को समझाने में Everett S. Lee (1966) का प्रवास सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। Lee ने प्रवास के निर्धारण में मूल स्थान के सकारात्मक एवं नकारात्मक तत्वों, गंतव्य स्थान के आकर्षक एवं प्रतिकूल तत्वों, मध्यवर्ती बाधाओं तथा व्यक्तिगत कारकों को महत्त्व दिया। इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि समान परिस्थितियों में रहने वाले सभी व्यक्ति प्रवास का समान निर्णय नहीं लेते।

❖ **आर्थिक निर्धारक**: आर्थिक कारक प्रवास के सबसे शक्तिशाली निर्धारकों में से एक हैं। बेरोजगारी, कम मजदूरी, गरीबी, सीमित रोजगार अवसर, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता तथा स्थानीय बाजार का कमजोर होना लोगों को मूल स्थान से बाहर जाने के लिए प्रेरित करता है। इसके विपरीत, गंतव्य स्थान पर बेहतर रोजगार, अधिक आय, औद्योगिक विकास, व्यवसाय के अवसर और उच्च जीवन-स्तर प्रवासियों को आकर्षित करते हैं। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसरों के कारण अनेक युवा हल्द्वानी, देहरादून, दिल्ली, चंडीगढ़ तथा अन्य औद्योगिक नगरों की ओर रोजगार एवं व्यवसाय के लिए प्रवास करते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय आर्थिक असमानता प्रवास की दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

❖ **शिक्षा एवं कौशल संबंधी निर्धारक**: उच्च शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, तकनीकी संस्थानों और बेहतर शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता भी प्रवास को प्रभावित करती है। विशेष रूप से युवा वर्ग शिक्षा और कौशल-विकास के लिए बड़े शहरों की ओर आकर्षित होता है। उच्च शिक्षा के बाद बेहतर रोजगार प्राप्त होने की संभावना स्थायी प्रवास को भी बढ़ा सकती है। किसी पर्वतीय जिले का विद्यार्थी स्नातक या व्यावसायिक शिक्षा के लिए देहरादून अथवा हल्द्वानी जाता है और बाद में वहीं नौकरी प्राप्त कर स्थायी रूप से बस सकता है।

❖ **सामाजिक एवं पारिवारिक निर्धारक**: परिवार, विवाह, रिश्तेदारी, सामाजिक संबंध और प्रवासी नेटवर्क प्रवास के महत्वपूर्ण सामाजिक निर्धारक हैं। पहले से प्रवास कर चुके रिश्तेदार नए प्रवासियों को आवास, रोजगार, स्थानीय जानकारी तथा सामाजिक सहयोग प्रदान करते हैं। इसे प्रवासी नेटवर्क प्रभाव (Migrant Network Effect) कहा जा सकता है। विवाह भी विशेष रूप से महिलाओं के प्रवास का महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। इसी प्रकार परिवार के किसी सदस्य के रोजगार हेतु स्थानांतरित होने के बाद पूरा परिवार भी नए स्थान पर जा सकता है। यदि किसी गाँव का व्यक्ति दिल्ली में नौकरी करता है और वहाँ अपने परिवार के अन्य सदस्यों को रोजगार एवं आवास उपलब्ध कराने में सहायता करता है, तो उसी सामाजिक नेटवर्क के माध्यम से गाँव के अन्य लोग भी दिल्ली की ओर प्रवास कर सकते हैं।

❖ **जनसांख्यिकीय निर्धारक**: आयु, लिंग, परिवार का आकार, वैवाहिक स्थिति तथा आश्रित जनसंख्या प्रवास के निर्णय को प्रभावित करती है। सामान्यतः युवा और कार्यशील आयु वर्ग के लोग रोजगार एवं शिक्षा

के लिए अधिक गतिशील होते हैं। वहीं परिवार का आकार बढ़ने पर आय के अतिरिक्त स्रोतों की आवश्यकता प्रवास को प्रेरित कर सकती है। इस प्रकार जनसांख्यिकीय संरचना न केवल प्रवास की संभावना बल्कि उसकी दिशा और अवधि को भी प्रभावित करती है।

- **राजनीतिक एवं सुरक्षा संबंधी निर्धारक**: राजनीतिक अस्थिरता, युद्ध, हिंसा, सामाजिक संघर्ष, धार्मिक या जातीय तनाव, उत्पीड़न और कानून-व्यवस्था की खराब स्थिति लोगों को विस्थापन के लिए मजबूर कर सकती है। दूसरी ओर, राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक सुरक्षा, प्रभावी प्रशासन और नागरिक अधिकारों की उपलब्धता किसी क्षेत्र को आकर्षक गंतव्य बना सकती है। यहाँ प्रवास और बलपूर्वक विस्थापन (Forced Displacement) के बीच अंतर समझना आवश्यक है। रोजगार की तलाश में किया गया प्रवास अपेक्षाकृत स्वैच्छिक हो सकता है, जबकि युद्ध या प्राकृतिक आपदा के कारण किया गया स्थानांतरण विवशतापूर्ण हो सकता है।
- **पर्यावरणीय एवं भौगोलिक निर्धारक**: प्राकृतिक आपदाएँ और पर्यावरणीय परिवर्तन भी प्रवास को प्रभावित करते हैं। बाढ़, सूखा, भूकंप, भूस्खलन, जल-संकट, समुद्र-स्तर वृद्धि और जलवायु परिवर्तन कृषि एवं आजीविका को प्रभावित कर सकते हैं। उत्तराखंड में भूस्खलन, बादल फटना, सड़क संपर्क की कठिनाइयाँ और कृषि योग्य भूमि की सीमित उपलब्धता कुछ परिवारों को अपेक्षाकृत सुरक्षित एवं सुविधायुक्त मैदानी क्षेत्रों की ओर स्थानांतरण के लिए प्रेरित कर सकती हैं। हालाँकि, पर्यावरणीय परिवर्तन और प्रवास का संबंध प्रत्यक्ष एवं सरल नहीं है। आर्थिक संसाधन, सामाजिक नेटवर्क तथा सरकारी सहायता यह निर्धारित करते हैं कि प्रभावित व्यक्ति प्रवास करेगा, अनुकूलन करेगा या अपने स्थान पर ही रहेगा।
- **शहरीकरण एवं जीवन-स्तर संबंधी निर्धारक**: शहरों में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, मनोरंजन, आधुनिक आवास, बाजार तथा अन्य सुविधाओं की उपलब्धता ग्रामीण लोगों को आकर्षित करती है। ग्रामीण-नगरीय प्रवास इसी प्रक्रिया का प्रमुख उदाहरण है। उदाहरण: बेहतर विद्यालय, अस्पताल, रोजगार और परिवहन सुविधा की तलाश में ग्रामीण परिवार निकटवर्ती नगरों में स्थानांतरित हो सकते हैं।
- **व्यक्तिगत आकांक्षाएँ एवं मध्यवर्ती बाधाएँ**: प्रवास केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं है। व्यक्ति की महत्वाकांक्षा, जोखिम लेने की क्षमता, भविष्य की योजनाएँ, जीवन-शैली की पसंद, शिक्षा, कौशल और

स्वतंत्रता की भावना भी निर्णय को प्रभावित करती है। Lee के अनुसार, दूरी, यात्रा-लागत, भाषा, आवास, कानूनी नियम और सांस्कृतिक अंतर जैसी मध्यवर्ती बाधाएँ (Intervening Obstacles) प्रवास के निर्णय को प्रभावित करती हैं। किसी व्यक्ति को महानगर में बेहतर नौकरी मिल सकती है, लेकिन अधिक किराया, लंबी दूरी और परिवार से अलगाव उसके प्रवास के निर्णय को प्रभावित कर सकते हैं।

11.5 प्रवास और शहरीकरण का अंतर्संबंध

- प्रवास और शहरीकरण आधुनिक समाज में होने वाले व्यापक जनसांख्यिकीय, आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक परिवर्तन के दो महत्वपूर्ण आयाम हैं। प्रवास का सामान्य अर्थ व्यक्ति, परिवार अथवा समूह द्वारा अपने सामान्य निवास-स्थान से किसी अन्य स्थान पर अस्थायी या स्थायी रूप से स्थानांतरित होना है। इसके विपरीत, शहरीकरण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी क्षेत्र में शहरी जनसंख्या, शहरी बस्तियों, गैर-कृषि आर्थिक गतिविधियों तथा शहरी जीवन-पद्धति का विस्तार होता है। इन दोनों प्रक्रियाओं का संबंध इतना गहरा है कि किसी भी देश के शहरी परिवर्तन को समझने के लिए प्रवास की प्रकृति और दिशा को समझना आवश्यक हो जाता है। हालाँकि, यह समझना भी आवश्यक है कि शहरीकरण केवल प्रवास का परिणाम नहीं है। शहरी जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि, ग्रामीण बस्तियों का शहरी पुनर्वर्गीकरण, नगरों की प्रशासनिक सीमाओं का विस्तार तथा नए नगरों का विकास भी शहरीकरण को प्रभावित करते हैं। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में प्रवास और शहरीकरण के बीच संबंध क्षेत्र, वर्ग, लिंग, रोजगार और शिक्षा के आधार पर अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है।
- **प्रवास का शहरीकरण पर प्रभाव:** प्रवास शहरीकरण को गति देने वाला एक प्रमुख कारक है। जब ग्रामीण क्षेत्रों से लोग रोजगार, शिक्षा, व्यवसाय अथवा बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में शहरों की ओर जाते हैं, तो शहरों की जनसंख्या बढ़ती है। जनसंख्या बढ़ने के साथ आवास, सड़क, बाजार, विद्यालय, अस्पताल, परिवहन और अन्य सेवाओं की माँग भी बढ़ती है। परिणामस्वरूप शहर का भौतिक एवं आर्थिक विस्तार होने लगता है। यदि उत्तराखंड के किसी पर्वतीय गाँव का युवा रोजगार के लिए देहरादून या हल्द्वानी जाता है और बाद में उसका परिवार भी वहाँ आकर बस जाता है, तो यह केवल एक परिवार का स्थानांतरण नहीं है। इससे

शहर में मकान, किराये के आवास, परिवहन, विद्यालय, बाजार और अन्य सेवाओं की माँग बढ़ती है। इस प्रकार एक प्रवासी परिवार की गतिशीलता व्यापक शहरी विस्तार की प्रक्रिया का हिस्सा बन जाती है। Choithani et al. (2021) के अनुसार भारत में ग्रामीण-शहरी संक्रमण आजीविका में परिवर्तन, गैर-कृषि रोजगार और ग्रामीण-शहरी संबंधों में बदलाव से गहराई से जुड़ा है।

- **शहरीकरण का प्रवास पर प्रभाव:** प्रवास और शहरीकरण का संबंध एकतरफा नहीं बल्कि द्विदिशीय है। शहरों का विस्तार स्वयं नए प्रवास को आकर्षित करता है। नगरों में रोजगार के विविध अवसर, उच्च शिक्षा, बेहतर चिकित्सा, परिवहन, संचार, मनोरंजन तथा आधुनिक जीवन-सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। ये सुविधाएँ ग्रामीण और छोटे शहरों के लोगों के लिए आकर्षण कारक (Pull Factors) बन जाती हैं। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी, कम आय, सीमित शैक्षिक अवसर, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी तथा कृषि पर अत्यधिक निर्भरता प्रतिकर्षण कारक (Push Factors) का कार्य कर सकती है। एक ग्रामीण विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए देहरादून जाता है। पढ़ाई पूरी करने के बाद उसे वहीं नौकरी मिल जाती है। नौकरी के कारण वह शहर में स्थायी रूप से रहने लगता है और कुछ वर्षों बाद उसका परिवार भी उसके साथ आ जाता है। उत्तराखंड में Hoffmann et al. (2019) के अध्ययन ने ग्रामीण-शहरी प्रवास के संदर्भ में रोजगार, शिक्षा और बेहतर सुविधाओं की भूमिका को महत्त्वपूर्ण पाया।
- **औद्योगीकरण, रोजगार और प्रवास:** प्रवास और शहरीकरण के बीच संबंध को समझने में औद्योगीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब किसी क्षेत्र में उद्योग, कारखाने, व्यापारिक प्रतिष्ठान, निर्माण गतिविधियाँ अथवा सेवा क्षेत्र विकसित होते हैं, तो वहाँ श्रम की माँग बढ़ती है। स्थानीय श्रम की उपलब्धता पर्याप्त न होने पर बाहरी क्षेत्रों से श्रमिक आने लगते हैं। दिल्ली-NCR, मुंबई, सूरत, बेंगलुरु और पुणे जैसे शहरों में उद्योग, निर्माण, IT, व्यापार तथा सेवा क्षेत्र ने देश के विभिन्न हिस्सों से प्रवासियों को आकर्षित किया है। प्रवासी श्रमिक निर्माण कार्य, परिवहन, होटल, घरेलू सेवाओं, खुदरा व्यापार और विनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार आर्थिक विकास प्रवास को बढ़ाता है और प्रवास आर्थिक विकास को श्रम उपलब्ध कराकर शहरीकरण को और गति देता है।

❖ **प्रवास, शहरी श्रम-बाजार और अनौपचारिक क्षेत्र:** शहरीकरण के साथ रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, लेकिन सभी प्रवासियों को संगठित क्षेत्र में रोजगार नहीं मिलता। बड़ी संख्या में प्रवासी अनौपचारिक क्षेत्र (Informal Sector) में काम करते हैं। इनमें निर्माण श्रमिक, रेहड़ी-पटरी विक्रेता, घरेलू कामगार, रिक्शा चालक, डिलीवरी कर्मी, होटल कर्मचारी तथा छोटे दुकानदार शामिल हो सकते हैं। बिहार या उत्तर प्रदेश का कोई श्रमिक दिल्ली में निर्माण कार्य के लिए प्रवास करता है। वह शहर के निर्माण में प्रत्यक्ष योगदान देता है, लेकिन स्वयं किराये के छोटे कमरे या अस्थायी आवास में रह सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रवासी श्रमिक शहर के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक होते हुए भी शहरी संसाधनों के वितरण में असमानता का सामना कर सकते हैं।

❖ **प्रवास और शहरी सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता:** प्रवास शहरों को अधिक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी बनाता है। विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों से आने वाले लोग अपनी भाषा, खान-पान, पहनावा, धार्मिक-सांस्कृतिक परंपराएँ तथा सामाजिक व्यवहार साथ लेकर आते हैं। मुंबई में महाराष्ट्र के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, दक्षिण भारत तथा पूर्वोत्तर राज्यों के लोग रहते और कार्य करते हैं। इसी प्रकार दिल्ली एक अत्यंत बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक महानगर है। इस सांस्कृतिक विविधता से नए सामाजिक नेटवर्क, व्यवसाय और सांस्कृतिक गतिविधियाँ विकसित होती हैं। भोजन, संगीत, कला, बाजार और त्योहारों की विविधता भी बढ़ती है। इस दृष्टि से प्रवास शहरी समाज को अधिक गतिशील और विविध बनाता है।

❖ **प्रवास और शहरी समस्याओं का अंतर्संबंध:** यदि शहरों का विकास प्रवास की गति के अनुरूप नियोजित नहीं किया जाता, तो अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण जैसे आवास की कमी, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, यातायात जाम, जलापूर्ति पर दबाव, ठोस अपशिष्ट की समस्या, प्रदूषण, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर दबाव, अनौपचारिक रोजगार तथा सामाजिक असमानता बढ़ सकती है। किसी महानगर में हजारों नए श्रमिक प्रतिवर्ष आते हैं, लेकिन सस्ते आवास का निर्माण उसी गति से नहीं होता। परिणामस्वरूप प्रवासी श्रमिकों को शहर के बाहरी क्षेत्रों, असंगठित बस्तियों या अत्यधिक भीड़ वाले

किराये के आवासों में रहना पड़ सकता है। इसलिए समस्या केवल प्रवास नहीं, बल्कि अपर्याप्त शहरी नियोजन और संसाधनों के असमान वितरण की भी है।

- **उत्तराखंड में प्रवास और शहरीकरण:** उत्तराखंड प्रवास और शहरीकरण के अंतर्संबंध का अत्यंत उपयोगी उदाहरण प्रस्तुत करता है। राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर, कृषि की कम होती आर्थिक व्यवहार्यता, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता तथा बेहतर जीवन-स्तर की आकांक्षा लोगों को देहरादून, हल्द्वानी, हरिद्वार, ऋषिकेश और अन्य शहरी केंद्रों की ओर आकर्षित करती है। कुमाऊँ क्षेत्र के किसी गाँव का परिवार अपने बच्चों की उच्च शिक्षा और रोजगार के लिए हल्द्वानी में स्थानांतरित होता है। परिवार के शहर में बसने के बाद आवास, स्कूल, परिवहन, बाजार और स्वास्थ्य सेवाओं की माँग बढ़ती है। इससे हल्द्वानी के आसपास नए आवासीय क्षेत्रों और व्यावसायिक गतिविधियों का विस्तार होता है। दूसरी ओर, पर्वतीय गाँवों से युवाओं के बाहर जाने से कुछ क्षेत्रों में कृषि श्रम की कमी, वृद्ध आबादी का अनुपात बढ़ना और गाँवों में जनसंख्या का ह्रास जैसी समस्याएँ भी सामने आ सकती हैं। अतः प्रवास का प्रभाव प्रवासन-गंतव्य क्षेत्र और प्रवासन-स्रोत क्षेत्र दोनों पर पड़ता है। Hoffmann et al. (2019) का उत्तराखंड संबंधी अध्ययन इस संदर्भ में विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि यह ग्रामीण-शहरी प्रवास को आजीविका और अवसरों के अंतर से जोड़ता है।

11.6 भारत में प्रवास से जुड़ी प्रमुख शहरी समस्याएँ

आवास की समस्या एवं मलिन बस्तियों का विस्तार: प्रवास से संबंधित प्रमुख शहरी समस्याओं में पर्याप्त, सुरक्षित एवं किफायती आवास की कमी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में आने वाले अधिकांश कम आय वाले श्रमिक महँगे मकानों का किराया वहन नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप, उन्हें झुग्गी-बस्तियों, अनौपचारिक किराये के कमरों, अस्थायी श्रमिक कॉलोनियों अथवा निर्माण स्थलों के आसपास बने असुरक्षित आवासों में रहना पड़ता है। मुंबई की धारावी जैसी बस्तियाँ शहरी आवास एवं आजीविका के बीच जटिल संबंध को समझने का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। यहाँ अनौपचारिक आवास केवल रहने का स्थान नहीं, बल्कि अनेक लोगों की आजीविका, छोटे व्यवसायों और सामाजिक नेटवर्क का आधार भी है। Desai (2024) के अनुसार, अहमदाबाद में निर्माण क्षेत्र के प्रवासी श्रमिक विभिन्न प्रकार के अनौपचारिक आवासों में रहते हैं। उनकी आवासीय परिस्थितियाँ श्रमिकों की भर्ती की व्यवस्था, रोजगार की प्रकृति तथा शहरी आवास नीतियों से प्रभावित होती हैं। इस प्रकार,

आवास की समस्या को केवल मकानों की कमी के रूप में नहीं, बल्कि भूमि, आय, रोजगार और शहरी नियोजन से जुड़ी समस्या के रूप में समझना आवश्यक है।

बेरोजगारी, अल्परोजगार एवं असंगठित श्रम: प्रवासियों के शहरों में आने का एक प्रमुख उद्देश्य रोजगार प्राप्त करना होता है, लेकिन सभी प्रवासियों को स्थायी एवं सुरक्षित रोजगार नहीं मिल पाता। कम शैक्षिक योग्यता, कौशल की कमी, स्थानीय भाषा से अपरिचितता तथा रोजगार संबंधी सूचनाओं की अनुपलब्धता के कारण अनेक प्रवासी असंगठित क्षेत्र में काम करने के लिए विवश होते हैं। निर्माण कार्य, घरेलू श्रम, सड़क विक्रय, होटल, परिवहन, कपड़ा उद्योग तथा सफाई सेवाएँ प्रवासी श्रमिकों के लिए रोजगार के प्रमुख क्षेत्र हैं। इन कार्यों में अक्सर अनियमित मजदूरी, लंबे कार्य घंटे, अपर्याप्त सुरक्षा उपकरण तथा सामाजिक सुरक्षा के अभाव जैसी समस्याएँ दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिए, दिल्ली में भवन निर्माण में लगे प्रवासी श्रमिकों को काम की उपलब्धता के अनुसार रोजगार मिलता है। परियोजना समाप्त होने अथवा निर्माण गतिविधियों में कमी आने पर उनकी आय प्रभावित हो सकती है। इसी प्रकार, तिरुप्पुर में प्रवासी श्रमिकों की स्वच्छता सेवाओं में भागीदारी यह दर्शाती है कि शहरों की आवश्यक सेवाएँ प्रवासी श्रम पर निर्भर हो सकती हैं, जबकि स्वयं श्रमिकों को असुरक्षित कार्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। Ahmed (2025) ने भी भारतीय शहरों में श्रमिक प्रवासियों के बहिष्करण तथा असुरक्षित श्रम बाजारों के साथ बुनियादी शहरी सुविधाओं तक असमान पहुँच के संबंध को रेखांकित किया है।

पेयजल, स्वच्छता एवं सार्वजनिक सुविधाओं पर दबाव: शहरी जनसंख्या में वृद्धि के साथ पेयजल, सीवरेज, सार्वजनिक शौचालय, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन तथा अन्य नागरिक सुविधाओं की माँग बढ़ती है। यदि शहरी निकायों की सेवा-प्रदान क्षमता जनसंख्या की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित नहीं होती, तो जलापूर्ति की अनियमितता, कचरे का अनुचित निस्तारण, जलभराव तथा अस्वच्छ वातावरण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। कम आय वाले प्रवासी परिवार प्रायः ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ सार्वजनिक सुविधाएँ सीमित होती हैं। उदाहरण के लिए, दिल्ली के बाहरी क्षेत्रों में स्थित कुछ अनौपचारिक बस्तियों में निवासियों को सामुदायिक शौचालयों, सार्वजनिक जलापूर्ति तथा कचरा संग्रहण पर निर्भर रहना पड़ सकता है। Kumar और Barik (2020) के दिल्ली के निकट किए गए अध्ययन में प्रवासी आबादी के बीच स्वच्छता संबंधी व्यवहारों में असमानताएँ पाई गईं। अध्ययन ने सुरक्षित शौचालयों, पानी की उपलब्धता, गोपनीयता तथा नियमित उपयोग के महत्त्व को रेखांकित किया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रवासियों के लिए केवल शहरी क्षेत्र में निवास करना पर्याप्त नहीं है; उन्हें बुनियादी नागरिक सुविधाओं तक वास्तविक पहुँच भी प्राप्त होनी चाहिए।

परिवहन एवं यातायात की समस्या: तेजी से बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण सार्वजनिक परिवहन, सड़क नेटवर्क तथा यातायात प्रबंधन पर दबाव बढ़ सकता है। यद्यपि यातायात की समस्या का कारण केवल प्रवास नहीं है, लेकिन अनियोजित नगरीकरण तथा परिवहन सुविधाओं के अपर्याप्त विस्तार के साथ जनसंख्या वृद्धि इस समस्या को गंभीर बना सकती है। दिल्ली, मुंबई और बेंगलुरु जैसे शहरों में कामकाजी लोगों को अपने निवास स्थान से कार्यस्थल तक

पहुँचने के लिए लंबी दूरी तय करनी पड़ सकती है। कम आय वाले प्रवासी प्रायः कार्यस्थलों के निकट महँगा आवास लेने के बजाय दूरस्थ क्षेत्रों में रहते हैं। इससे उनकी यात्रा का समय और परिवहन व्यय बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, सार्वजनिक परिवहन की सीमित उपलब्धता वाले क्षेत्रों में श्रमिकों को पैदल चलने, साइकिल अथवा अन्य अपेक्षाकृत असुविधाजनक साधनों पर निर्भर रहना पड़ सकता है। परिणामस्वरूप, उनकी उत्पादकता, पारिवारिक जीवन तथा विश्राम के समय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच: प्रवासी श्रमिकों को असुरक्षित आवास, प्रदूषण, व्यावसायिक जोखिम, अपर्याप्त पोषण तथा अस्वच्छ वातावरण के कारण स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, अनियमित रोजगार, आय की कमी तथा स्वास्थ्य सेवाओं की लागत उन्हें समय पर उपचार प्राप्त करने से रोक सकती है। Kusuma और Babu (2018) की व्यवस्थित समीक्षा में भारत के आंतरिक प्रवासियों के स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुँच से संबंधित 42 अध्ययनों का विश्लेषण किया गया। समीक्षा में कार्यस्थल पर चोटों, गैर-संचारी बीमारियों, संक्रामक रोगों तथा सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच जैसी समस्याओं का उल्लेख किया गया। उदाहरण के लिए, निर्माण स्थलों पर कार्य करने वाले श्रमिकों को ऊँचाई से गिरने, धूल के संपर्क में आने तथा असुरक्षित मशीनों से चोट लगने का खतरा हो सकता है। यदि ऐसे श्रमिकों को समय पर उपचार या बीमा सुविधा नहीं मिलती, तो बीमारी उनके परिवार की आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित कर सकती है। इसलिए शहरी स्वास्थ्य सेवाओं में प्रवासियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को शामिल करना आवश्यक है।

शिक्षा एवं बाल विकास से संबंधित समस्याएँ: प्रवासी परिवारों के बच्चों की शिक्षा निरंतरता बनाए रखना एक अन्य प्रमुख चुनौती है। रोजगार की अनिश्चितता के कारण परिवारों को बार-बार निवास स्थान बदलना पड़ सकता है। इससे बच्चों का विद्यालय में नामांकन, नियमित उपस्थिति तथा शैक्षिक प्रगति प्रभावित हो सकती है। इसके अतिरिक्त, भाषा संबंधी अंतर, आवश्यक दस्तावेजों की अनुपलब्धता, विद्यालयों की दूरी तथा परिवार की आर्थिक कठिनाइयाँ भी शिक्षा प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, बिहार या उत्तर प्रदेश से महाराष्ट्र में निर्माण कार्य के लिए आने वाले श्रमिकों के बच्चों को स्थानीय भाषा में पढ़ाई करने में कठिनाई हो सकती है। यदि परिवार कुछ महीनों बाद दूसरे शहर में चला जाता है, तो बच्चों की पढ़ाई बाधित हो सकती है। इस प्रकार, प्रवास का प्रभाव केवल वर्तमान पीढ़ी तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह बच्चों के भविष्य के अवसरों को भी प्रभावित कर सकता है।

सामाजिक बहिष्करण, भेदभाव एवं सांस्कृतिक समायोजन

प्रवासियों को नए शहर में भाषा, संस्कृति, खानपान, सामाजिक व्यवहार तथा स्थानीय पहचान से संबंधित कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। कुछ परिस्थितियों में उन्हें बाहरी व्यक्ति समझकर सामाजिक भेदभाव, आवास किराये पर लेने में कठिनाई अथवा रोजगार में असमान व्यवहार का सामना करना पड़ता है। Ahmed (2025) के अध्ययन के अनुसार, शहरी बुनियादी ढाँचे और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच की असमानताएँ प्रवासी श्रमिकों के सामाजिक

बहिष्करण को मजबूत कर सकती हैं। इसका अर्थ यह है कि शहरी विकास का लाभ सभी निवासियों को समान रूप से प्राप्त नहीं होता। उदाहरण के लिए, किसी शहर में वर्षों से कार्य कर रहा प्रवासी श्रमिक भी स्थानीय सामाजिक नेटवर्क की कमी के कारण किराये के आवास, रोजगार संबंधी जानकारी अथवा सरकारी सुविधाओं तक पहुँच में कठिनाई अनुभव कर सकता है। ऐसी परिस्थितियाँ सामाजिक असुरक्षा तथा अलगाव की भावना को बढ़ा सकती हैं। Wiley Online Library

पर्यावरणीय प्रदूषण एवं नगरीय पर्यावरण पर दबाव: जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक विस्तार, निर्माण गतिविधियों तथा वाहनों की बढ़ती संख्या के कारण शहरी पर्यावरण पर दबाव बढ़ सकता है। इसका प्रभाव सभी शहरी निवासियों पर पड़ता है, लेकिन कम आय वाले प्रवासी श्रमिकों को प्रदूषण के अधिक संपर्क वाले क्षेत्रों में रहने या काम करने के कारण अतिरिक्त जोखिम झेलना पड़ सकता है। Bhan और Patel (2023) ने पाया कि महानगरीय क्षेत्रों में रहने वाले ग्रामीण-नगरीय प्रवासियों में प्रदूषण से संबंधित प्रमुख बीमारियों की आशंका गैर-महानगरीय शहरी क्षेत्रों में रहने वाले प्रवासियों की तुलना में अधिक हो सकती है। यह निष्कर्ष दर्शाता है कि शहरी स्वास्थ्य और पर्यावरणीय गुणवत्ता के अध्ययन में प्रवासियों के निवास स्थान तथा कार्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए। PubMed

समस्याओं के समाधान हेतु प्रमुख उपाय: भारत में प्रवास से संबंधित शहरी समस्याओं का समाधान केवल प्रवास को नियंत्रित करने से संभव नहीं है। इसके लिए समावेशी नगरीय नियोजन और सामाजिक सुरक्षा पर आधारित दृष्टिकोण आवश्यक है। प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं—

- ❖ किफायती आवास: प्रवासी श्रमिकों के लिए सुरक्षित किराये के मकान, श्रमिक आवास तथा आवश्यक सुविधाओं से युक्त आवासीय परिसर विकसित किए जाएँ।
- ❖ रोजगार सुरक्षा: न्यूनतम मजदूरी, कार्यस्थल सुरक्षा, समय पर भुगतान तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक पहुँच सुनिश्चित की जाए।
- ❖ बुनियादी सुविधाएँ: पेयजल, स्वच्छता, सार्वजनिक शौचालय, कचरा प्रबंधन और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया जाए।
- ❖ शिक्षा की निरंतरता: प्रवासी बच्चों के लिए लचीली प्रवेश व्यवस्था, दस्तावेजी सहायता तथा भाषा संबंधी सहयोग उपलब्ध कराया जाए।
- ❖ सार्वजनिक परिवहन: श्रमिक आवासीय क्षेत्रों और औद्योगिक क्षेत्रों के बीच किफायती एवं सुलभ परिवहन विकसित किया जाए।

- ❖ सामाजिक समावेशन: प्रवासियों के प्रति भेदभाव कम करने, स्थानीय समुदाय से सहभागिता बढ़ाने तथा कल्याणकारी योजनाओं तक पहुँच सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाएँ।

- ❖ प्रवासी-संवेदनशील नियोजन: शहरी योजनाएँ बनाते समय स्थायी निवासियों के साथ-साथ मौसमी, अस्थायी और चक्रीय प्रवासियों की आवश्यकताओं का भी आकलन किया जाए।

11.7 प्रवासी आबादी की सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ

भारत में प्रवास एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं जनसांख्यिकीय प्रक्रिया है, जो जनसंख्या के वितरण, श्रम बाजार, नगरीकरण, पारिवारिक संरचना और क्षेत्रीय विकास को प्रभावित करती है। बेहतर रोजगार, उच्च आय, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा सुरक्षित जीवन की तलाश में लाखों लोग ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों और एक राज्य से दूसरे राज्य में प्रवास करते हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि संकट, बेरोजगारी, गरीबी, प्राकृतिक आपदाएँ और क्षेत्रीय असमानताएँ भी लोगों को अपना मूल निवास छोड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। प्रवास का उद्देश्य सामान्यतः जीवन-स्तर में सुधार करना होता है, लेकिन प्रवासी आबादी को गंतव्य स्थान पर अनेक सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमें अनियमित रोजगार, कम मजदूरी, असुरक्षित आवास, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, शिक्षा में बाधाएँ, सामाजिक भेदभाव और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तक सीमित पहुँच प्रमुख हैं। Hirudayaraj et al. (2024) के अध्ययन के अनुसार, अंतरराज्यीय प्रवासी श्रमिकों को असुरक्षित कार्य परिस्थितियों, सीमित अवसरों और शोषण जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, प्रवास केवल भौगोलिक स्थान परिवर्तन नहीं, बल्कि आर्थिक अवसरों, सामाजिक संबंधों और जीवन की गुणवत्ता में परिवर्तन की एक जटिल प्रक्रिया है।

- ❖ **रोजगार की असुरक्षा एवं कम मजदूरी:** प्रवासी आबादी की सबसे प्रमुख समस्या रोजगार की अनिश्चितता है। अधिकांश अल्प-कुशल एवं अकुशल प्रवासी श्रमिक निर्माण कार्य, कृषि, घरेलू सेवाओं, होटल उद्योग, छोटे कारखानों, परिवहन तथा असंगठित क्षेत्र में कार्य करते हैं। इन क्षेत्रों में रोजगार प्रायः अस्थायी होता है और श्रमिकों को नियमित वेतन, लिखित अनुबंध, सवेतन अवकाश तथा अन्य श्रम-संबंधी सुविधाएँ नहीं मिल पाती हैं। ठेकेदारों और बिचौलियों पर निर्भरता के कारण कई प्रवासी श्रमिकों को अपनी मजदूरी प्राप्त करने में कठिनाई होती है। कार्य उपलब्ध न होने अथवा आर्थिक मंदी की स्थिति में उनकी आय अचानक समाप्त हो सकती है। बिहार, झारखंड, ओडिशा और उत्तर प्रदेश से दिल्ली, मुंबई, सूरत तथा बेंगलुरु जैसे शहरों में जाने वाले श्रमिक प्रायः निर्माण, वस्त्र उद्योग और अन्य असंगठित गतिविधियों में कार्य करते हैं। यदि निर्माण परियोजना बंद हो जाती है या ठेकेदार काम उपलब्ध नहीं कराता, तो श्रमिक की आय प्रभावित होती है और परिवार के लिए भोजन, किराया तथा बच्चों की शिक्षा का खर्च उठाना कठिन हो जाता है। Hirudayaraj et al. (2024) का अध्ययन स्पष्ट करता है कि रोजगार प्राप्त कर लेने मात्र से प्रवासी श्रमिक गरीबी, असुरक्षा और शोषण से मुक्त नहीं हो जाते।

❖ **आवास एवं बुनियादी सुविधाओं का अभाव:** शहरों में महँगे मकान और सीमित आर्थिक संसाधन प्रवासी आबादी को झुग्गी-बस्तियों, अस्थायी झोपड़ियों तथा भीड़भाड़ वाले किराये के कमरों में रहने के लिए विवश कर सकते हैं। अनेक श्रमिकों को स्वच्छ पेयजल, शौचालय, बिजली, जल निकासी और उचित स्वच्छता सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती हैं। अस्थायी आवास का एक अन्य प्रभाव यह है कि प्रवासियों को बार-बार निवास बदलना पड़ सकता है। इससे बच्चों की शिक्षा, परिवार की स्थिरता और स्थानीय समुदाय के साथ सामाजिक संबंध प्रभावित होते हैं। उदाहरण: महानगरों में निर्माण स्थलों के निकट रहने वाले श्रमिक परिवार कई बार तिरपाल या अस्थायी सामग्री से बनी झोपड़ियों में रहते हैं। वर्षा के मौसम में जलभराव, गर्मियों में अत्यधिक तापमान और स्वच्छता की कमी उनके दैनिक जीवन को कठिन बना देती है। Attah-Otu et al. (2025) के अध्ययन में प्रवासी परिवारों के बीच अपर्याप्त आवास, स्वच्छता सुविधाओं की कमी और स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच जैसी समस्याएँ सामने आईं।

❖ **स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच:** प्रवासी श्रमिकों का स्वास्थ्य उनकी कार्य परिस्थितियों, आवास, आय और सामाजिक सुरक्षा से निकटता से जुड़ा होता है। लंबे कार्य घंटे, अपर्याप्त पोषण, औद्योगिक दुर्घटनाएँ, प्रदूषण और असुरक्षित कार्यस्थल उनके स्वास्थ्य के लिए जोखिम उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त, अस्थायी निवास, काम से अनुपस्थित रहने पर मजदूरी कटने का भय, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी की कमी और स्थानीय स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच उपचार प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न कर सकती है। उदाहरण: निर्माण स्थलों पर कार्यरत प्रवासी श्रमिक ऊँचाई से गिरने, भारी सामग्री उठाने तथा धूल के संपर्क में आने से चोटों और श्वसन संबंधी समस्याओं के जोखिम का सामना कर सकते हैं। यदि उनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन या स्वास्थ्य बीमा नहीं है, तो उपचार का खर्च परिवार पर अतिरिक्त वित्तीय दबाव डालता है। Dodd et al. (2017) ने दक्षिण भारत में आंतरिक प्रवासियों के स्वास्थ्य संबंधी निर्धारकों का अध्ययन करते हुए प्रवासी श्रमिकों की सामाजिक स्थिति, जीवन-परिस्थितियों और स्वास्थ्य के बीच संबंध को रेखांकित किया।

❖ **शिक्षा एवं बाल विकास से संबंधित समस्याएँ:** प्रवास का प्रभाव केवल श्रमिकों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उनके बच्चों की शिक्षा और विकास को भी प्रभावित करता है। मौसमी तथा अल्पकालिक प्रवास करने वाले परिवारों के बच्चों को बार-बार विद्यालय बदलना पड़ सकता है। इससे उनकी उपस्थिति, सीखने की निरंतरता और शैक्षणिक उपलब्धियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। कुछ परिवार आर्थिक कठिनाइयों के कारण बच्चों को काम में सहयोग करने के लिए प्रेरित करते हैं। इससे बाल श्रम, विद्यालय छोड़ने और उच्च शिक्षा से वंचित होने का जोखिम बढ़ जाता है। भाषा संबंधी कठिनाइयाँ तथा विद्यालयों में आवश्यक दस्तावेजों की उपलब्धता भी कुछ परिस्थितियों में बाधा बन सकती हैं। उदाहरण: यदि उत्तराखंड के किसी ग्रामीण क्षेत्र से एक परिवार रोजगार के लिए हरियाणा या दिल्ली जाता है, तो अस्थायी रोजगार के कारण परिवार को बार-बार स्थान बदलना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में बच्चों की पढ़ाई बाधित हो सकती है,

विशेषकर तब जब नए विद्यालय में प्रवेश या शैक्षणिक समायोजन में कठिनाई हो। Attah-Otu et al. (2025) ने पाया कि अस्थायी श्रम प्रवास का संबंध बच्चों के विद्यालय में नामांकन, नियमित उपस्थिति और शैक्षणिक उपलब्धियों से जुड़ी समस्याओं से हो सकता है। अध्ययन यह भी बताता है कि पीछे छूटे बच्चों को घरेलू कार्यों और आर्थिक गतिविधियों में सहयोग करना पड़ सकता है, जिससे उनकी शिक्षा प्रभावित होती है।

- **सामाजिक भेदभाव एवं सांस्कृतिक समायोजन:** प्रवासी आबादी को नए सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में समायोजित होने की चुनौती का सामना करना पड़ता है। भाषा, खान-पान, पहनावे, रीति-रिवाजों और स्थानीय सामाजिक व्यवहारों में अंतर के कारण उन्हें कई बार अलगाव का अनुभव होता है। कुछ परिस्थितियों में प्रवासियों के प्रति क्षेत्रीय पूर्वाग्रह, भाषायी भेदभाव और स्थानीय रोजगार के अवसरों को लेकर प्रतिस्पर्धा की भावना भी सामाजिक तनाव उत्पन्न कर सकती है। इसके परिणामस्वरूप प्रवासी आबादी की सामाजिक भागीदारी तथा स्थानीय संस्थाओं तक पहुँच सीमित हो सकती है। उत्तर प्रदेश और बिहार से महाराष्ट्र या दक्षिण भारत के राज्यों में रोजगार के लिए जाने वाले कुछ श्रमिकों को भाषा संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। इससे उनके लिए स्थानीय प्रशासन, नियोक्ताओं और स्वास्थ्य संस्थानों के साथ संवाद करना मुश्किल हो सकता है। इस प्रकार, सामाजिक समावेशन का अभाव प्रवासियों की आर्थिक असुरक्षा को और अधिक गंभीर बना सकता है।

- **सामाजिक सुरक्षा एवं सरकारी योजनाओं तक पहुँच की समस्या:** प्रवासी श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। उन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, मातृत्व लाभ, दुर्घटना सहायता तथा श्रमिक कल्याण योजनाओं का लाभ प्राप्त करने में विभिन्न व्यावहारिक कठिनाइयाँ हो सकती हैं। निवास स्थान में परिवर्तन, दस्तावेजों की कमी, योजनाओं की जानकारी का अभाव और प्रशासनिक प्रक्रियाएँ इन कठिनाइयों को बढ़ा सकती हैं। यद्यपि भारत में पोर्टेबिलिटी तथा श्रमिक पंजीकरण से संबंधित व्यवस्थाएँ विकसित की गई हैं, लेकिन पात्रता और वास्तविक लाभ प्राप्त करने के बीच अंतर बना रह सकता है। किसी राज्य से दूसरे राज्य में काम करने वाला श्रमिक यदि अपने परिवार के लिए राशन प्राप्त करना चाहता है, तो उसे यह सुनिश्चित करना पड़ सकता है कि संबंधित सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के अंतर्गत उसकी पात्रता और राशन कार्ड की पोर्टेबिलिटी प्रभावी रूप से काम कर रही है। इस समस्या के समाधान के लिए राज्यों के बीच प्रशासनिक समन्वय, सरल पंजीकरण और योजनाओं की प्रभावी जानकारी आवश्यक है।

- **महिलाओं एवं बच्चों की विशेष चुनौतियाँ:** महिला प्रवासी श्रमिकों को रोजगार और घरेलू जिम्मेदारियों का दोहरा भार उठाना पड़ सकता है। उन्हें कम मजदूरी, असुरक्षित कार्यस्थल, यौन उत्पीड़न, मातृत्व

सुविधाओं की कमी और बच्चों की देखभाल से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। बच्चों के साथ प्रवास करने वाली महिलाओं के लिए सुरक्षित आवास, पोषण, स्वास्थ्य सेवाओं और शिशु देखभाल की उपलब्धता विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती है। उदाहरण: कृषि या निर्माण कार्य में संलग्न प्रवासी महिला यदि अपने छोटे बच्चों के साथ अस्थायी आवास में रहती है, तो उसके लिए काम के दौरान बच्चों की सुरक्षित देखभाल सुनिश्चित करना कठिन हो सकता है। इसलिए प्रवासी कल्याण की नीतियों में लैंगिक समानता, मातृत्व संरक्षण, सुरक्षित कार्यस्थल और बाल देखभाल सुविधाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

- **आर्थिक अस्थिरता एवं ऋणग्रस्तता:** प्रवास का एक प्रमुख उद्देश्य आय में वृद्धि और परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार करना होता है। हालाँकि, अनियमित मजदूरी, आवास का खर्च, भोजन, परिवहन तथा स्वास्थ्य संबंधी व्यय के कारण बचत सीमित रह सकती है। कई श्रमिक रोजगार प्राप्त करने के लिए यात्रा, आवास या अन्य आवश्यकताओं पर अग्रिम खर्च करते हैं। यदि अपेक्षित रोजगार या आय उपलब्ध नहीं होती, तो उन्हें ऋण लेना पड़ सकता है। इस प्रकार, प्रवास से होने वाली संभावित आर्थिक प्रगति बाधित हो सकती है। उदाहरण: कोई श्रमिक गाँव से शहर में रोजगार पाने के लिए उधार लेकर आता है। यदि उसे नियमित काम नहीं मिलता, तो वह अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा ऋण चुकाने में खर्च कर सकता है। ऐसी स्थिति में परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण संबंधी आवश्यकताएँ प्रभावित हो सकती हैं। हालाँकि, प्रवास से प्राप्त धनराशि मूल निवास स्थान पर परिवार की आय बढ़ाने, मकान बनाने, कृषि में निवेश और बच्चों की शिक्षा के लिए उपयोगी भी हो सकती है। अतः प्रवास के आर्थिक परिणाम सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकते हैं।

समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक उपाय: भारत में प्रवासी आबादी की सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों के समाधान के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं:

- श्रमिकों के पंजीकरण, समय पर मजदूरी भुगतान, उचित कार्य परिस्थितियों और श्रम अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।

- औद्योगिक एवं शहरी क्षेत्रों में प्रवासी श्रमिकों के लिए सुरक्षित, स्वच्छ और किफायती किराये के आवास विकसित करना।

- प्रवासी श्रमिकों को प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं, दुर्घटना उपचार, स्वास्थ्य बीमा तथा मातृत्व सुविधाओं तक व्यावहारिक पहुँच प्रदान करना।

- ❖ प्रवासी बच्चों के लिए विद्यालय में प्रवेश की सरल प्रक्रिया, शैक्षणिक सहयोग और स्थानांतरण के बाद पढ़ाई जारी रखने की व्यवस्था करना।
- ❖ सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा अन्य पात्र कल्याणकारी योजनाओं का लाभ राज्य परिवर्तन के बावजूद उपलब्ध कराने के प्रयासों को मजबूत करना।
- ❖ सुरक्षित कार्यस्थल, बाल देखभाल केंद्र, मातृत्व लाभ और शिकायत निवारण तंत्र को सुदृढ़ करना।
- ❖ प्रवासी श्रमिकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण, डिजिटल साक्षरता और बेहतर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
- ❖ स्थानीय समुदायों, नागरिक संस्थाओं और प्रशासन के सहयोग से भेदभाव कम करना तथा प्रवासियों की सामाजिक भागीदारी बढ़ाना।

11.8 उत्तराखंड के संदर्भ में प्रवास और शहरी समस्याएँ

उत्तराखंड एक हिमालयी राज्य है, जहाँ भौगोलिक विषमता, सीमित आर्थिक अवसर, दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र तथा मैदानी क्षेत्रों में विकास की अपेक्षाकृत अधिक संभावनाएँ प्रवास को प्रभावित करती हैं। प्रवास का अर्थ व्यक्तियों या परिवारों द्वारा रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा अथवा बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना है। उत्तराखंड में विशेष रूप से पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों से देहरादून, हल्द्वानी, ऋषिकेश, हरिद्वार तथा राज्य के बाहर स्थित महानगरों की ओर प्रवास की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह प्रक्रिया एक ओर लोगों को बेहतर अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर पर्वतीय गाँवों में जनसंख्या के असंतुलन और शहरों में बढ़ते जनसंख्या दबाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न करती है (Hoffmann et al., 2019)। उत्तराखंड में प्रवास के प्रमुख कारणों में रोजगार के सीमित अवसर, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, कृषि की कम उत्पादकता और बेहतर जीवन-स्तर की आकांक्षा शामिल हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में उद्योगों, निजी संस्थानों तथा गैर-कृषि रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं हैं। कृषि पर निर्भरता, छोटी एवं बिखरी हुई जोतें तथा कम आय के कारण अनेक युवा रोजगार की तलाश में मैदानी क्षेत्रों की ओर जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की कमी और वर्तमान आय से बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई भी प्रवास को बढ़ावा देती है (Arya & Vasantha, 2018)।

इसके अतिरिक्त, उच्च शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, विशेषज्ञ चिकित्सकों और बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में क्षेत्रीय असमानता के कारण परिवारों को शहरों में बसना पड़ता है। पर्वतीय कृषि की कम उत्पादकता, जंगली जानवरों से फसलों को नुकसान, सिंचाई की सीमित व्यवस्था तथा कठिन भौगोलिक परिस्थितियाँ भी ग्रामीण आजीविका को प्रभावित करती हैं। दूसरी ओर, शहरों में बेहतर शिक्षा, परिवहन, संचार, बाजार और आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता लोगों को आकर्षित करती है। इसलिए प्रवास को केवल विवशता नहीं, बल्कि बेहतर भविष्य प्राप्त करने की आकांक्षा के रूप में भी समझना चाहिए (Hoffmann et al., 2019)। प्रवास का प्रभाव उत्तराखंड के ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों पर पड़ता है। लगातार बाह्य प्रवास के कारण कई पर्वतीय गाँवों में युवा एवं कार्यशील आयु वर्ग की जनसंख्या कम हो जाती है। इससे कृषि भूमि का उपयोग घटता है, पारंपरिक व्यवसाय प्रभावित होते हैं तथा बुजुर्गों और महिलाओं पर घरेलू एवं कृषि संबंधी जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। कुछ गाँवों में जनसंख्या का अत्यधिक कम होना और बस्तियों का लगभग खाली हो जाना भी गंभीर चिंता का विषय है। दूसरी ओर, देहरादून, हल्द्वानी और हरिद्वार जैसे शहरों में जनसंख्या बढ़ने से आवास, परिवहन, पेयजल, स्वास्थ्य सेवाओं तथा शिक्षा पर दबाव बढ़ता है। अनियोजित शहरी विस्तार के कारण शहरों के बाहरी क्षेत्रों में कृषि भूमि का आवासीय उपयोग बढ़ सकता है। यदि शहरी नियोजन जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप न हो, तो बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता प्रभावित होती है।

उत्तराखंड के शहरी क्षेत्रों में आवास की कमी, यातायात जाम, प्रदूषण, जल संकट और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन प्रमुख समस्याएँ हैं। आर्थिक रूप से कमजोर प्रवासी परिवारों के लिए किफायती आवास प्राप्त करना कठिन हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप अनौपचारिक बस्तियों का विस्तार और स्वच्छता संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होने की आशंका रहती है। वाहनों की बढ़ती संख्या, संकरी सड़कें और पार्किंग की कमी यातायात जाम को बढ़ाती हैं। निर्माण गतिविधियों, वाहनों तथा कचरे के अनुचित प्रबंधन से पर्यावरण पर दबाव पड़ता है। शहरी जनसंख्या में वृद्धि के साथ पेयजल की माँग, सीवेज प्रबंधन और कचरा निस्तारण की चुनौतियाँ भी बढ़ती हैं। पर्वतीय पारिस्थितिकी से जुड़े क्षेत्रों में अनियोजित निर्माण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन पर्यावरणीय जोखिम बढ़ा सकता है। प्रवासी परिवारों को रोजगार की अनिश्चितता, महँगे आवास, सामाजिक समायोजन और गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँच जैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

हालाँकि, प्रवास से प्राप्त आय परिवारों की आर्थिक स्थिति और बच्चों की शिक्षा में सुधार भी कर सकती है। इसलिए प्रवास के प्रभाव सभी परिवारों के लिए समान नहीं होते। उत्तराखंड में प्रवास और शहरी समस्याओं को कम करने के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानीय रोजगार सृजन, कृषि एवं बागवानी का आधुनिकीकरण, पर्यटन का सतत विकास, स्थानीय उत्पादों के विपणन और लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, डिजिटल कनेक्टिविटी और परिवहन सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। साथ ही, शहरों में किफायती आवास, प्रभावी सार्वजनिक परिवहन, वर्षा जल संचयन, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और वैज्ञानिक भूमि-उपयोग नियोजन को प्राथमिकता देनी चाहिए। स्थानीय निकायों को जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप आधारभूत सुविधाओं का विकास करना चाहिए। प्रवास की समस्या का स्थायी समाधान केवल प्रवास को रोकना नहीं, बल्कि लोगों को अपने मूल स्थान पर सम्मानजनक आजीविका और बेहतर जीवन की संभावनाएँ उपलब्ध कराना है।

अंततः, उत्तराखंड में प्रवास ग्रामीण विकास की असमानताओं और शहरीकरण की चुनौतियों से जुड़ी एक जटिल सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है। जहाँ प्रवास व्यक्तियों को रोजगार, शिक्षा और बेहतर जीवन-स्तर प्रदान कर सकता है, वहीं अनियोजित प्रवास पर्वतीय गाँवों के जनसांख्यिकीय संतुलन तथा शहरों की आधारभूत सुविधाओं को प्रभावित करता है। अतः संतुलित क्षेत्रीय विकास, स्थानीय रोजगार और नियोजित शहरीकरण के माध्यम से ही इस समस्या का प्रभावी समाधान संभव है।

11.9 समाधान एवं समावेशी शहरी विकास

समावेशी शहरी विकास (Inclusive Urban Development) का तात्पर्य ऐसी शहरी विकास प्रक्रिया से है, जिसमें समाज के सभी वर्गों को आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, परिवहन, स्वच्छता तथा अन्य बुनियादी सुविधाओं तक समान एवं न्यायसंगत पहुँच प्राप्त हो। तीव्र शहरीकरण के कारण शहरों में आर्थिक असमानता, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, बेरोजगारी, पर्यावरण प्रदूषण, यातायात की समस्या तथा सामाजिक बहिष्करण जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल भौतिक अवसंरचना के निर्माण से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए सामाजिक न्याय, जनभागीदारी, आर्थिक अवसरों की समानता और पर्यावरणीय स्थिरता को एकीकृत करना आवश्यक है।

Mirzoev et al. (2022) के व्यवस्थित साहित्य-समीक्षा अध्ययन के अनुसार, सतत शहरी विकास में सामाजिक समावेशन को केंद्रीय स्थान देना तथा वंचित समूहों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

समावेशी शहरी विकास के प्रमुख समाधान

- ❖ किफायती एवं सुरक्षित आवास: शहरी गरीबों, प्रवासी श्रमिकों, महिलाओं, दिव्यांग व्यक्तियों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए सुलभ एवं सुरक्षित आवास की व्यवस्था आवश्यक है। झुग्गी-बस्तियों के सुधार, मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता तथा उचित पुनर्वास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। विकास परियोजनाओं के कारण लोगों का विस्थापन होने पर उनकी आजीविका, सामाजिक संबंधों और आवासीय सुरक्षा की रक्षा भी सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- ❖ बुनियादी सेवाओं तक समान पहुँच: प्रत्येक नागरिक को स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाओं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सार्वजनिक परिवहन और डिजिटल सुविधाओं तक पहुँच मिलनी चाहिए। शहरी विकास की योजनाओं में गरीब एवं पिछड़े क्षेत्रों को प्राथमिकता देना आवश्यक है, ताकि सामाजिक और भौगोलिक असमानताओं को कम किया जा सके। समावेशी शहरों के लिए सेवाओं की उपलब्धता के साथ उनकी वहनीयता और गुणवत्ता भी महत्त्वपूर्ण है (Asian Development Bank, 2016)।
- ❖ रोजगार एवं आर्थिक सशक्तीकरण: स्थानीय रोजगार के अवसरों का विस्तार, कौशल विकास, स्वरोजगार, छोटे व्यवसायों को प्रोत्साहन तथा असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा शहरी गरीबी को कम करने में सहायक हैं। महिलाओं, युवाओं, प्रवासी श्रमिकों और अन्य वंचित समूहों के लिए समान अवसर उपलब्ध कराना समावेशी आर्थिक विकास का आवश्यक आधार है।
- ❖ जनभागीदारी एवं सुशासन: नगर निकायों को शहरी नियोजन में स्थानीय समुदायों, नागरिक संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा कमजोर सामाजिक समूहों की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। पारदर्शी बजट, जवाबदेही, सामाजिक अंकेक्षण और शिकायत निवारण की प्रभावी व्यवस्था से नागरिकों का विश्वास बढ़ता है। Hemani और Das (2016) ने भारतीय शहरी विकास में सामाजिक समानता, सामाजिक एकजुटता और समुदाय-केंद्रित नियोजन के महत्त्व पर बल दिया है।

- ❖ पर्यावरणीय स्थिरता एवं जलवायु अनुकूलन: हरित क्षेत्र, सार्वजनिक परिवहन, पैदल चलने योग्य मार्ग, वर्षा जल संचयन, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और ऊर्जा-कुशल भवन शहरी जीवन की गुणवत्ता में सुधार करते हैं। बाढ़, अत्यधिक गर्मी तथा जल संकट से प्रभावित क्षेत्रों में जलवायु अनुकूल अवसंरचना विकसित करना आवश्यक है। इन सुविधाओं का लाभ सभी सामाजिक वर्गों तक समान रूप से पहुँचना चाहिए।
- ❖ तकनीक एवं समावेशी नियोजन: डिजिटल सेवाओं, स्मार्ट यातायात प्रबंधन और ऑनलाइन नागरिक सुविधाओं का उपयोग शहरी प्रशासन को अधिक प्रभावी बना सकता है। हालाँकि, डिजिटल विभाजन को रोकने के लिए इंटरनेट, डिजिटल साक्षरता और वैकल्पिक ऑफलाइन सेवाएँ भी उपलब्ध होनी चाहिए। Pineo (2020) का समावेशी एवं न्यायसंगत शहरी नियोजन ढाँचा स्वास्थ्य, समानता और सतत विकास को एक साथ देखने की आवश्यकता पर बल देता है।

11.10 सारांश

प्रवास एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति अथवा परिवार रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं बेहतर जीवन-स्तर की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। प्रवास के प्रमुख प्रकारों में आंतरिक, अंतरराष्ट्रीय, ग्रामीण-नगरीय, मौसमी, अस्थायी, स्वैच्छिक, बाध्यकारी तथा चक्रीय प्रवास शामिल हैं। इसके प्रमुख कारण आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, पारिवारिक परिस्थितियाँ, पर्यावरणीय परिवर्तन तथा बेहतर अवसरों की उपलब्धता हैं। प्रवास और शहरीकरण का गहरा पारस्परिक संबंध है। प्रवास के कारण शहरों की जनसंख्या बढ़ती है, जिससे आर्थिक गतिविधियों और श्रमशक्ति का विस्तार होता है। हालांकि, अनियोजित शहरीकरण से आवास की कमी, झुग्गी-बस्तियों का विस्तार, यातायात जाम, प्रदूषण, जल एवं स्वच्छता संबंधी समस्याएँ तथा सार्वजनिक सेवाओं पर दबाव बढ़ता है। प्रवासी आबादी को रोजगार की असुरक्षा, कम मजदूरी, सामाजिक भेदभाव, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच और बच्चों की शिक्षा में बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उत्तराखंड में पर्वतीय क्षेत्रों से हल्द्वानी, देहरादून तथा अन्य शहरी केंद्रों की ओर प्रवास के प्रमुख कारण रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता हैं। इसके परिणामस्वरूप पर्वतीय गाँवों में जनसंख्या का असंतुलन तथा शहरों में जनसंख्या दबाव बढ़ता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु नियोजित शहरी विकास, किफायती आवास, रोजगार

सुरक्षा, बेहतर आधारभूत सुविधाएँ, सामाजिक सुरक्षा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के अवसर विकसित करना आवश्यक है। समावेशी एवं सतत शहरी विकास ही प्रवास से उत्पन्न चुनौतियों का प्रभावी समाधान है।

11.11 अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- ❖ प्रवास की अवधारणा, अर्थ एवं प्रमुख प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
- ❖ प्रवास के प्रमुख आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, पारिवारिक एवं पर्यावरणीय निर्धारकों की व्याख्या कीजिए।
- ❖ प्रवास और शहरीकरण के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण कीजिए।
- ❖ भारत में प्रवास से संबंधित प्रमुख शहरी समस्याओं का वर्णन कीजिए।
- ❖ प्रवासी आबादी की सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
- ❖ उत्तराखंड के संदर्भ में प्रवास के कारणों एवं प्रभावों की चर्चा कीजिए।
- ❖ समावेशी एवं सतत शहरी विकास की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख उपाय बताइए।
- ❖ शहरी समस्याओं के समाधान में शहरी नियोजन, सामाजिक सुरक्षा एवं जनसहभागिता की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।

11.13 संदर्भ

- ❖ Ahmed, S. (2025). Infrastructure as territorial stigma: Labour migrant exclusions in the Indian city. *International Journal of Urban and Regional Research, 49*(3), 498–513. https://doi.org/10.1111/1468-2427.13313
- ❖ Aristotle. (1999). *Politics* (C. D. C. Reeve, Trans.). Hackett Publishing. (Original work published ca. 4th century BCE).
- ❖ Arya, N., & Vasantha, R. (2018). An analysis of different push and pull factors responsible for rural to urban migration in hills of Uttarakhand. Indian Journal of

Extension Education, 54(1), 48–53. https://epubs.icar.org.in/index.php/IJEE/article/view/143667

- Attah-Otu, B., Jaiswal, N., Gupta, P., & Sengupta, A. (2025). Implications of migration on health and education: Returned migrants and school teachers perspective in India: A qualitative study. *Journal of Migration and Health, 11*, Article 100289. https://doi.org/10.1016/j.jmh.2024.100289
- Awasthi, I., & Mehta, B. S. (2020). Forced out-migration from hill regions and return migration during the pandemic: Evidence from Uttarakhand. The Indian Journal of Labour Economics, 63(4), 1107–1124. https://doi.org/10.1007/s41027-020-00291-w
- Bhan, T., & Patel, A. (2023). Migration and health: Exploring the effect of destinations on the health outcomes among rural-urban migrants in India. *Social Science & Medicine, 331*, Article 116079. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2023.116079
- Choithani, C., van Duijne, R. J., & Nijman, J. (2021). Changing livelihoods at India's rural–urban transition. *World Development, 146*, 105617. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2021.105617
- Desai, R. (2024). Circular migrant workers and housing in Indian cities: A view from Ahmedabad. *Economic and Political Weekly, 59*(26–27). https://doi.org/10.1177/02560909241255005
- Dodd, W., Humphries, S., Patel, K., Majowicz, S., Little, M., & Dewey, C. (2017). Determinants of internal migrant health and the healthy migrant effect in South India: A mixed methods study. *BMC International Health and Human Rights, 17*, Article 23. https://doi.org/10.1186/s12914-017-0132-4
- Harris, J. R., & Todaro, M. P. (1970). Migration, unemployment and development: A two-sector analysis. *The American Economic Review, 60*(1), 126–142. https://www.jstor.org/stable/1807860
- Hirudayaraj, M., Barhate, B., & McLean, G. N. (2024). Work conditions of interstate migrant workers in India: A critical realist exploration. *Human Resource Development Quarterly, 35*(4), 431–453. https://doi.org/10.1002/hrdq.21515
- Hoffmann, E. M., Konerding, V., Nautiyal, S., & Buerkert, A. (2019). Is the push-pull paradigm useful to explain rural-urban migration? A case study in Uttarakhand, India. *PLOS ONE, 14*(4), e0214511. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0214511

- Hoffmann, E. M., Konerding, V., Nautiyal, S., & Buerkert, A. (2019). Is the push-pull paradigm useful to explain rural-urban migration? A case study in Uttarakhand, India. PLOS ONE, 14(4), Article e0214511. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0214511
- Ibn Khaldun. (1967). *The Muqaddimah: An introduction to history* (F. Rosenthal, Trans.). Princeton University Press. (Original work published 1377).
- International Organization for Migration. (2020). World migration report 2020. International Organization for Migration. https://publications.iom.int/books/international-migration-law-ndeg34-glossary-migration?utm
- Jiang, L., O'Neill, B. C., & others. (2018). Determinants of urban growth during demographic and mobility transitions: Evidence from India, Mexico, and the United States. *Population and Development Review, 44*(2), 363–389. https://doi.org/10.1111/padr.12150
- Kariveliparambil, A., K. S., Ranganathan, M., Sebastian, S., Kurian, A., & Babu, J. (2026). Employment precarity and psychosocial well-being among interstate migrant workers in India: The mediating role of social protection. *Frontiers in Human Dynamics, 8*, Article 1842262. https://doi.org/10.3389/fhumd.2026.1842262
- Kumar, A., & Barik, R. R. (2020). Sanitation practices among internal migrant population: A cross sectional study. *International Journal of Community Medicine and Public Health, 7*(2), 717–722. https://doi.org/10.18203/2394-6040.ijcmph20200455
- Kusuma, Y. S., & Babu, B. V. (2018). Migration and health: A systematic review on health and health care of internal migrants in India. *The International Journal of Health Planning and Management, 33*(4), 775–793. https://doi.org/10.1002/hpm.2570
- Lee, E. S. (1966). A theory of migration. *Demography, 3*(1), 47–57. https://doi.org/10.2307/2060063
- Massey, D. S., Arango, J., Hugo, G., Kouaouci, A., Pellegrino, A., & Taylor, J. E. (1993). Theories of international migration: A review and appraisal. *Population and Development Review, 19*(3), 431–466. https://doi.org/10.2307/2938462
- Millock, K. (2015). Migration and environment. *Annual Review of Resource Economics, 7*, 35–60. https://doi.org/10.1146/annurev-resource-100814-125031

- Nishimura, A. S., & Czaika, M. (2024). Exploring migration determinants: A meta-analysis of migration drivers and estimates. *Journal of International Migration and Integration, 25*, 621–643. https://doi.org/10.1007/s12134-023-01091-z
- Obokata, R., Veronis, L., & McLeman, R. (2014). Empirical research on international environmental migration: A systematic review. *Population and Environment, 36*(1), 111–135. https://doi.org/10.1007/s11111-014-0210-7
- Randolph, G. F. (2024). Does urbanization depend on in-migration? Demography, mobility, and India's urban transition. *Environment and Planning A: Economy and Space, 56*(1). https://doi.org/10.1177/0308518X231180609
- Ravenstein, E. G. (1885). The laws of migration. *Journal of the Statistical Society of London, 48*(2), 167–235. https://doi.org/10.2307/2979181
- Shah, A. S., & Malakar, K. M. (2026). From Pahad to Maidan: Climate change and socio-economic dynamics of out-migration in the Uttarakhand Himalayas. Frontiers in Human Dynamics, 8, Article 1786808. https://doi.org/10.3389/fhumd.2026.1786808
- Sironi, A., Bauloz, C., & Emmanuel, M. (Eds.). (2019). Glossary on migration (International Migration Law No. 34). International Organization for Migration
- Stark, O., & Bloom, D. E. (1985). The new economics of labor migration. *The American Economic Review, 75*(2), 173–178. https://www.jstor.org/stable/1805591
- Subbaraman, R., O'Brien, J., Shitole, T., Shitole, S., Sawant, K., Bloom, D. E., & Patil-Deshmukh, A. (2012). Off the map: The health and social implications of being a non-notified slum in India. *Environment and Urbanization, 24*(2), 643–663. https://doi.org/10.1177/0956247812456356
- Todaro, M. P. (1969). A model of labor migration and urban unemployment in less developed countries. *The American Economic Review, 59*(1), 138–148. https://www.jstor.org/stable/1811100
- United Nations. (2018). *World urbanization prospects: The 2018 revision*. Department of Economic and Social Affairs, United Nations.
- Varma, G. R., & Sudhakar, G. (2019). Socio-economic and living conditions of internal migrant labour living in Visakhapatnam City, India. *Populasi*. https://doi.org/10.22146/jp.44147

- World Development. (2021). Life between the city and the village: Scaling analysis of service access in Indian urban slums. *World Development, 142*, Article 105435. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2021.105435
- Yadav, S., Priya, K. R., & Sinha, A. K. (2025). Mental health problems among migrant labourers in India. *Social Change, 55*(1). https://doi.org/10.1177/00490857241307211

इकाई 12: शहरी: गरीबी, बेरोजगारी एवं विकास हस्तक्षेप (Urban: Poverty, Unemployment and Development and Urban Problems)

इकाई-सूची

12.1 परिचय (Introduction)

12.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading):

12.3 शहरी गरीबी: अर्थ, अवधारणा एवं प्रमुख विशेषताएँ

12.3.1 शहरी गरीबी का अर्थ एवं अवधारणा:

12.3.2 शहरी गरीबी की अवधारणा पर प्रमुख विद्वानों के विचार

12.3.3 शहरी गरीबी की प्रमुख विशेषताएँ:

12.4 शहरी गरीबी के कारण एवं निर्धारक

12.5 शहरी बेरोजगारी: अर्थ, प्रकार एवं स्वरूप

12.5.1 शहरी बेरोजगारी के प्रमुख प्रकार:

12.5.2 शहरी बेरोजगारी के प्रमुख स्वरूप:

12.6 शहरी बेरोजगारी के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

12.7 शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान हेतु सरकारी योजनाएँ एवं विकास हस्तक्षेप

12.7.1 प्रमुख सरकारी योजनाएँ एवं उनका महत्त्व

12.7.2 सरकारी योजनाओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन

12.7.3 शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान हेतु विकास हस्तक्षेप

12.7.4 विकास हस्तक्षेपों का निगरानी एवं प्रभाव मूल्यांकन

12.7.5 उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान

12.8 सारांश

12.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 परिचय (Introduction)

भारत में तीव्र शहरीकरण, ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर प्रवास तथा आर्थिक अवसरों के असमान वितरण के कारण शहरी गरीबी और बेरोजगारी गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के रूप में उभरी हैं। शहर रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं बेहतर जीवन-स्तर के अवसर प्रदान करते हैं, किंतु इन अवसरों तक सभी वर्गों की समान पहुँच नहीं होती। परिणामस्वरूप, अनेक परिवार झुग्गी-बस्तियों में रहने, अपर्याप्त आवास, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवाओं तथा सामाजिक सुरक्षा के अभाव जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों, प्रवासी मजदूरों, महिलाओं, युवाओं और वंचित समुदायों के लिए अनियमित रोजगार तथा कम आय गरीबी को और गहरा करते हैं (Kundu, 2000; Rath, 2022)। इस इकाई में शहरी गरीबी की अवधारणा, प्रकृति, कारण एवं प्रमुख आयामों के साथ बेरोजगारी, अल्परोजगार, सामाजिक असमानता और शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन किया जाएगा। साथ ही, रोजगार सृजन, कौशल विकास, स्वरोजगार, आवास, बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता तथा सरकारी विकास योजनाओं की भूमिका पर चर्चा की जाएगी। शहरी विकास को प्रभावी बनाने के लिए समावेशी नीतियों, सामुदायिक सहभागिता, स्थानीय निकायों की सक्रियता और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण पर विशेष बल दिया जाएगा। इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों में शहरी समस्याओं के प्रति सामाजिक संवेदनशीलता विकसित करना तथा गरीबी और बेरोजगारी के समाधान हेतु व्यावहारिक एवं सतत विकास हस्तक्षेपों की समझ उत्पन्न करना है।

12.2 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of Reading)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी—

- ❖ शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी की अवधारणा और कारणों को समझ सकेंगे।
- ❖ प्रमुख शहरी समस्याओं एवं उनके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ शहरी गरीबी, बेरोजगारी एवं प्रवास के पारस्परिक संबंधों को समझ सकेंगे।
- ❖ गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार सृजन हेतु विकास हस्तक्षेपों की पहचान कर सकेंगे।
- ❖ समावेशी एवं सतत शहरी विकास के लिए प्रभावी समाधान सुझा सकेंगे।

12.3 शहरी गरीबी: अर्थ, अवधारणा एवं प्रमुख विशेषताएँ

शहरी गरीबी वर्तमान समाज की एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक चुनौती है, जो आर्थिक असमानता, अनियोजित नगरीकरण, बेरोजगारी, ग्रामीण-शहरी प्रवास तथा संसाधनों के असमान वितरण से गहराई से जुड़ी हुई है। शहरों को रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार और आधुनिक जीवनशैली के अवसरों का केंद्र माना जाता है, लेकिन इन अवसरों तक सभी नागरिकों की समान पहुँच नहीं होती। परिणामस्वरूप, एक ओर शहर आर्थिक विकास और समृद्धि के प्रतीक बनते हैं, तो दूसरी ओर उन्हीं शहरों में अनेक परिवार गरीबी, असुरक्षित रोजगार, आवास की कमी, अस्वच्छ वातावरण और सामाजिक बहिष्करण का सामना करते हैं। शहरी गरीबी की समस्या विशेष रूप से उन परिवारों के लिए गंभीर होती है, जिनकी आजीविका दैनिक मजदूरी, घरेलू कार्य, छोटे व्यवसायों, निर्माण कार्य तथा अन्य असंगठित गतिविधियों पर निर्भर होती है। रोजगार की अनिश्चितता, बढ़ती महँगाई, आवास का ऊँचा किराया और सामाजिक सुरक्षा की सीमित उपलब्धता उनकी आर्थिक स्थिति को अस्थिर बनाए रखते हैं। ऐसी परिस्थितियों में परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं। शहरी गरीबी को केवल आय की कमी के रूप में समझना पर्याप्त नहीं है। यह ऐसी बहुआयामी स्थिति है जिसमें व्यक्ति की भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सुरक्षित पेयजल, सामाजिक सहभागिता तथा सम्मानजनक जीवन तक पहुँच सीमित हो जाती है। इसलिए शहरी गरीबी का अध्ययन आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-साथ सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और विकासात्मक दृष्टिकोणों से भी किया जाना आवश्यक है।

12.3.1 शहरी गरीबी का अर्थ एवं अवधारणा: सामान्य अर्थ में, शहरी गरीबी उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें शहरों में निवास करने वाले व्यक्ति या परिवार उपलब्ध आय, संसाधनों और अवसरों के माध्यम से अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा समाज में सम्मानजनक जीवन जीने में असमर्थ होते हैं। इसमें आर्थिक अभाव के साथ-साथ सामाजिक सेवाओं, बुनियादी सुविधाओं और विकास के अवसरों तक सीमित पहुँच भी सम्मिलित होती है। शहरी गरीबी की प्रकृति ग्रामीण गरीबी से कुछ मायनों में भिन्न होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का संबंध प्रायः भूमि, कृषि उत्पादकता, प्राकृतिक संसाधनों और मौसमी रोजगार से जुड़ा होता है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह अनियमित रोजगार, महँगे आवास, जीवन-यापन की उच्च लागत, असंगठित श्रम तथा सामाजिक सुरक्षा के अभाव से

अधिक प्रभावित होती है। यद्यपि ग्रामीण और शहरी गरीबी के कारणों में पर्याप्त समानताएँ भी पाई जाती हैं, लेकिन शहरी संदर्भ में संसाधनों और सेवाओं की उपलब्धता के बावजूद उन्हें वहन करने की आर्थिक क्षमता एक महत्त्वपूर्ण समस्या बन जाती है। उदाहरण के लिए, किसी महानगर में रहने वाला परिवार रोजगार प्राप्त कर सकता है, लेकिन यदि उसकी आय का अधिकांश हिस्सा मकान के किराए, परिवहन और भोजन पर खर्च हो जाता है, तो उसके लिए बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य उपचार और बचत के लिए पर्याप्त संसाधन शेष नहीं रहते। इस प्रकार, शहर में निवास करना अपने आप में बेहतर जीवन की गारंटी नहीं है। शहरी गरीबी को समझने के लिए निम्नलिखित तीन प्रमुख अवधारणाएँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं:

- **निरपेक्ष गरीबी (Absolute Poverty):** निरपेक्ष गरीबी वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति या परिवार भोजन, वस्त्र, आवास और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक न्यूनतम संसाधन प्राप्त नहीं कर पाता। इस दृष्टिकोण में गरीबी का आकलन निर्धारित गरीबी-रेखा, न्यूनतम उपभोग या आवश्यक जीवन-स्तर के आधार पर किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में निरपेक्ष गरीबी उन परिवारों में दिखाई दे सकती है जिनके पास पर्याप्त भोजन, सुरक्षित आवास, आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं और अन्य मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त आय नहीं होती। अनियमित मजदूरी, रोजगार का अभाव और आकस्मिक चिकित्सा व्यय ऐसी स्थिति को और गंभीर बना सकते हैं।
- **सापेक्ष गरीबी (Relative Poverty):** सापेक्ष गरीबी का संबंध व्यक्ति की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की तुलना उस समाज के सामान्य जीवन-स्तर से करने से है जिसमें वह रहता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, गरीबी केवल न्यूनतम जीवित रहने के संसाधनों का अभाव नहीं है, बल्कि समाज में प्रचलित सामान्य गतिविधियों और जीवन-स्थितियों में प्रभावी रूप से भाग लेने में असमर्थता भी है। शहरी समाज में डिजिटल सेवाओं, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुरक्षित परिवहन, उपयुक्त आवास और सामाजिक गतिविधियों तक असमान पहुँच सापेक्ष वंचना को स्पष्ट करती है। किसी परिवार के पास भोजन उपलब्ध होने के बावजूद यदि वह अपने बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं दिला सकता या आवश्यक सामाजिक सेवाओं का लाभ नहीं उठा सकता, तो उसकी जीवन-स्थितियाँ समाज के सामान्य स्तर से पीछे रह सकती हैं।

- **बहुआयामी गरीबी (Multidimensional Poverty):** बहुआयामी गरीबी का दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि गरीबी को केवल आय या उपभोग के आधार पर नहीं मापा जा सकता। व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, स्वच्छता, पेयजल, ऊर्जा और अन्य बुनियादी सेवाओं की उपलब्धता से भी निर्धारित होती है।

इस दृष्टिकोण से किसी शहरी परिवार की वास्तविक स्थिति का आकलन करते समय यह देखना आवश्यक है कि उसके पास पर्याप्त आय होने के अतिरिक्त सुरक्षित आवास, स्वच्छ पेयजल, शौचालय, स्वास्थ्य सेवाओं और बच्चों की शिक्षा तक पहुँच है या नहीं। इस प्रकार, बहुआयामी दृष्टिकोण गरीबी के विभिन्न स्वरूपों की पहचान करने तथा अधिक प्रभावी विकास नीतियाँ बनाने में सहायता करता है।

12.3.2 शहरी गरीबी की अवधारणा पर प्रमुख विद्वानों के विचार: शहरी गरीबी की अवधारणा को अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए सामाजिक वैज्ञानिकों एवं विकास अर्थशास्त्रियों के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। इन विद्वानों ने गरीबी को केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, अवसरों की कमी और मानवीय क्षमताओं के सीमित विकास से संबंधित समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है।

- **पीटर टाउनसेंड (Peter Townsend) का सापेक्ष वंचना का सिद्धांत:** टाउनसेंड (1979) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Poverty in the United Kingdom में गरीबी को सापेक्ष वंचना के दृष्टिकोण से समझाया। उनके अनुसार, जब व्यक्तियों या परिवारों के पास समाज में सामान्य माने जाने वाले जीवन-स्तर, गतिविधियों और सामाजिक सहभागिता में भाग लेने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं होते, तो वे गरीबी एवं वंचना की स्थिति में होते हैं। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि शहरी गरीबी केवल जीवित रहने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी नहीं है। शहरों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुरक्षित आवास, डिजिटल सुविधाओं और सामाजिक गतिविधियों तक पहुँच भी व्यक्ति की जीवन-गुणवत्ता निर्धारित करती है। जब आर्थिक अभाव के कारण व्यक्ति इन अवसरों से वंचित हो जाता है, तो उसकी सामाजिक सहभागिता और जीवन-स्तर प्रभावित होते हैं।

- **अमर्त्य सेन (Amartya Sen) का क्षमता दृष्टिकोण:** सेन (1999) ने अपनी पुस्तक Development as Freedom में विकास को मानवीय स्वतंत्रताओं और क्षमताओं के विस्तार से जोड़ा। उनके दृष्टिकोण के अनुसार, गरीबी को केवल कम आय के आधार पर नहीं समझा जा सकता; यह उन वास्तविक अवसरों और क्षमताओं के अभाव से भी संबंधित है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपनी इच्छित जीवन-शैली प्राप्त कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति के पास रोजगार पाने के लिए आवश्यक शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य या सामाजिक सहायता उपलब्ध नहीं है, तो उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार की संभावनाएँ सीमित हो जाती हैं। इसलिए शहरी गरीबी का समाधान केवल आर्थिक सहायता प्रदान करना नहीं, बल्कि शिक्षा, कौशल विकास, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा के अवसरों का विस्तार करना भी है।
- **मोहंती एवं वशिष्ठ (Mohanty & Vasishtha) का बहुआयामी गरीबी का दृष्टिकोण:** Mohanty और Vasishtha (2021) ने Poverty & Public Policy में प्रकाशित अपने अध्ययन में भारतीय शहरी गरीबी का विश्लेषण करते हुए बताया कि केवल आय-आधारित मापन शहरी जनसंख्या की विभिन्न प्रकार की वंचनाओं को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाता। उनके अध्ययन में शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन-स्तर और आवास को बहुआयामी गरीबी के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माना गया। शहरी संदर्भ में व्याख्या: यह दृष्टिकोण बताता है कि किसी परिवार की गरीबी का आकलन करते समय उसकी आय के साथ यह भी देखना चाहिए कि उसे सुरक्षित आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता है या नहीं। इस प्रकार, बहुआयामी दृष्टिकोण शहरी गरीबों की वास्तविक आवश्यकताओं की पहचान करने में सहायता करता है।
- **जमादार एवं श्रीधर (Jamadar & Sridhar) का** अध्ययन: Jamadar और Sridhar (2024) ने अपने अध्ययन Urban Poverty Beyond 'Slums': Mapping Its Multidimensionality में इस बात पर ध्यान आकर्षित किया कि शहरी गरीबी को केवल झुग्गी-बस्तियों तक सीमित करके नहीं देखा जाना चाहिए। गरीबी शहरों के अन्य आवासीय क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों में भी मौजूद हो सकती है और केवल बस्ती-आधारित पहचान से इसकी वास्तविक व्यापकता कम आँकी जा सकती है। यह विचार शहरी गरीबी की पहचान के लिए अधिक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। निम्न आय वाले किरायेदार, अस्थायी श्रमिक और अनौपचारिक बस्तियों के बाहर रहने वाले वंचित परिवार भी आर्थिक एवं

सामाजिक असुरक्षा का सामना कर सकते हैं। अतः विकास योजनाओं का निर्धारण केवल निवास-स्थान के आधार पर नहीं, बल्कि परिवारों की वास्तविक आवश्यकताओं और वंचनाओं के आधार पर होना चाहिए।

12.3.3 शहरी गरीबी की प्रमुख विशेषताएँ: शहरी गरीबी की प्रकृति को समझने के लिए इसकी प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण आवश्यक है। ये विशेषताएँ परस्पर संबंधित हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए गरीबी की निरंतरता को बढ़ा सकती हैं।

- ❖ निम्न एवं अनिश्चित आय: शहरी गरीबों का एक बड़ा हिस्सा दैनिक मजदूरी, घरेलू कार्य, छोटे व्यवसायों तथा अस्थायी रोजगार पर निर्भर रहता है। नियमित आय का अभाव उनके लिए भोजन, आवास और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति को कठिन बनाता है।
- ❖ बेरोजगारी एवं अल्परोजगार: रोजगार के सीमित अवसर, कौशल की कमी और असंगठित क्षेत्र में कार्य करने की विवशता गरीबी को बढ़ाती है। कई व्यक्ति काम करने के बावजूद पर्याप्त आय अर्जित नहीं कर पाते।
- ❖ आवास संबंधी असुरक्षा: महँगा किराया, भीड़भाड़, अपर्याप्त आवास और अस्वच्छ वातावरण शहरी गरीबों की प्रमुख समस्याएँ हैं। सुरक्षित एवं स्थायी आवास का अभाव परिवार की शारीरिक सुरक्षा और जीवन-गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
- ❖ शिक्षा एवं स्वास्थ्य से वंचना: आर्थिक कठिनाइयों के कारण बच्चों की शिक्षा बाधित हो सकती है तथा परिवारों को समय पर गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ प्राप्त करने में कठिनाई होती है। इससे गरीबी और सामाजिक वंचना का दुष्चक्र निर्मित हो सकता है।
- ❖ बुनियादी सुविधाओं की कमी: सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता, नियमित बिजली, उचित परिवहन और स्वच्छ पर्यावरण तक अपर्याप्त पहुँच शहरी जीवन की कठिनाइयों को बढ़ाती है।
- ❖ सामाजिक असमानता एवं बहिष्करण: सामाजिक पहचान, आर्थिक स्थिति और अवसरों की असमानता के कारण कुछ समूहों को रोजगार, शिक्षा और सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँचने में अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है।

- ❖ प्रवासी श्रमिकों की असुरक्षा: रोजगार की तलाश में शहर आने वाले श्रमिकों को अनियमित आय, अस्थायी आवास और सामाजिक सुरक्षा की कमी जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। ये परिस्थितियाँ उनकी आर्थिक अस्थिरता बढ़ाती हैं।
- ❖ महिलाओं एवं बच्चों पर विशेष प्रभाव: गरीब परिवारों में महिलाओं को कम वेतन, असुरक्षित कार्य-स्थितियों और अवैतनिक देखभाल कार्य का अतिरिक्त बोझ उठाना पड़ सकता है। बच्चों के पोषण, शिक्षा और समुचित विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
- ❖ उच्च जीवन-यापन लागत: शहरों में किराया, भोजन, परिवहन और स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाला खर्च कम आय वाले परिवारों की क्रय-शक्ति को सीमित करता है। इस कारण रोजगार होने के बावजूद परिवार आर्थिक कठिनाइयों में रह सकते हैं।
- ❖ पीढ़ीगत गरीबी: शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों की कमी बच्चों की भविष्य की संभावनाओं को सीमित कर सकती है। परिणामस्वरूप, गरीबी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होने का जोखिम बढ़ जाता है।

12.4 शहरी गरीबी के कारण एवं निर्धारक

शहरी गरीबी समकालीन समाज की एक जटिल सामाजिक-आर्थिक समस्या है, जो केवल आय की कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा तथा बुनियादी सुविधाओं तक अपर्याप्त पहुँच से भी संबंधित है। शहरी क्षेत्रों में आर्थिक विकास, औद्योगीकरण और सेवा क्षेत्र के विस्तार के बावजूद समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर प्राप्त नहीं होते। परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में लोग झुग्गी-बस्तियों, अनौपचारिक बस्तियों तथा असुरक्षित आवासों में जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होते हैं। शहरी गरीबी को समझने के लिए उसके कारणों और निर्धारकों का अध्ययन आवश्यक है। इसके अंतर्गत आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, ग्रामीण-शहरी प्रवास, जनसंख्या वृद्धि, आवास की महँगी व्यवस्था, शिक्षा एवं कौशल की कमी, सामाजिक भेदभाव तथा नगरीय विकास की असमान प्रकृति जैसे कारक सम्मिलित हैं। संयुक्त राष्ट्र मानव बस्तियों

कार्यक्रम के अनुसार, समावेशी एवं सतत शहरी विकास के लिए आवास, बुनियादी सेवाओं और आजीविका के अवसरों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना आवश्यक है।

- **बेरोजगारी एवं अल्परोजगार:** शहरी गरीबी का एक प्रमुख कारण बेरोजगारी और अल्परोजगार है। शहरों में रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध होने के बावजूद प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता, कौशल और अनुभव के अनुरूप काम नहीं मिल पाता। विशेष रूप से अशिक्षित, कम शिक्षित तथा तकनीकी प्रशिक्षण से वंचित व्यक्तियों को नियमित एवं सम्मानजनक रोजगार प्राप्त करने में कठिनाई होती है। शहरी अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत लोगों पर निर्भर करता है। इनमें दिहाड़ी मजदूर, घरेलू कामगार, रेहड़ी-पटरी विक्रेता, निर्माण श्रमिक, रिक्शा चालक तथा छोटे सेवा व्यवसायों में लगे व्यक्ति शामिल हैं। ऐसे श्रमिकों को प्रायः नियमित वेतन, रोजगार की स्थिरता, सवेतन अवकाश और सामाजिक सुरक्षा का लाभ नहीं मिलता। काम की उपलब्धता में मौसमी उतार-चढ़ाव के कारण उनकी आय अनिश्चित बनी रहती है। अल्परोजगार की स्थिति में व्यक्ति काम तो करता है, लेकिन उसकी आय परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होती। इसलिए केवल रोजगार की उपलब्धता को गरीबी उन्मूलन का पर्याप्त आधार नहीं माना जा सकता; रोजगार की गुणवत्ता, पारिश्रमिक और सामाजिक सुरक्षा भी महत्त्वपूर्ण हैं।
- **ग्रामीण-शहरी प्रवास:** ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास शहरी गरीबी के निर्धारकों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर निर्भरता, भूमिहीनता, कम मजदूरी, प्राकृतिक आपदाएँ, सीमित शैक्षिक सुविधाएँ तथा रोजगार के अभाव के कारण लोग शहरों की ओर आकर्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन और बेहतर जीवन-स्तर की अपेक्षा भी प्रवास को प्रोत्साहित करती है। शहरों में पहुँचने के बाद प्रवासियों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उनके पास स्थानीय सामाजिक नेटवर्क, आवश्यक दस्तावेजों, तकनीकी कौशल और नियमित रोजगार का अभाव हो सकता है। परिणामस्वरूप, अनेक प्रवासी कम मजदूरी वाले कार्यों में संलग्न हो जाते हैं तथा उन्हें महँगे किराये, असुरक्षित आवास और बुनियादी सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है। हालाँकि, यह समझना आवश्यक है कि प्रवास स्वयं गरीबी का अनिवार्य कारण नहीं है। प्रवास रोजगार, शिक्षा और आय में वृद्धि का अवसर भी प्रदान कर

सकता है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब शहरी अर्थव्यवस्था, आवास व्यवस्था और सार्वजनिक सेवाएँ बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित नहीं होतीं।

- **आय एवं आर्थिक असमानता:** शहरी क्षेत्रों में आर्थिक विकास के लाभों का असमान वितरण गरीबी को बनाए रखने वाला एक प्रमुख कारक है। एक ओर उच्च आय वाले वर्ग आधुनिक आवास, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और बेहतर रोजगार का लाभ उठाते हैं, वहीं दूसरी ओर निम्न आय वाले परिवार अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघर्ष करते हैं। आय की असमानता का प्रभाव केवल उपभोग पर नहीं, बल्कि अवसरों की उपलब्धता पर भी पड़ता है। आर्थिक रूप से कमजोर परिवार बच्चों की शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य और कौशल विकास पर पर्याप्त निवेश नहीं कर पाते। इससे उनकी अगली पीढ़ी के लिए बेहतर रोजगार प्राप्त करना कठिन हो सकता है और गरीबी का अंतरपीढ़ी संचरण होता है। इसके अतिरिक्त, संपत्ति एवं उत्पादक संसाधनों का असमान स्वामित्व भी महत्त्वपूर्ण है। जिन परिवारों के पास भूमि, बचत, आवास या अन्य संपत्तियाँ नहीं होतीं, वे आर्थिक संकट के समय अधिक असुरक्षित हो जाते हैं। इस प्रकार, शहरी गरीबी का संबंध केवल वर्तमान आय से नहीं, बल्कि संपत्ति, अवसरों और संसाधनों के वितरण से भी है।
- **शिक्षा एवं कौशल विकास का अभाव:** शिक्षा और व्यावसायिक कौशल की कमी शहरी गरीबी का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। आधुनिक शहरी अर्थव्यवस्था में रोजगार प्राप्त करने के लिए तकनीकी दक्षता, डिजिटल साक्षरता, संचार कौशल और व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता बढ़ रही है। जिन व्यक्तियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा कौशल विकास के अवसर नहीं मिलते, वे प्रायः कम आय वाले और असुरक्षित रोजगारों तक सीमित रह जाते हैं। गरीब परिवारों के बच्चों को विद्यालय छोड़ने, बाल श्रम, कुपोषण और अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण न मिलने जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इससे उनके भविष्य के रोजगार अवसर प्रभावित होते हैं। इस प्रकार, शिक्षा का अभाव गरीबी को बनाए रखने वाला तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने वाला कारक बन सकता है।
- **आवास की उच्च लागत एवं झुग्गी-बस्तियों का विस्तार:** शहरी क्षेत्रों में भूमि और आवास की बढ़ती कीमतें निम्न आय वाले परिवारों के लिए बड़ी चुनौती हैं। रोजगार के अवसरों के निकट रहने के लिए पर्याप्त

संसाधन न होने के कारण अनेक परिवार अनौपचारिक बस्तियों, किराये के छोटे कमरों अथवा असुरक्षित आवासों में रहने को विवश होते हैं। ऐसी बस्तियों में स्वच्छ पेयजल, शौचालय, जल निकासी, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी हो सकती है। असुरक्षित आवास और भीड़भाड़ से बीमारियों का खतरा बढ़ता है तथा बच्चों की शिक्षा एवं परिवार की कार्यक्षमता प्रभावित होती है। दूसरी ओर, आवास पर आय का बड़ा हिस्सा खर्च होने से भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी आवश्यकताओं के लिए कम धन बचता है। UN-Habitat (2022) के अनुसार, शहरी गरीबी का संबंध आवास की स्थिति के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और स्थानिक वंचनाओं से भी है। इसलिए शहरी गरीबी के समाधान में किफायती आवास, बुनियादी सेवाओं तथा सुरक्षित निवास के अधिकार को महत्त्व देना आवश्यक है।

- **सामाजिक भेदभाव एवं लैंगिक असमानता:** जाति, लिंग, आयु, दिव्यांगता, प्रवासी स्थिति और सामाजिक पहचान के आधार पर होने वाला भेदभाव शहरी गरीबी को गहरा कर सकता है। महिलाओं को कम वेतन, असुरक्षित कार्यस्थल, रोजगार के सीमित अवसर और अवैतनिक घरेलू कार्य का अधिक बोझ झेलना पड़ सकता है। एकल महिलाओं, घरेलू कामगारों तथा असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक असुरक्षा विशेष रूप से गंभीर हो सकती है। इसी प्रकार, दिव्यांग व्यक्तियों को सुलभ परिवहन, उपयुक्त कार्यस्थल, शिक्षा और रोजगार के अवसरों की कमी का सामना करना पड़ सकता है। प्रवासी श्रमिकों और बेघर व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तथा आवश्यक सेवाओं तक पहुँचने में भी कठिनाई हो सकती है। इस प्रकार, सामाजिक बहिष्करण गरीबी को केवल आर्थिक समस्या न रहने देकर अवसरों और अधिकारों की असमानता में बदल देता है।
- **महँगाई एवं जीवन-यापन की बढ़ती लागत:** शहरों में भोजन, किराया, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य और ऊर्जा पर होने वाला खर्च ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में कई परिस्थितियों में अधिक हो सकता है। जब आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें आय की तुलना में तेजी से बढ़ती हैं, तो निम्न आय वाले परिवारों की वास्तविक क्रयशक्ति कम हो जाती है। ऐसे परिवार भोजन की गुणवत्ता घटाने, बच्चों की शिक्षा पर खर्च कम करने या आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं को टालने के लिए विवश हो सकते हैं। बीमारी, नौकरी छूटने अथवा अन्य आकस्मिक परिस्थितियों में बचत की कमी उन्हें ऋण और आर्थिक संकट की ओर धकेल सकती है।

इसलिए गरीबी का आकलन करते समय केवल मौद्रिक आय ही नहीं, बल्कि स्थानीय जीवन-यापन लागत और परिवार की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

- **अनियोजित नगरीकरण एवं कमजोर शहरी शासन:** तेजी से बढ़ती शहरी आबादी के अनुरूप आवास, परिवहन, पेयजल, स्वच्छता, विद्यालयों और स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास न होने पर शहरी गरीबी बढ़ सकती है। अनियोजित नगरीकरण के कारण कुछ क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का अत्यधिक अभाव होता है, जबकि अन्य क्षेत्रों में संसाधनों और निवेश का संकेंद्रण दिखाई देता है। स्थानीय निकायों की सीमित वित्तीय क्षमता, कमजोर नियोजन, योजनाओं के क्रियान्वयन में कमियाँ और निर्णय-प्रक्रिया में गरीब समुदायों की अपर्याप्त भागीदारी भी समस्या को बढ़ाती हैं। यदि शहरी विकास योजनाओं में झुग्गी-बस्ती निवासियों, प्रवासियों और अनौपचारिक श्रमिकों की आवश्यकताओं को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता, तो विकास का लाभ असमान रूप से वितरित होता है। UN-Habitat (2022) इस बात पर बल देता है कि समावेशी शहरी नियोजन, बुनियादी सेवाओं का विस्तार और अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत लोगों के लिए सहयोगी नीतियाँ शहरी गरीबी एवं असमानता को कम करने के लिए आवश्यक हैं।
- **स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ एवं सामाजिक सुरक्षा का अभाव:** खराब स्वास्थ्य और गरीबी के बीच परस्पर संबंध पाया जाता है। बीमारी के कारण व्यक्ति की कार्यक्षमता घट सकती है, रोजगार छूट सकता है और परिवार को उपचार पर अतिरिक्त व्यय करना पड़ सकता है। यदि परिवार के पास पर्याप्त बचत या स्वास्थ्य बीमा नहीं है, तो चिकित्सा खर्च उसे आर्थिक संकट में डाल सकता है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, दिहाड़ी मजदूरों तथा कम आय वाले परिवारों के लिए बीमारी के दौरान आय का नुकसान विशेष रूप से गंभीर होता है। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य सहायता तथा निवारक स्वास्थ्य सेवाओं तक अपर्याप्त पहुँच भी गरीबी की स्थिति को बनाए रख सकती है। इसलिए शहरी गरीबी को कम करने के लिए सुलभ स्वास्थ्य सेवाओं, पोषण सहायता, सामाजिक सुरक्षा और संकट के समय आर्थिक संरक्षण की व्यवस्था आवश्यक है।
- **पर्यावरणीय जोखिम एवं जलवायु परिवर्तन:** शहरी गरीब प्रायः ऐसे क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ बाढ़, जलभराव, अत्यधिक गर्मी, प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय जोखिम अधिक होते हैं। कमजोर निर्माण, अपर्याप्त

जल निकासी तथा सुरक्षित पेयजल की कमी इन जोखिमों के प्रभाव को बढ़ा सकती है। प्राकृतिक आपदाओं से घर, आजीविका और घरेलू संपत्ति को नुकसान पहुँचने पर गरीब परिवारों के लिए आर्थिक स्थिति को पुनः स्थिर करना कठिन हो जाता है। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न अत्यधिक गर्मी और बाढ़ का प्रभाव उन श्रमिकों पर भी पड़ सकता है जो खुले वातावरण में काम करते हैं या जिनके पास सुरक्षित आवास की सुविधा नहीं है। UN-Habitat (2024) रेखांकित करता है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव मौजूदा सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को बढ़ा सकते हैं और सीमित संसाधनों वाले समुदायों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं।

12.5 शहरी बेरोजगारी: अर्थ, प्रकार एवं स्वरूप

शहरी बेरोजगारी समकालीन नगरीय समाज की एक प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्या है। तीव्र नगरीकरण, ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास, जनसंख्या वृद्धि, तकनीकी परिवर्तन तथा रोजगार के अवसरों में असमानता के कारण शहरी श्रम बाजार पर निरंतर दबाव बढ़ता है। शहरों को सामान्यतः रोजगार, शिक्षा, व्यापार, उद्योग और बेहतर जीवन-स्तर के अवसरों का केंद्र माना जाता है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता, कौशल और अपेक्षाओं के अनुरूप काम नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी, अल्परोजगार, अनियमित रोजगार तथा असुरक्षित आजीविका जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organization [ILO]) के अनुसार, बेरोजगारी की पहचान सामान्यतः तीन प्रमुख शर्तों के आधार पर की जाती है—व्यक्ति के पास संदर्भ अवधि में रोजगार नहीं होना, वह काम करने के लिए उपलब्ध होना तथा रोजगार प्राप्त करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास करना। इस परिभाषा के अनुसार, केवल काम न करने वाला प्रत्येक व्यक्ति बेरोजगार नहीं माना जाता; उदाहरण के लिए, जो व्यक्ति पढ़ाई कर रहा है और रोजगार तलाश नहीं कर रहा, वह सामान्यतः श्रमबल से बाहर माना जाता है। शहरी बेरोजगारी से आशय ऐसी स्थिति से है, जिसमें नगरीय क्षेत्र में निवास करने वाला काम करने का इच्छुक, सक्षम तथा उपलब्ध व्यक्ति प्रचलित मजदूरी या अन्य स्वीकार्य शर्तों पर रोजगार प्राप्त करने में असफल रहता है। यह समस्या केवल रोजगार की अनुपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि उपलब्ध नौकरियों और श्रमिकों की योग्यता, कौशल, अनुभव तथा रोजगार संबंधी अपेक्षाओं के बीच असंतुलन को भी व्यक्त करती है।

भारत में शहरी बेरोजगारी का स्वरूप विशेष रूप से जटिल है। एक ओर शिक्षित युवा सरकारी नौकरी, नियमित वेतन और सुरक्षित कार्य की तलाश करते हैं, तो दूसरी ओर अनेक श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कम आय, अनिश्चित काम और सामाजिक सुरक्षा के अभाव में कार्य करने के लिए विवश होते हैं। Roy, Saroj और Pradhan (2022) के अध्ययन में भारतीय शहरी श्रम बाजार में नियमित वेतनभोगी रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार और आकस्मिक श्रम की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति तथा अनेक श्रमिकों के लिए रोजगार सुरक्षा की कमी को रेखांकित किया गया है। इस प्रकार, शहरी बेरोजगारी को समझने के लिए केवल नौकरी प्राप्त करने वाले और नौकरी से वंचित व्यक्तियों की संख्या देखना पर्याप्त नहीं है। रोजगार की गुणवत्ता, आय की पर्याप्तता, कार्य की नियमितता, कौशल का उपयोग तथा सामाजिक सुरक्षा जैसे पहलुओं का अध्ययन भी आवश्यक है।

12.5.1 शहरी बेरोजगारी के प्रमुख प्रकार: शहरी बेरोजगारी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक और संरचनात्मक परिस्थितियों के कारण अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। इसके प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं:

- **खुली बेरोजगारी (Open Unemployment):** खुली बेरोजगारी वह स्थिति है, जिसमें व्यक्ति के पास कोई रोजगार नहीं होता, जबकि वह काम करने के लिए तैयार और उपलब्ध होता है तथा रोजगार प्राप्त करने का प्रयास करता है। शहरी क्षेत्रों में यह समस्या विशेष रूप से उन युवाओं में दिखाई दे सकती है, जो शिक्षा पूरी करने के बाद नौकरी की तलाश करते हैं। उदाहरण के लिए, किसी महानगर में स्नातक या स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करने वाला युवा कई महीनों तक उपयुक्त नौकरी नहीं प्राप्त कर पाता, तो वह खुली बेरोजगारी का उदाहरण हो सकता है।
- **शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment):** शिक्षित बेरोजगारी उस स्थिति को दर्शाती है, जिसमें औपचारिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुरूप रोजगार नहीं खोज पाता। इसका एक कारण शिक्षण संस्थानों में अर्जित ज्ञान और रोजगार बाजार में अपेक्षित व्यावहारिक कौशल के बीच अंतर हो सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ क्षेत्रों में सीमित पद, भर्ती प्रक्रियाओं में विलंब तथा प्रतिष्ठित नौकरियों के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा भी इस समस्या को बढ़ाते हैं। शिक्षित बेरोजगारी का प्रभाव व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ उसके आत्मविश्वास, पारिवारिक संबंधों और भविष्य की योजनाओं पर भी पड़ सकता है।

भारत में युवाओं के रोजगार संबंधी अध्ययन में शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा श्रम बाजार की आवश्यकताओं के बीच सामंजस्य के महत्त्व को रेखांकित किया गया है (Das, 2025)।

- **संरचनात्मक बेरोजगारी (Structural Unemployment):** संरचनात्मक बेरोजगारी तब उत्पन्न होती है, जब अर्थव्यवस्था में रोजगार की उपलब्ध संरचना और श्रमिकों के कौशल, योग्यता या स्थान के बीच दीर्घकालिक असंतुलन पैदा हो जाता है। उदाहरण के लिए, किसी शहर में पारंपरिक विनिर्माण इकाइयों का बंद होना और स्वचालित तकनीक का विस्तार ऐसे श्रमिकों की मांग घटा सकता है, जिनके पास नई तकनीक का ज्ञान नहीं है। दूसरी ओर, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल सेवाओं या आधुनिक विनिर्माण में प्रशिक्षित कर्मचारियों की मांग बनी रह सकती है। यह बेरोजगारी केवल आर्थिक मंदी से उत्पन्न नहीं होती, बल्कि उद्योगों की प्रकृति में बदलाव, तकनीकी प्रगति और कौशल की बदलती आवश्यकताओं से भी संबंधित होती है।

- **चक्रीय बेरोजगारी (Cyclical Unemployment):** चक्रीय बेरोजगारी आर्थिक गतिविधियों में उतार-चढ़ाव के कारण उत्पन्न होती है। जब अर्थव्यवस्था में मंदी आती है, तो वस्तुओं और सेवाओं की मांग घटती है। इसके परिणामस्वरूप उद्योग उत्पादन कम करते हैं, व्यापारिक प्रतिष्ठान कर्मचारियों की भर्ती रोक देते हैं या कर्मचारियों की संख्या में कटौती करते हैं। शहरों में उद्योग, निर्माण, परिवहन, पर्यटन, खुदरा व्यापार और आतिथ्य सेवाओं पर निर्भर श्रमिक इससे प्रभावित हो सकते हैं। इसके विपरीत, आर्थिक गतिविधियों में सुधार होने पर रोजगार के अवसर बढ़ सकते हैं। इस प्रकार चक्रीय बेरोजगारी का संबंध व्यापक आर्थिक परिस्थितियों से होता है।

- **घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment):** घर्षणात्मक बेरोजगारी उस अस्थायी अवधि को दर्शाती है, जिसमें व्यक्ति एक नौकरी छोड़ने और दूसरी नौकरी प्राप्त करने के बीच रहता है अथवा शिक्षा पूरी करने के बाद पहली नौकरी खोजता है। शहरों में अनेक व्यक्ति बेहतर वेतन, पदोन्नति, सुविधाओं या कार्य-परिस्थितियों के लिए नौकरी बदलते हैं। ऐसी परिस्थितियों में कुछ समय तक रोजगार न मिलना घर्षणात्मक बेरोजगारी कहलाता है। यह आवश्यक नहीं कि घर्षणात्मक बेरोजगारी अर्थव्यवस्था की गंभीर

कमजोरी का संकेत हो। यदि श्रम बाजार में पर्याप्त अवसर और रोजगार संबंधी जानकारी उपलब्ध हो, तो इसकी अवधि कम हो सकती है।

- **मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment):** मौसमी बेरोजगारी वह स्थिति है, जिसमें वर्ष के कुछ विशेष समय में रोजगार उपलब्ध होता है, जबकि अन्य समय में काम की कमी हो जाती है। यद्यपि यह समस्या कृषि में अधिक स्पष्ट होती है, फिर भी शहरी क्षेत्रों में पर्यटन, निर्माण, विवाह समारोह, त्योहारों तथा मौसमी व्यापार से जुड़े श्रमिक इससे प्रभावित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, पर्यटन स्थलों पर होटल, परिवहन और स्थानीय व्यापार में कार्यरत अस्थायी कर्मचारियों को पर्यटन का व्यस्त मौसम समाप्त होने पर काम कम मिल सकता है।

- **तकनीकी बेरोजगारी (Technological Unemployment):** तकनीकी बेरोजगारी का संबंध मशीनों, स्वचालन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डिजिटल प्रणालियों के कारण कुछ प्रकार के मानवीय श्रम की मांग में कमी आने से है। शहरी अर्थव्यवस्था में बैंकिंग, खुदरा व्यापार, डेटा प्रबंधन और औद्योगिक उत्पादन जैसे क्षेत्रों में तकनीकी परिवर्तन कार्यों की प्रकृति को बदल सकते हैं। हालांकि, तकनीक नए रोजगार भी पैदा करती है, लेकिन नए अवसरों के लिए आवश्यक कौशल प्राप्त करने में असमर्थ श्रमिकों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ सकता है।

- **प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment):** प्रच्छन्न बेरोजगारी उस स्थिति को कहा जाता है, जिसमें किसी कार्य या प्रतिष्ठान में आवश्यकता से अधिक लोग लगे होते हैं और कुछ व्यक्तियों को हटा देने पर भी कुल उत्पादन में विशेष कमी नहीं आती। यह समस्या ग्रामीण परिवारों में अधिक स्पष्ट हो सकती है, लेकिन शहरी क्षेत्रों में छोटे पारिवारिक व्यवसायों, दुकानों तथा सूक्ष्म उद्यमों में भी देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए, किसी छोटी दुकान में काम की वास्तविक आवश्यकता से अधिक परिवार के सदस्य लगे हों, तो उनमें से कुछ का श्रम सीमांत उत्पादन में बहुत कम योगदान दे सकता है।

- **अल्परोजगार (Underemployment):** अल्परोजगार की स्थिति में व्यक्ति किसी न किसी रूप में कार्यरत तो होता है, लेकिन उसे अपनी क्षमता, योग्यता या उपलब्ध कार्य-समय के अनुरूप पर्याप्त रोजगार नहीं मिल पाता। इसके दो प्रमुख स्वरूप समय-संबंधी अल्परोजगार तथा कौशल-संबंधी अल्परोजगार हैं। समय-संबंधी

अल्परोजगार में व्यक्ति अधिक घंटे काम करना चाहता है, लेकिन उसे पर्याप्त कार्य नहीं मिलता। कौशल-संबंधी अल्परोजगार में उच्च शिक्षित या प्रशिक्षित व्यक्ति अपनी योग्यता से काफी नीचे के कार्य में लगा होता है। उदाहरण के लिए, प्रबंधन में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त व्यक्ति को यदि अपनी योग्यता के अनुरूप काम नहीं मिलता और वह अस्थायी रूप से कम कौशल वाला कार्य करता है, तो यह कौशल के अपर्याप्त उपयोग का उदाहरण हो सकता है। ILO के अनुसार, समय-संबंधी अल्परोजगार श्रम के अपर्याप्त उपयोग को समझने का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है।

12.5.2 शहरी बेरोजगारी के प्रमुख स्वरूप: शहरी बेरोजगारी केवल पूर्णतः रोजगार-विहीन होने तक सीमित नहीं है। भारतीय शहरों में यह अनेक सामाजिक समूहों और रोजगार संबंधों के माध्यम से दिखाई देती है।

1. शिक्षा पूरी करने के बाद युवाओं को उनकी योग्यता और अपेक्षाओं के अनुरूप रोजगार नहीं मिल पाना। यह समस्या कौशल-असंगति, अनुभव की कमी और सीमित भर्ती अवसरों से जुड़ी हो सकती है।
2. महिलाओं के लिए सुरक्षित कार्यस्थलों, उपयुक्त कार्य-समय, बाल देखभाल सुविधाओं और समान अवसरों की कमी रोजगार प्राप्त करने में बाधा बन सकती है। घरेलू जिम्मेदारियाँ और सामाजिक मान्यताएँ भी उनकी श्रम बाजार में भागीदारी को प्रभावित कर सकती हैं।
3. ग्रामीण और छोटे नगरों से बड़े शहरों में आने वाले व्यक्तियों को नियमित रोजगार, आवास तथा सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। निर्माण और अन्य असंगठित गतिविधियों में काम की अनिश्चितता उनकी आर्थिक असुरक्षा बढ़ाती है।
4. अनेक शहरी श्रमिक दैनिक मजदूरी, अस्थायी अनुबंध, घरेलू काम, सड़क विक्रय और छोटे उद्यमों पर निर्भर रहते हैं। ऐसे श्रमिक हमेशा पूर्णतः बेरोजगार नहीं होते, लेकिन उन्हें नियमित आय, सवेतन अवकाश और सामाजिक सुरक्षा का अभाव हो सकता है। Chen और Raveendran (2012) ने भारत में शहरी रोजगार की प्रवृत्तियों का अध्ययन करते हुए अनौपचारिक रोजगार के महत्त्व को रेखांकित किया है।

5. जब कोई व्यक्ति लंबे समय तक रोजगार प्राप्त नहीं कर पाता, तो उसकी बचत समाप्त हो सकती है, कौशल पुराना पड़ सकता है और नए अवसर प्राप्त करने की संभावना कमजोर हो सकती है। इससे परिवार की आर्थिक कठिनाइयाँ भी बढ़ती हैं।
6. कुछ व्यक्ति नियमित रोजगार के बजाय मांग के अनुसार काम करते हैं। उदाहरण के लिए, दैनिक मजदूर, अस्थायी सेवा प्रदाता और कुछ प्लेटफॉर्म-आधारित श्रमिकों को हर दिन समान मात्रा में काम नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में काम उपलब्ध होने के बावजूद आय में निरंतरता नहीं रहती।

12.6 शहरी बेरोजगारी के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

शहरी बेरोजगारी वर्तमान समय की एक गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्या है। तीव्र नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवास, रोजगार के अवसरों का असमान वितरण तथा श्रम बाजार में कौशल की आवश्यकताओं में परिवर्तन इसके प्रमुख कारण हैं। शहरी क्षेत्रों में उद्योगों, व्यापार, निर्माण, परिवहन, सूचना प्रौद्योगिकी और सेवा क्षेत्र में रोजगार की संभावनाएँ होने के बावजूद सभी व्यक्तियों को उनकी योग्यता एवं कौशल के अनुरूप काम नहीं मिल पाता। विशेष रूप से युवाओं, कम शिक्षित व्यक्तियों, प्रवासी श्रमिकों और असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों को रोजगार प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बेरोजगारी का प्रभाव केवल व्यक्ति की आय तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक संबंधों, मानसिक स्वास्थ्य, जीवन स्तर और शहरी विकास की प्रक्रिया को भी प्रभावित करता है। जब किसी व्यक्ति को लंबे समय तक रोजगार नहीं मिलता, तो उसकी क्रय-शक्ति कम हो जाती है, आर्थिक निर्भरता बढ़ती है और समाज में उसकी स्थिति प्रभावित हो सकती है। Pohlan (2019) के अध्ययन के अनुसार, रोजगार छूटने से सामाजिक एकीकरण, जीवन संतुष्टि, आर्थिक संसाधनों तक पहुँच तथा मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ये प्रभाव लंबे समय तक बने रह सकते हैं और पुनः रोजगार प्राप्त करने के बाद भी पूरी तरह समाप्त होना आवश्यक नहीं है।

- **आर्थिक असुरक्षा एवं गरीबी में वृद्धि:** शहरी बेरोजगारी का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति और परिवार की आय पर पड़ता है। नियमित आय के अभाव में परिवारों को भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन तथा अन्य आवश्यकताओं पर खर्च कम करना पड़ सकता है। महानगरों और बड़े शहरों में मकान का किराया,

बिजली, पानी और दैनिक उपभोग की वस्तुओं की लागत अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण बेरोजगार व्यक्तियों की कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। आर्थिक संकट की स्थिति में अनेक परिवार अपनी बचत का उपयोग करने, ऋण लेने अथवा संपत्ति बेचने के लिए विवश हो सकते हैं। यदि बेरोजगारी लंबे समय तक बनी रहती है, तो परिवार गरीबी के दुष्चक्र में फँस सकता है। बच्चों की शिक्षा बाधित होने, पौष्टिक भोजन में कमी आने और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सीमित होने की आशंका भी बढ़ जाती है। इस प्रकार बेरोजगारी न केवल वर्तमान आय को प्रभावित करती है, बल्कि अगली पीढ़ी के शैक्षिक एवं आर्थिक अवसरों को भी सीमित कर सकती है।

- **जीवन स्तर एवं उपभोग में गिरावट:** रोजगार व्यक्ति को आय के साथ-साथ आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करने की क्षमता प्रदान करता है। बेरोजगारी के कारण परिवारों की क्रय-शक्ति घटने से उनके जीवन स्तर में गिरावट आती है। वे बेहतर आवास, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, मनोरंजन तथा सामाजिक गतिविधियों पर होने वाले खर्च को कम कर सकते हैं। शहरी अर्थव्यवस्था में उपभोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जब बड़ी संख्या में लोगों की आय कम होती है, तो वस्तुओं और सेवाओं की माँग प्रभावित हो सकती है। इसका प्रभाव छोटे दुकानदारों, रेहड़ी-पटरी विक्रेताओं, स्थानीय सेवा प्रदाताओं और सूक्ष्म उद्यमों पर पड़ सकता है। इस प्रकार बेरोजगारी व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाई से आगे बढ़कर स्थानीय अर्थव्यवस्था की गतिविधियों को भी प्रभावित कर सकती है।

- **मानसिक स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक समस्याएँ:** बेरोजगारी का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। रोजगार से व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा के अतिरिक्त सामाजिक पहचान, आत्मसम्मान, दैनिक दिनचर्या और उद्देश्यपूर्ण जीवन का अनुभव मिलता है। इसके विपरीत, लंबे समय तक बेरोजगार रहने से निराशा, तनाव, चिंता, आत्मविश्वास में कमी तथा सामाजिक हीनता की भावना उत्पन्न हो सकती है। Paul और Moser (2009) ने 237 अनुप्रस्थ तथा 87 अनुदैर्ध्य अध्ययनों के मेटा-विश्लेषण में पाया कि रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की तुलना में बेरोजगार व्यक्तियों में मनोवैज्ञानिक परेशानी अधिक थी। अध्ययन में अवसाद, चिंता, मनोदैहिक लक्षणों और आत्मसम्मान से संबंधित समस्याओं के साथ बेरोजगारी का संबंध सामने आया। निष्कर्ष यह भी संकेत देते हैं कि बेरोजगारी का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव सामाजिक सुरक्षा,

आर्थिक विकास और आय असमानता जैसी परिस्थितियों से प्रभावित हो सकता है। विशेष रूप से शिक्षित युवाओं में योग्यता के अनुरूप रोजगार न मिलना हताशा और भविष्य के प्रति अनिश्चितता को बढ़ा सकता है। इसलिए बेरोजगारी से निपटने के लिए रोजगार सृजन के साथ-साथ करियर मार्गदर्शन, कौशल विकास, परामर्श और मानसिक स्वास्थ्य सहायता की व्यवस्था भी आवश्यक है।

- **पारिवारिक संबंधों एवं सामाजिक जीवन पर प्रभाव:** बेरोजगारी परिवार के सदस्यों के बीच संबंधों को प्रभावित कर सकती है। आय के अभाव में घरेलू खर्चों, बच्चों की शिक्षा, आवास और भविष्य की योजनाओं को लेकर तनाव उत्पन्न हो सकता है। परिवार के कमाने वाले सदस्य पर आर्थिक दबाव बढ़ने से पारिवारिक विवादों की संभावना भी बढ़ सकती है। बेरोजगार व्यक्ति स्वयं को परिवार पर आर्थिक बोझ समझने लग सकता है, जिससे उसके आत्मसम्मान और सामाजिक सहभागिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, रोजगार के माध्यम से बनने वाले सामाजिक संपर्क कमजोर हो सकते हैं। व्यक्ति सामाजिक आयोजनों, मित्रों के साथ गतिविधियों और सामुदायिक कार्यक्रमों में भाग लेना कम कर सकता है। इस प्रकार बेरोजगारी सामाजिक अलगाव और अकेलेपन की भावना को बढ़ा सकती है। हालांकि, इन प्रभावों की तीव्रता परिवार के सहयोग, सामाजिक सुरक्षा तथा उपलब्ध सामुदायिक संसाधनों पर निर्भर करती है।
- **सामाजिक असमानता एवं बहिष्करण में वृद्धि:** शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सभी सामाजिक समूहों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं होते। शिक्षा, तकनीकी कौशल, आर्थिक संसाधनों, सामाजिक संपर्कों और भौगोलिक स्थिति में अंतर के कारण रोजगार प्राप्त करने की संभावनाएँ प्रभावित होती हैं। महिलाओं, दिव्यांग व्यक्तियों, प्रवासी श्रमिकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है। बेरोजगारी के कारण आर्थिक रूप से कमजोर परिवार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, डिजिटल संसाधनों, स्वास्थ्य सुविधाओं और व्यावसायिक प्रशिक्षण तक पर्याप्त पहुँच प्राप्त नहीं कर पाते। इससे सामाजिक गतिशीलता बाधित होती है और आय तथा अवसरों की असमानता बनी रह सकती है। Pohlan (2019) ने स्पष्ट किया कि रोजगार छूटने से व्यक्ति की सामाजिक सहभागिता, जीवन संतुष्टि और आर्थिक संसाधनों तक पहुँच प्रभावित हो सकती है। इस प्रकार बेरोजगारी को केवल आर्थिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रिया से जुड़ी समस्या के रूप में भी समझना चाहिए।

- **अपराध एवं सामाजिक असुरक्षा की संभावनाएँ:** लंबे समय तक बेरोजगारी, गरीबी और आर्थिक निराशा कुछ परिस्थितियों में सामाजिक तनाव को बढ़ा सकती हैं। जब व्यक्तियों को वैध आर्थिक अवसरों की कमी का सामना करना पड़ता है, तो वे असुरक्षा, हताशा और सामाजिक उपेक्षा का अनुभव कर सकते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ कुछ व्यक्तियों को जोखिमपूर्ण या गैर-कानूनी गतिविधियों की ओर आकर्षित कर सकती हैं। हालाँकि, बेरोजगारी और अपराध के बीच संबंध को प्रत्यक्ष एवं सार्वभौमिक कारण-परिणाम संबंध नहीं माना जाना चाहिए। अपराध पर सामाजिक परिवेश, असमानता, पारिवारिक परिस्थितियों, शिक्षा, नशे की उपलब्धता और कानून-व्यवस्था सहित अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इसलिए अपराध की रोकथाम के लिए रोजगार के अवसरों के विस्तार, युवाओं के कौशल विकास, सामुदायिक सहभागिता और सामाजिक सुरक्षा को महत्त्व देना आवश्यक है।
- **शहरी अर्थव्यवस्था एवं विकास पर प्रभाव:** शहरी बेरोजगारी शहरों की उत्पादक क्षमता और आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। जब शिक्षित और कुशल व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिलता, तो उनकी क्षमता का समुचित उपयोग नहीं हो पाता। इससे मानव संसाधनों का अपूर्ण उपयोग होता है और संभावित आर्थिक उत्पादन में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त, बेरोजगारी के कारण परिवारों की माँग घटने से छोटे व्यापारों और सेवा क्षेत्र की गतिविधियाँ प्रभावित हो सकती हैं। यदि रोजगार की कमी लंबे समय तक बनी रहती है, तो शहरी क्षेत्रों में आर्थिक असुरक्षा और असमानता बढ़ सकती है। दूसरी ओर, रोजगार के अवसरों का विस्तार, स्थानीय उद्यमिता और कौशल आधारित प्रशिक्षण शहरी अर्थव्यवस्था को अधिक समावेशी बना सकते हैं।
- **प्रवासन एवं अनौपचारिक रोजगार पर प्रभाव:** रोजगार की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे नगरों से बड़े शहरों की ओर प्रवासन शहरी श्रम बाजार को प्रभावित करता है। शहरों में पर्याप्त औपचारिक रोजगार उपलब्ध न होने पर कुछ प्रवासी श्रमिक असंगठित क्षेत्र में कम आय, अस्थायी काम और असुरक्षित परिस्थितियों में काम करने के लिए विवश हो सकते हैं। इस स्थिति में व्यक्ति को नियमित वेतन, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और रोजगार की स्थिरता जैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो पातीं। अनियमित आय के कारण आवास और भोजन की व्यवस्था करना भी कठिन हो सकता है। इसलिए शहरी रोजगार नीति में औपचारिक

रोजगार सृजन के साथ-साथ असंगठित श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा, कौशल उन्नयन और श्रम अधिकारों की रक्षा को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

- **सरकारी संसाधनों एवं कल्याणकारी योजनाओं पर दबाव:** बढ़ती बेरोजगारी से सरकार पर रोजगारपरक योजनाओं, कौशल विकास कार्यक्रमों, सामाजिक सहायता और गरीबी उन्मूलन संबंधी पहलों की आवश्यकता बढ़ सकती है। बेरोजगारी के कारण कर एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों से प्राप्त होने वाले संभावित राजस्व पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में सरकार, स्थानीय निकायों और निजी क्षेत्र के बीच समन्वय आवश्यक है। रोजगार मेलों, अप्रेंटिसशिप, उद्यमिता प्रोत्साहन, डिजिटल कौशल प्रशिक्षण और स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित रोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या को कम करने का प्रयास किया जा सकता है।

12.7 शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान हेतु सरकारी योजनाएँ एवं विकास हस्तक्षेप

शहरी गरीबी और बेरोजगारी समकालीन भारत की जटिल सामाजिक-आर्थिक चुनौतियाँ हैं। नगरीकरण जहाँ औद्योगीकरण, व्यापार, सेवाओं और आर्थिक विकास के नए अवसर उत्पन्न करता है, वहीं इसके असमान विस्तार से आय-विषमता, अनौपचारिक रोजगार, आवासीय असुरक्षा और सामाजिक बहिष्करण जैसी समस्याएँ भी उभरती हैं। शहरों में रोजगार के अवसरों की उपस्थिति के बावजूद प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानजनक, सुरक्षित और स्थायी आजीविका प्राप्त नहीं हो पाती। विशेष रूप से प्रवासी श्रमिक, महिला कामगार, फुटपाथ विक्रेता, निर्माण श्रमिक, दिव्यांग व्यक्ति, बेघर नागरिक और झुग्गी-बस्तियों में रहने वाले परिवार आर्थिक असुरक्षा के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। शहरी गरीबी को केवल आय की कमी के रूप में नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय सेवाओं और निर्णय-निर्माण में भागीदारी तक सीमित पहुँच के रूप में भी समझना आवश्यक है। इसी प्रकार बेरोजगारी का समाधान केवल नौकरी उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं होना चाहिए; इसके अंतर्गत रोजगार की गुणवत्ता, नियमित आय, कौशल का उपयोग, कार्यस्थल की सुरक्षा और सामाजिक संरक्षण भी सम्मिलित होने चाहिए। इस संदर्भ में सरकारी योजनाएँ गरीबी उन्मूलन, आजीविका संवर्धन और समावेशी नगरीय विकास के लिए महत्त्वपूर्ण नीतिगत साधन हैं।

12.7.1 प्रमुख सरकारी योजनाएँ एवं उनका महत्त्व

- **दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (DAY-NULM):** राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन का प्रमुख उद्देश्य शहरी गरीब परिवारों की आजीविका क्षमता को सुदृढ़ करना, कौशल विकास को प्रोत्साहित करना और स्वरोजगार के अवसरों का विस्तार करना रहा है। इस मिशन के अंतर्गत शहरी गरीबों के कौशल प्रशिक्षण, स्वरोजगार, स्वयं सहायता समूहों के गठन, वित्तीय समावेशन तथा शहरी बेघर व्यक्तियों के लिए आश्रय जैसी आवश्यकताओं को संबोधित किया गया। इस योजना का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह शहरी गरीबों को केवल आर्थिक सहायता के लाभार्थी के रूप में नहीं, बल्कि अपनी आजीविका विकसित करने में सक्षम व्यक्तियों के रूप में देखती है। विशेष रूप से महिला स्वयं सहायता समूह सामूहिक बचत, ऋण, सूक्ष्म उद्यम और सामाजिक सहयोग के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को बढ़ावा दे सकते हैं। तथापि, योजना की वर्तमान उपलब्धता और संबंधित घटकों की स्थिति की पुष्टि नवीनतम सरकारी दिशानिर्देशों से की जानी चाहिए।
- **प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर्स आत्मनिर्भर निधि (PM SVANidhi):** शहरी पथ-विक्रेता नगरीय अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। वे दैनिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध कराने, स्थानीय बाजारों को सक्रिय रखने और कम पूँजी में स्वरोजगार के अवसर पैदा करने में योगदान देते हैं। इसके बावजूद उन्हें प्रायः संस्थागत ऋण, सामाजिक सुरक्षा और व्यावसायिक स्थिरता से संबंधित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। PM SVANidhi योजना पथ-विक्रेताओं को कार्यशील पूँजी के लिए ऋण सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शुरू की गई थी। इसका व्यापक महत्त्व अनौपचारिक व्यवसायों को वित्तीय व्यवस्था से जोड़ने, व्यवसाय की निरंतरता बनाए रखने और डिजिटल लेन-देन को प्रोत्साहित करने में है। योजना की पुनर्गठित व्यवस्था में ऋण सहायता की अवधि मार्च 2030 तक बढ़ाई गई है। इस प्रकार, पथ-विक्रेताओं को संस्थागत वित्त, डिजिटल साक्षरता और उपयुक्त व्यावसायिक सुविधाओं से जोड़ना शहरी गरीबी में कमी लाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

- **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY):** कौशल विकास बेरोजगारी और रोजगार के बीच विद्यमान अंतर को कम करने का एक प्रभावी माध्यम है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का उद्देश्य पात्र युवाओं को रोजगारोन्मुख कौशल प्रशिक्षण और प्रमाणन के अवसर प्रदान करना है। बदलती तकनीक, डिजिटल अर्थव्यवस्था और सेवा क्षेत्र के विस्तार ने ऐसे कौशलों की माँग बढ़ाई है जो युवाओं को रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार के लिए भी तैयार कर सकें। हालाँकि, प्रशिक्षण कार्यक्रमों की वास्तविक सफलता केवल प्रशिक्षित युवाओं की संख्या से निर्धारित नहीं होती। इसके लिए आवश्यक है कि प्रशिक्षण स्थानीय उद्योगों की माँग के अनुरूप हो, नियोक्ताओं के साथ संस्थागत संबंध विकसित किए जाएँ तथा प्रशिक्षण के बाद रोजगार, आय और रोजगार की निरंतरता का मूल्यांकन किया जाए। कौशल विकास को अप्रेंटिसशिप, रोजगार परामर्श और उद्यमिता सहायता से जोड़ना इस प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बना सकता है।
- **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY):** सूक्ष्म उद्यम शहरी अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन और परिवारों की आय बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना के माध्यम से पात्र सूक्ष्म उद्यमों को वित्तीय संस्थानों द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाता है। छोटे दुकानदार, सेवा प्रदाता, कारीगर और स्थानीय उत्पादन से जुड़े उद्यमी अपनी व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार इसका लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस योजना का व्यापक उद्देश्य स्वरोजगार को प्रोत्साहन देना तथा छोटे व्यवसायों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करना है। फिर भी ऋण को अपने आप में गरीबी उन्मूलन का पर्याप्त साधन नहीं माना जा सकता। ऋण सहायता के साथ बाजार तक पहुँच, वित्तीय साक्षरता, लेखांकन, डिजिटल भुगतान और व्यावसायिक परामर्श उपलब्ध कराना आवश्यक है, जिससे उद्यम टिकाऊ बन सकें।
- **प्रधानमंत्री आवास योजना–शहरी (PMAY-U 2.0):** सुरक्षित और किफायती आवास शहरी जीवन की बुनियादी आवश्यकता है। आवास की असुरक्षा से परिवारों के स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा और रोजगार की स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। प्रधानमंत्री आवास योजना–शहरी के नए चरण, PMAY-U 2.0, का उद्देश्य पात्र शहरी परिवारों की आवास संबंधी आवश्यकताओं को संबोधित करना है। आवासीय सहायता को व्यापक शहरी विकास नीति के साथ जोड़ना आवश्यक है। इसमें पेयजल, स्वच्छता, सार्वजनिक परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार केंद्रों तक पहुँच को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यदि

आवासीय पुनर्वास के कारण गरीब परिवारों की आजीविका के अवसरों तक पहुँच बाधित होती है, तो आवासीय सुधार के अपेक्षित सामाजिक-आर्थिक लाभ सीमित हो सकते हैं।

- **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP):** प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम सूक्ष्म उद्यमों की स्थापना के माध्यम से स्वरोजगार और रोजगार सृजन को प्रोत्साहित करने वाला महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य पात्र व्यक्तियों को विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र में नए उद्यम स्थापित करने के लिए निर्धारित नियमों के अनुसार वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है। शहरी क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण, मरम्मत सेवाएँ, स्थानीय उत्पादन, डिजिटल सेवाएँ और अन्य सूक्ष्म व्यवसाय इस प्रकार की उद्यमशीलता के संभावित क्षेत्र हो सकते हैं। यह कार्यक्रम रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के साथ-साथ स्थानीय संसाधनों और कौशल के उपयोग को भी प्रोत्साहित कर सकता है। इसकी प्रभावशीलता के लिए उद्यमियों को परियोजना निर्माण, विपणन, वित्तीय प्रबंधन और बाजार विश्लेषण का प्रशिक्षण देना आवश्यक है।
- **स्वच्छ भारत मिशन–शहरी (SBM-U):** स्वच्छता और ठोस अपशिष्ट प्रबंधन शहरी जीवन की गुणवत्ता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं। स्वच्छ भारत मिशन–शहरी का उद्देश्य शहरी स्वच्छता, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और स्वच्छ सार्वजनिक परिवेश को बढ़ावा देना है। इसके अंतर्गत अपशिष्ट पृथक्करण, पुनर्चक्रण और स्वच्छता सेवाओं से संबंधित गतिविधियाँ स्थानीय रोजगार के अवसर भी उत्पन्न कर सकती हैं। विशेष रूप से कचरा संग्रहण, सामग्री पुनर्प्राप्ति और पुनर्चक्रण के क्षेत्र में कार्यरत अनौपचारिक श्रमिकों को सुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ, उपयुक्त उपकरण और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। इससे पर्यावरण संरक्षण और श्रमिक कल्याण के बीच बेहतर समन्वय स्थापित किया जा सकता है।
- **अटल मिशन फॉर रिजुवेनेशन एंड अर्बन ट्रांसफॉर्मेशन (AMRUT):** शहरी जलापूर्ति, सीवरेज और आधारभूत सुविधाओं का विकास गरीबी के बहुआयामी स्वरूप को कम करने में योगदान देता है। AMRUT तथा AMRUT 2.0 जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से शहरी बुनियादी सेवाओं को बेहतर बनाने पर बल दिया गया है। सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता से स्वास्थ्य संबंधी जोखिम तथा परिवारों के अनिवार्य खर्च कम करने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार की परियोजनाओं को स्थानीय श्रमिकों के कौशल विकास, रोजगार के अवसरों और पर्यावरणीय स्थिरता से जोड़ना उपयोगी है। हालाँकि, बुनियादी ढाँचे के निर्माण से

स्वतः स्थायी रोजगार सुनिश्चित नहीं होता; इसके लिए रखरखाव, संचालन और स्थानीय रोजगार नीति का समन्वय आवश्यक है।

12.7.2 सरकारी योजनाओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन: सरकारी योजनाओं की सफलता उनके घोषित उद्देश्यों से आगे बढ़कर वास्तविक लाभार्थियों के जीवन में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करती है। कई बार पात्रता संबंधी जटिलताओं, दस्तावेजों की कमी, डिजिटल साक्षरता के अभाव, स्थानीय स्तर पर जानकारी की कमी और विभागीय समन्वय की समस्याओं के कारण जरूरतमंद परिवार योजनाओं का पूरा लाभ प्राप्त नहीं कर पाते। दूसरी चुनौती रोजगार की स्थिरता है। प्रशिक्षण पूरा कर लेना या ऋण प्राप्त कर लेना अपने आप में गरीबी से बाहर निकलने की गारंटी नहीं है। यदि रोजगार अस्थायी हो, आय अनियमित हो या उद्यम के लिए पर्याप्त बाजार उपलब्ध न हो, तो आर्थिक असुरक्षा बनी रह सकती है। इसी प्रकार आवासीय सहायता तब अधिक प्रभावी होती है जब उसके साथ आजीविका और मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए। अतः सरकारी योजनाओं के मूल्यांकन में निम्नलिखित संकेतकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए:

- ❖ रोजगार की गुणवत्ता: रोजगार की अवधि, नियमितता, कार्यस्थल की सुरक्षा और आय की स्थिरता।
- ❖ आर्थिक सशक्तीकरण: परिवार की वास्तविक आय, बचत, ऋण चुकाने की क्षमता और वित्तीय सेवाओं तक पहुँच।
- ❖ सामाजिक समावेशन: महिलाओं, प्रवासी श्रमिकों, दिव्यांग व्यक्तियों और अन्य वंचित समूहों की भागीदारी।
- ❖ सेवाओं तक पहुँच: आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, स्वच्छता और सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धता।
- ❖ पारदर्शिता एवं जवाबदेही: लाभार्थियों की पहचान, शिकायत निवारण और योजनाओं के परिणामों का नियमित मूल्यांकन।
- ❖ इस दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि योजनाओं का वास्तविक उद्देश्य केवल लाभ वितरित करना नहीं, बल्कि शहरी गरीबों की क्षमताओं, अवसरों और सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ करना होना चाहिए।

12.7.3 शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान हेतु विकास हस्तक्षेप: सरकारी योजनाएँ आवश्यक नीतिगत आधार प्रदान करती हैं, लेकिन शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी की जटिल समस्याओं के समाधान के लिए स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप समन्वित विकास हस्तक्षेप भी आवश्यक हैं। विकास हस्तक्षेप से आशय उन योजनाबद्ध नीतियों, कार्यक्रमों और सामुदायिक गतिविधियों से है जिनके माध्यम से आर्थिक अवसरों का विस्तार, सामाजिक असमानताओं में कमी और नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। एक प्रभावी विकास दृष्टिकोण को तीन परस्पर संबंधित उद्देश्यों पर केंद्रित होना चाहिए—उत्पादक रोजगार का सृजन, सामाजिक सुरक्षा का विस्तार और जीवन की बुनियादी परिस्थितियों में सुधार। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण हैं:

- **कौशल विकास एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा:** शहरी बेरोजगारी का एक प्रमुख कारण उपलब्ध कौशल और श्रम बाजार की आवश्यकताओं के बीच असंगति हो सकता है। इसलिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण को स्थानीय आर्थिक गतिविधियों से जोड़ना आवश्यक है। कंप्यूटर संचालन, डिजिटल सेवाएँ, इलेक्ट्रिकल कार्य, प्लंबिंग, खुदरा प्रबंधन, पर्यटन, आतिथ्य, स्वास्थ्य-सहायक सेवाएँ तथा तकनीकी व्यवसायों में रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जा सकता है। प्रशिक्षण संस्थानों को स्थानीय उद्योगों, सेवा प्रदाताओं और नगर निकायों के साथ सहयोग स्थापित करना चाहिए। प्रशिक्षण के साथ अप्रेंटिसशिप, रोजगार परामर्श और उद्यमिता विकास को शामिल करने से युवाओं को रोजगार के लिए बेहतर तैयारी मिल सकती है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सफलता का आकलन प्रशिक्षण पूरा करने वाले व्यक्तियों की संख्या के अतिरिक्त रोजगार प्राप्ति, आय में सुधार और रोजगार की निरंतरता के आधार पर किया जाना चाहिए।
- **स्वरोजगार एवं उद्यमिता संवर्धन:** स्वरोजगार शहरी गरीबी कम करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम हो सकता है, विशेष रूप से उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें औपचारिक क्षेत्र में नियमित रोजगार उपलब्ध नहीं होता। स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित किराना दुकानें, सिलाई-कढ़ाई, खाद्य प्रसंस्करण, मरम्मत सेवाएँ, घरेलू उत्पाद, डिजिटल सेवा केंद्र और पुनर्चक्रण संबंधी उद्यम आजीविका के अवसर पैदा कर सकते हैं। उद्यमिता विकास के लिए वित्तीय सहायता के साथ व्यावसायिक परामर्श, बाजार सर्वेक्षण, लेखांकन प्रशिक्षण और डिजिटल विपणन की सुविधा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। छोटे उद्यमों को स्थानीय बाजारों, स्वयं

सहायता समूहों, सहकारी संस्थाओं और डिजिटल वाणिज्य मंचों से जोड़ना उनकी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ा सकता है।

- **महिला सशक्तीकरण एवं आर्थिक भागीदारी:** शहरी गरीबी का प्रभाव महिलाओं पर कई बार अधिक गंभीर होता है, क्योंकि उन्हें घरेलू जिम्मेदारियों, असमान पारिश्रमिक, सुरक्षित परिवहन की कमी और रोजगार के सीमित अवसरों जैसी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। महिला सशक्तीकरण के लिए कौशल प्रशिक्षण, स्वयं सहायता समूह, सूक्ष्म उद्यम, वित्तीय साक्षरता और संस्थागत ऋण तक पहुँच सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसके साथ सस्ती बाल देखभाल सेवाएँ, सुरक्षित कार्यस्थल, कार्यस्थल पर उत्पीड़न के विरुद्ध प्रभावी व्यवस्था तथा रोजगार के समान अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ने से परिवार की आय, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों और घरेलू आर्थिक सुरक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।
- **प्रवासी श्रमिकों एवं अनौपचारिक क्षेत्र का संरक्षण:** प्रवासी श्रमिक शहरी अर्थव्यवस्था में निर्माण, परिवहन, घरेलू सेवाओं, विनिर्माण और छोटे व्यवसायों के संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके बावजूद उन्हें अनियमित रोजगार, असुरक्षित आवास, सामाजिक सुरक्षा के अभाव और सार्वजनिक सेवाओं तक सीमित पहुँच जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए श्रमिक पंजीकरण, पोर्टेबल सामाजिक सुरक्षा लाभ, सुलभ स्वास्थ्य सेवाएँ, किफायती किराये के आवास और रोजगार संबंधी सूचना केंद्र विकसित किए जाने चाहिए। अनौपचारिक श्रमिकों को श्रम अधिकारों, उपलब्ध योजनाओं और शिकायत निवारण प्रक्रियाओं की जानकारी देना भी आवश्यक है। इस प्रकार शहरी विकास को केवल आर्थिक उत्पादकता नहीं, बल्कि श्रमिकों की गरिमा और सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी देखा जाना चाहिए।
- **किफायती आवास एवं बुनियादी सुविधाओं का विकास:** आवासीय असुरक्षा गरीबी के दुष्चक्र को बनाए रखने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। असुरक्षित आवास, स्वच्छता की कमी, दूषित पेयजल और परिवहन की अपर्याप्त व्यवस्था परिवारों के स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। इसलिए किफायती आवास, पेयजल, स्वच्छता, सार्वजनिक परिवहन, ऊर्जा और डिजिटल संपर्क जैसी

सुविधाओं का विस्तार आवश्यक है। झुग्गी-बस्तियों के सुधार और पुनर्वास में प्रभावित समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। विशेष रूप से पुनर्वास की योजना बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि परिवार अपने रोजगार, विद्यालयों, बाजारों और स्वास्थ्य सेवाओं से अनावश्यक रूप से दूर न हो जाएँ।

- **स्वयं सहायता समूह एवं सामुदायिक भागीदारी:** सामुदायिक संगठन शहरी गरीबों को सामूहिक रूप से समस्याओं की पहचान करने, संसाधनों का उपयोग करने और विकास कार्यक्रमों में भागीदारी करने के अवसर प्रदान करते हैं। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से बचत, छोटे ऋण, उद्यम विकास और सामूहिक विपणन को बढ़ावा दिया जा सकता है। वार्ड स्तर पर समुदाय आधारित संस्थाएँ स्थानीय आवश्यकताओं का आकलन करने, पात्र लाभार्थियों की पहचान करने और सार्वजनिक सेवाओं की निगरानी में सहायता कर सकती हैं। गैर-सरकारी संगठनों, शिक्षण संस्थानों और स्थानीय प्रशासन के सहयोग से कौशल विकास, करियर मार्गदर्शन, वित्तीय साक्षरता और सामाजिक जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए जा सकते हैं।
- **सामाजिक सुरक्षा एवं मानसिक-सामाजिक कल्याण:** बेरोजगारी केवल आर्थिक समस्या नहीं है; इससे व्यक्ति के आत्मसम्मान, पारिवारिक संबंधों और मानसिक-सामाजिक कल्याण पर भी प्रभाव पड़ सकता है। दीर्घकालिक बेरोजगारी आर्थिक तनाव, सामाजिक अलगाव और भविष्य के प्रति अनिश्चितता को बढ़ा सकती है। इसलिए रोजगार सहायता के साथ करियर परामर्श, सामुदायिक सहयोग, मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता और आवश्यकतानुसार परामर्श सेवाओं को जोड़ना उपयोगी है। इसी प्रकार वृद्धजनों, दिव्यांग व्यक्तियों, बेघर नागरिकों और अत्यंत कमजोर परिवारों के लिए सामाजिक सुरक्षा तथा आवश्यक सेवाओं की सुलभ व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए। यह दृष्टिकोण शहरी विकास को मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय और समान अवसरों से जोड़ता है।
- **हरित अर्थव्यवस्था एवं स्थानीय रोजगार सृजन:** पर्यावरणीय स्थिरता और रोजगार सृजन को परस्पर पूरक बनाया जा सकता है। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, पुनर्चक्रण, जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन, शहरी वनीकरण, ऊर्जा दक्षता और सार्वजनिक स्थलों के रखरखाव जैसी गतिविधियाँ स्थानीय रोजगार के अवसर उत्पन्न कर सकती हैं। इन क्षेत्रों में प्रशिक्षण और सुरक्षित कार्य परिस्थितियों के साथ रोजगार विकसित करने से शहरी

पर्यावरण में सुधार तथा आर्थिक अवसरों का विस्तार दोनों संभव हैं। हालांकि, ऐसे कार्यक्रमों की सफलता के लिए वित्तीय स्थिरता, तकनीकी क्षमता और दीर्घकालिक संचालन व्यवस्था आवश्यक है।

- **स्थानीय शासन, सार्वजनिक-निजी सहयोग एवं संस्थागत समन्वय:** शहरी गरीबी और बेरोजगारी के प्रभावी समाधान के लिए नगर निकायों, राज्य सरकार, केंद्र सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों, उद्योगों और समुदाय के बीच समन्वय आवश्यक है। विभिन्न संस्थाओं के अलग-अलग कार्यक्रमों को स्थानीय विकास योजना के अंतर्गत जोड़ने से संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जा सकता है। वार्ड स्तर पर सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण, रोजगार आवश्यकताओं का आकलन, सार्वजनिक परामर्श और सामाजिक अंकेक्षण योजनाओं की पारदर्शिता बढ़ा सकते हैं। सार्वजनिक-निजी सहयोग के माध्यम से कौशल प्रशिक्षण, अप्रेंटिसशिप, बाजार संपर्क और उद्यमिता को प्रोत्साहित किया जा सकता है, बशर्ते लाभार्थियों के हितों और सार्वजनिक जवाबदेही को प्राथमिकता दी जाए।

12.7.4 विकास हस्तक्षेपों का निगरानी एवं प्रभाव मूल्यांकन: विकास कार्यक्रमों की सफलता का आकलन केवल व्यय, लाभार्थियों की संख्या या निर्मित परिसंपत्तियों के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है। यह देखना भी आवश्यक है कि कार्यक्रमों ने परिवारों की आय, रोजगार की स्थिरता, सामाजिक सुरक्षा और जीवन की गुणवत्ता में कितना परिवर्तन किया है। प्रभाव मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित संकेतकों का उपयोग किया जा सकता है:

- रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का अनुपात तथा रोजगार की अवधि।
- परिवारों की आय, बचत और आर्थिक असुरक्षा में परिवर्तन।
- महिलाओं और वंचित समूहों की आर्थिक भागीदारी।
- आवास, स्वास्थ्य, स्वच्छता और सामाजिक सुरक्षा तक पहुँच।
- लाभार्थियों की संतुष्टि तथा शिकायतों के निवारण की प्रभावशीलता।
- सरकारी संसाधनों के उपयोग की पारदर्शिता और कार्यक्रमों की लागत-प्रभावशीलता।

इस प्रकार नियमित निगरानी और प्रमाण-आधारित मूल्यांकन के माध्यम से विकास कार्यक्रमों में आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं तथा सार्वजनिक संसाधनों का अधिक प्रभावी उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

12.7.5 उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान: उत्तराखंड में शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान के लिए स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, मौसमी पर्यटन, छोटे व्यापार, प्रवास और सेवा क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। हल्द्वानी, देहरादून, हरिद्वार, रुद्रपुर और अन्य नगरीय केंद्रों में कौशल विकास, खुदरा व्यापार, पर्यटन, परिवहन, खाद्य प्रसंस्करण, डिजिटल सेवाओं तथा स्थानीय उद्यमिता को प्रोत्साहित किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों से रोजगार की तलाश में आने वाले युवाओं और परिवारों के लिए करियर मार्गदर्शन, कौशल प्रशिक्षण, रोजगार सूचना और स्वरोजगार परामर्श उपयोगी हो सकते हैं। स्थानीय उत्पादों, पारंपरिक शिल्प, खाद्य पदार्थों और पर्यटन सेवाओं को बाजार से जोड़ने के प्रयास भी आजीविका के अवसर बढ़ा सकते हैं। उत्तराखंड के संदर्भ में निम्नलिखित हस्तक्षेप विशेष रूप से उपयोगी हो सकते हैं:

- ❖ शहरी युवाओं के लिए स्थानीय रोजगार की माँग पर आधारित कौशल प्रशिक्षण।
- ❖ महिलाओं और स्वयं सहायता समूहों के लिए उद्यमिता एवं विपणन सहायता।
- ❖ प्रवासी श्रमिकों के लिए सुलभ आवास, सामाजिक सुरक्षा और रोजगार सूचना।
- ❖ स्थानीय उत्पादों एवं पर्यटन आधारित सूक्ष्म उद्यमों को प्रोत्साहन।
- ❖ नगर निकायों, विश्वविद्यालयों, उद्योगों और गैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोग।
- ❖ आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के लिए वित्तीय साक्षरता एवं करियर परामर्श।

इन पहलों को संबंधित सरकारी योजनाओं, स्थानीय विकास प्राथमिकताओं और उपलब्ध संसाधनों के साथ समन्वित किया जाना चाहिए। इससे शहरी विकास को स्थानीय आजीविका, सामाजिक समावेशन और आर्थिक आत्मनिर्भरता से जोड़ने में सहायता मिल सकती है।

12.8 सारांश

शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी भारत की प्रमुख सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ हैं, जो तीव्र नगरीकरण, ग्रामीण-शहरी प्रवास, आर्थिक असमानता, कौशल की कमी तथा रोजगार के असमान वितरण से संबंधित हैं। शहरी गरीबी केवल आय की कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा और सम्मानजनक जीवन के अवसरों का अभाव भी सम्मिलित है। इसे निरपेक्ष, सापेक्ष एवं बहुआयामी दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है। शहरी बेरोजगारी के प्रमुख प्रकारों में खुली, शिक्षित, संरचनात्मक, चक्रीय, घर्षणात्मक, मौसमी एवं तकनीकी बेरोजगारी शामिल हैं। अल्परोजगार और अनौपचारिक क्षेत्र में असुरक्षित कार्य भी शहरी श्रम बाजार की महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। बेरोजगारी के कारण आर्थिक असुरक्षा, जीवन-स्तर में गिरावट, मानसिक तनाव, पारिवारिक समस्याएँ तथा सामाजिक बहिष्करण बढ़ सकते हैं। शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान के लिए DAY-NULM, PM SVANidhi, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना तथा शहरी बुनियादी सुविधाओं से संबंधित कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण हैं। इनके साथ कौशल प्रशिक्षण, स्वरोजगार, महिला स्वयं सहायता समूहों, किफायती आवास, सामाजिक सुरक्षा और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देना आवश्यक है। उत्तराखंड में पर्यटन, स्थानीय उत्पादों, खाद्य प्रसंस्करण, खुदरा व्यापार और डिजिटल सेवाओं के माध्यम से आजीविका के अवसर विकसित किए जा सकते हैं। योजनाओं की प्रभावशीलता के लिए नियमित निगरानी, पारदर्शिता, लाभार्थियों की भागीदारी और परिणामों का मूल्यांकन जरूरी है। इस प्रकार, समन्वित एवं समावेशी विकास हस्तक्षेप शहरी गरीबी और बेरोजगारी को कम करने तथा सतत शहरी विकास को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

12.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

- ❖ शहरी गरीबी की अवधारणा, प्रमुख विशेषताओं एवं विभिन्न आयामों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
- ❖ शहरी गरीबी के प्रमुख कारणों एवं निर्धारकों का विश्लेषण कीजिए।
- ❖ शहरी बेरोजगारी के अर्थ, प्रकार एवं प्रमुख स्वरूपों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
- ❖ शहरी बेरोजगारी के सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों की विवेचना कीजिए।

- शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण कीजिए।
- शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान में सरकारी योजनाओं की भूमिका का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
- शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी के समाधान हेतु आवश्यक प्रमुख विकास हस्तक्षेपों की चर्चा कीजिए।
- समावेशी एवं सतत शहरी विकास की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख उपायों का वर्णन कीजिए।
- शहरी विकास कार्यक्रमों की निगरानी एवं प्रभाव मूल्यांकन की प्रक्रिया और महत्त्व समझाइए।
- उत्तराखंड के संदर्भ में शहरी गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्याओं तथा उनके समाधान के उपायों की विवेचना कीजिए।

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Amis, P. (1995). Employment creation or environmental improvements: A literature review of urban poverty and policy in India. Habitat International, 19(4), 485–497. https://doi.org/10.1016/0197-3975(95)00041-D
- Chen, M. A., & Raveendran, G. (2012). Urban employment in India: Recent trends and patterns. The Indian Journal of Labour Economics, 6(2). https://doi.org/10.1177/097380101200600204
- Coelho, K., & Sood, A. (2022). Urban studies in India across the millennial turn: Histories and futures. Urban Studies, 59(8), 1551–1568. https://doi.org/10.1177/00420980211056773
- Das, K. S. (2025). Youth unemployment and associated factors in India. Children and Youth Services Review, 169, Article 108081. https://doi.org/10.1016/j.childyouth.2024.108081
- Ghosh, S., Mandal, B., & Gupta, K. (2018). Economic liberalization, the informal sector, and urban unemployment: A theoretical analysis. Review of Urban & Regional Development Studies. https://doi.org/10.1111/rurd.12088
- International Labour Organization. (2013). Resolution concerning statistics of work, employment and labour underutilization. https://www.ilo.org/resource/labour-force

- Jamadar, M. M., & Sridhar, K. S. (2024). Urban poverty beyond 'slums': Mapping its multidimensionality. Area Development and Policy, 9(4), 518–537. https://doi.org/10.1080/23792949.2024.2352550
- Kruse, B. (1997). Employment generating programmes in the urban context of India: The Nehru Rozgar Yojana. IDS Bulletin, 28(2), 86–93. https://doi.org/10.1111/j.1759-5436.1997.mp28002009.x

- Kruse, B. (1997). Employment generating programmes in the urban context of India: The Nehru Rozgar Yojana. IDS Bulletin, 28(2), 86–93. https://doi.org/10.1111/j.1759-5436.1997.mp28002009.x

- Kundu, A. (2000). Urban poverty in India: Issues and perspectives in development. Social Change, 30(1–2), 8–32. https://doi.org/10.1177/004908570003000202
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (n.d.). Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation (AMRUT). Government of India. https://amrut.gov.in
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (n.d.). Deendayal Antyodaya Yojana–National Urban Livelihoods Mission. Government of India. https://nulm.gov.in
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (n.d.). Pradhan Mantri Awas Yojana–Urban 2.0. Government of India. https://pmay-urban.gov.in
- Ministry of Housing and Urban Affairs. (n.d.). Pradhan Mantri Street Vendor's AtmaNirbhar Nidhi (PM SVANidhi). Government of India. https://pmsvanidhi.mohua.gov.in
- Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises. (n.d.). Prime Minister's Employment Generation Programme (PMEGP). Government of India. https://www.kviconline.gov.in/pmegpeportal
- Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. (n.d.). Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana. Government of India. https://www.msde.gov.in
- Mohanty, S. K., & Vasishtha, G. (2021). Contextualizing multidimensional poverty in urban India. Poverty & Public Policy, 13(3), 234–253. https://doi.org/10.1002/pop4.314
- Paul, K. I., & Moser, K. (2009). Unemployment impairs mental health: Meta-analyses. Journal of Vocational Behavior, 74(3), 264–282. https://doi.org/10.1016/j.jvb.2009.01.001
- Paul, K. I., Scholl, H., Moser, K., Zechmann, A., & Batinic, B. (2023). Employment status, psychological needs, and mental health: Meta-analytic findings concerning the latent deprivation model. Frontiers in Psychology, 14, Article 1017358. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2023.1017358
- Pohlan, L. (2019). Unemployment and social exclusion. Journal of Economic Behavior & Organization, 164, 273–299. https://doi.org/10.1016/j.jebo.2019.06.006

- Rath, A. (2022). Urban poverty and vulnerability in global South: An alternative multidimensional framework for measurement and targeting. Regional Science Policy & Practice, 14(2), 376–395. https://doi.org/10.1111/rsp3.12511
- Roy, D., Saroj, S., & Pradhan, M. (2022). Nature of employment and outcomes for urban labor: Evidence from the latest labor force surveys in India. Indian Economic Review, 57(1), 165–221. https://doi.org/10.1007/s41775-022-00131-2
- Sen, A. (1999). Development as freedom. Alfred A. Knopf.
- Tandel, V., Hiranandani, K., & Kapoor, M. (2019). What's in a definition? A study on the suitability of the current urban definition in India through its employment guarantee programme. Journal of Asian Economics, 60, 69–84. https://doi.org/10.1016/j.asieco.2018.11.001
- Townsend, P. (1979). Poverty in the United Kingdom: A survey of household resources and standards of living. University of California Press. https://doi.org/10.1525/9780520325760
- United Nations Human Settlements Programme. (2020). World cities report 2020: The value of sustainable urbanization. United Nations Human Settlements Programme. https://unhabitat.org/wcr/2020/
- United Nations Human Settlements Programme. (2022). World cities report 2022: Envisaging the future of cities. United Nations Human Settlements Programme. https://unhabitat.org/wcr/2022/
- United Nations Human Settlements Programme. (2024). World cities report 2024: Cities and climate action. United Nations Human Settlements Programme. https://unhabitat.org/world-cities-report-2024-cities-and-climate-action

इकाई 13. अनुसूचित जातियों का विकास

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जाति व्यवस्था की अवधारणा

13.4 अनुसूचित जाति के सम्बन्ध में संवैधानिक और विधिक प्रावधान

13.4.1.अनुसूचित जातियों के परिभाषा

13.4.2 सामाजिक सुरक्षा उपाय

13.4.2.1.अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17)

13.4.2.2 भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15)

13.4.2.3 अनुच्छेद 16(4)

13.4.2.4 अनुच्छेद 16(4A)

13.4.3 शोषण के विरुद्ध अधिकार

13.4.4 अनुच्छेद 335

13.4.5 विधानमंडलों में आरक्षण

13.4.5 विधानमंडलों में आरक्षण

13.4.6 अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय आयोग (अनुच्छेद 338)

13.4.7 अनुच्छेद 38

13.4.8 अनुच्छेद 46

13.4.9 नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (पीसीआर अधिनियम)- 1955

13.4.10 एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

13.5 अनुसूचित जातियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति

13.6 अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में डॉ आंबेडकर के विचार

13.7 अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में प्रमुख स्कीम एवं योजनाएँ

13.7.1.अनुसूचित जातियों के लिए पोस्ट मैट्रिक स्कॉलरशिप

13.7.2.अनुसूचित जाति एवं अन्य के लिए प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना

13.7.3 अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय फ़ेलोशिप (NFSC)

13.7.4 टॉप क्लास एजुकेशन स्कॉलरशिप स्कीम (SC छात्रों के लिए)

13.7.5 बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना

13.7.6 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम (NSFDC)-

13.7.7 स्टैंड उप इंडिया(Stand-Up India)-

13.7.8 नेशनल एससी-एसटी हब (NSSH)-

13.7.9 अंबेडकर सोशल इनोवेशन इनक्यूबेशन मिशन (ASIIM)-

13.7.10 क्रेडिट एन्हांसमेंट गारंटी योजना

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.9 निष्कर्ष

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्न का उत्तर

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.13 सन्दर्भ सूची

1.0 प्रस्तावना

यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि किसी व्यक्ति के जन्म के आधार पर उसको भेदभाव और अपमान का सामना करना पड़ता है। यह भेदभाव जीवन के हर क्षेत्र में उसके साथ होता था चाहे वो शिक्षा पाना हो या रोजगार पाना हो । परंपरागत रूप से हिंदू धर्म में एक सामाजिक स्तरीय व्यवस्था पाई जाती थी जिसे जाति व्यवस्था कहा जाता है। परंपरागत रूप से इस व्यवस्था में 4 जातियां पाई जाती थी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके अलावा एक वर्ग ऐसा भी होता है जो इन चारों जातियों से बाहर था जिसे अछूत कहा जाता था। यही अछूत जाती सदियों से भेदभाव और गरीबी झेलती रही। संविधान में इनके लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया है और इनके लिए विशेष प्रावधान किए गए है। डॉ अम्बेडकर जो कि प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे उन्होंने कहा था बिना सामाजिक लोकतंत्र लाए बिना राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता।स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक प्रावधानों ,नीतियों और योजनाओं के निरन्तर प्रयास से भेदभाव और गरीबी को खत्म करने का प्रयास किया गया है लेकिन अभी भी एक लंबी यात्रा तय करनी है। अनुसूचित जातियों के

विकास के संदर्भ में देखा जाए तो इनके विकास का मतलब है इनके सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव लाना। सामाजिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव तब होगा जब इनके साथ सामाजिक भेदभाव में कमी आएगी एवं समतापूर्ण व्यवहार में बढ़ोत्तरी होगी। राजनीतिक सकारात्मक बदलाव तब होगा जब इस समाज के लोगों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व में बढ़ोत्तरी होगी और इनके अंदर स्वतंत्र रूप से बिना किसी दवाब के खुद के नेता को चुनने की क्षमता में बढ़ोत्तर होगी। भारत एक विकासशील देश यहां पर आर्थिक असमानता और गरीबी लम्बे समय से रही है। एक समस्या भारत में यह देखने को मिलती है अगर आर्थिक वृद्धि पर ज्यादा ध्यान दिया जाए तो उससे आर्थिक असमानता बढ़ती है और अगर आर्थिक असमानता को खत्म करने का प्रयास किया जाता है तो उससे आर्थिक वृद्धि पर असर पड़ता है। भारत के सामने एक चुनौती यह है कि कैसे सम्मिलित विकास किया जाए जिससे दोनों लक्ष्यों को साधा जाए।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत

1. भारत में जाति व्यवस्था को समझ पाएंगे

2. अनुसूचित जातियों के लिए भारतीय संविधान में क्या क्या प्रावधान है इसको समझ पाएंगे

3. अनुसूचित जातियों के लिए चलाई जाने वाली विभिन्न स्कीम के संदर्भ में समझ पाएंगे

4. अनुसूचित जातियों के सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन का कारण जान पाएंगे

13.2 जाति व्यवस्था की अवधारणा

हिंदू समाज में जाति जन्म से तय होती है। परंपरागत रूप से 4 बड़ी जातिया मानी जाती है- ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण वर्ग शिक्षक और पुरोहित माने जाते थे इनको समाज में सबसे उच्च दर्जा प्राप्त था। क्षत्रिय योद्धा और शासक माने जाते थे। वैश्य वर्ग के लोग व्यापारी माने जाते थे। शूद्र लोग परंपरागत रूप से मजदुर वर्ग मन जाता था। इन चार जातियों के अलावा एक वर्ग ऐसा भी था जो इन चार जातियों से बाहर था जिन्हें अछूत माना जाता था। इन अछूत लोगों को अशुद्ध माना जाता था अर्थात इनके साथ खान पान शादी विवाह का संबंध वर्जित था। हिंदू धर्म के अनुसार जन्म और मरण का एक चक्र होता है कोई व्यक्ति अगर निम्न जाति में जन्म लिया है तो यह उसके पिछले जन्म के बुरे कर्मो का परिणाम है वही किसी व्यक्ति के व्यक्ति के उच्च जाति में जन्म लेना पिछले जन्म के अच्छे कर्मो का परिणाम है। परंपरागत रूप से यह माना जाता था कि कोई निम्न जाति का व्यक्ति अगर उच्च कार्य करे या उच्च जाति का व्यक्ति निम्न कार्य करे तो यह गलत है। व्यक्ति को अपने धर्म पालन के तहत खुद को दिए गए कार्य करना चाहिए। दलित जाति खुद को उच्च जाति से कमतर नहीं समझती थी। ऐतिहासिक रूप से दलितों की 2 प्रकार की सोच देखने को मिलती है।[2]

1.पहली सोच के अनुसार दलित जाति व्यवस्था को पूर्ण रूप से नहीं नकारते है लेकिन वे अपनी जाति का नीचा स्थान नहीं मानते है।[2]
2. दूसरी सोच तहत दलित ब्राह्मण के समान होने का दावा करते थे लेकिन ब्राह्मण बनाना नहीं चाहते थे। वे लोग जाति की पवित्रता को बचाना चाहते थे।[2]
समय के साथ ये जातियां जिन्हें निम्न समझा जाता था वे एकजुद होकर संघ का निर्माण करने लगी। शुरुआत में इन जातियों का उद्देश्य सरकार द्वारा खुद को उच्च वर्ण में दर्ज कराना था लेकिन समय के साथ सामाजिक और धार्मिक मांगो से आगे बढ़कर आर्थिक,नौकरी , शिक्षा और राजनीतिक मांग करने लगे।[2]

इन संघों के सामने एक दुविधा ये बनी रही कि निम्नलिखित दो मार्गों में से किस मार्ग का अनुसरण किया जाए।[2]

1. पहला मार्ग ये था कि क्षेत्र के भीतर कई जातियों से मिलकर एक राजनीतिक शक्ति का निर्माण किया जाए। इसको ऊर्ध्वाधर एकता के रूप में भी समझा जा सकता है। दक्षिण पश्चिम भारत में ज्योतिबा फुले, एम.सी. राजाह और रामास्वामी नायकर जैसे नेताओं के प्रभाव में आकर गैर उच्च जातियों ने खुद को भारत की मूल निवासी बताया और उच्च जातियों को आर्यन बताया जो कि उत्तर से भारत आए थे। इस मार्ग का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक एकता को स्थापित करना था।[2]

2. देश के अलग अलग हिस्से में अपनी ही जाति के लोगों के साथ जुड़कर जाति की शुद्धता को बनाए रखते हुए 'संस्कृतिकरण' के द्वारा वर्ण व्यवस्था में स्तरीकरण में ऊंचा दर्जा प्राप्त करने की कोशिश करना। इस प्रकार के मार्ग का अनुसरण हमें उत्तर भारत में देखने को मिलता है।इस मार्ग का अनुसरण करके मुख्य रूप से सामाजिक दर्जा सुधारने का प्रयास किया जाता है।[2]

भारत के संविधान निर्माताओं ने यह बात मानी कि 'अछूत' माने जाने वाली जातियों से साथ लंबे समय से भेदभाव जिसके वजह से उनकी सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक स्थिति निम्न स्तर पर पहुंच गई है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर उन्होंने संविधान में विशेष प्रावधान किए। इन विशेष प्रावधानों में आरक्षण एक विशेष प्रावधान था जिसके तहत इनको संसद ,विधानसभा, नगरपालिका, पंचायत , सरकारी नौकरियों और सरकारी शिक्षण संस्थान में आरक्षण प्रदान किया गया। संविधान में 'अछूत' माने जाने वाली जातियों के लिए अनुसूचित जाति का प्रयोग किया गया। जिनकी सूची 341 के तहत तैयार की जाती है।[2]

13.4 अनुसूचित जाति के सम्बन्ध में संवैधानिक और विधिक प्रावधान

1947 में मिली स्वतंत्रता एवं 1950 में गणतंत्र की स्थापना सिर्फ शासकीय क्रांति नहीं थी बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति भी थी। संविधान निर्माता इस बात से भलीभाँति अवगत थे कि जाति व्यवस्था के तहत समाज के एक विशेष वर्ग को संपत्ति,शिक्षा, सामाजिक समानता एवं आर्थिक अवसर जैसी आवश्यकता से वंचित रखा गया जो कि गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए बहुत आवश्यक है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुसूचित जाति के लोगों को गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिये संविधान निर्माताओं ने संविधान में इनके लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए। अनुसूचित जाति के लिए संविधान में उल्लेखित प्रावधान निम्नलिखित है।

13.4.1 अनुसूचित जातियों के परिभाषा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 एवं अनुच्छेद 366(24) में अनुसूचित जातियों को पहचानने के संबंध में प्रावधान है। अनुच्छेद 341(1) के अनुसार किसी राज्य और राज्य संघ में कौन कौन सी जाति अनुसूचित जाति कहलाएगी इसकी सूची सार्वजनिक रूप से राष्ट्रपति द्वारा जारी की जाती है अगर बात राज्य की है तो राष्ट्रपति ऐसी सूची जारी करने से पहले राज्य के राज्यपाल से परामर्श लेने के उपरान्त की सूची जारी करता है क्योंकि कोई जाति किसी राज्य में अनुसूचित जाति हो सकती है तो किसी राज्य में वही जाति अनुसूचित नहीं हो सकती है। अनुच्छेद 341(2) के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी अनुसूचित जाति की सूची में संसद कानून के द्वारा संशोधन करके किसी जाति का नाम जोड़ अथवा हटा भी सकती है। अनुच्छेद 341 में दिए गए उपबंध के अलावा अनुच्छेद 341 के तहत जारी की गई सूची में किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 366(24) के अनुसार अनुसूचित जाति वही होती है जिन्हें अनुच्छेद 341 के तहत इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जाति माना जाता है।

13.4.2 सामाजिक सुरक्षा उपाय

13.4.2.1.अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17)

यह अनुच्छेद यह स्पष्ट करता है कि अस्पृश्यता समाप्त की जाती है और इसका किसी भी रूप में पालन पूर्ण रूप से प्रतिबंधित किया जाता है। अस्पृश्यता संबंधित किसी भी प्रकार की गतिविधि दंडनीय अपराध है और अगर कोई व्यक्ति अस्पृश्यता संबंधी कृत जैसे किसी को अछूत समझता है, किसी की जाति के वजह से किसी के साथ अलग व्यवहार करता है,किसी जाति के व्यक्ति को समाज के सामान्य कार्यो के जगहो या अवसरों से अलग रखता है।

13.4.2.2 भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15)

अनुच्छेद 15 के अनुसार "राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश,जाति,लिंग,जन्मस्थान या इनमें से किसी भी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।" अनुच्छेद15(2) के अनुसार राज्य निधि से बने एवं सम्मान उपयोग के लिए समर्पित सार्वजनिक स्थलों तक नागरिको की पहुँच को धर्म,मूलवंश,जाति,लिंग,जन्मस्थान और इनमें से किसी आधार पर बाधित नहीं किया जाएगा।अनुच्छेद 15(4) राज्यों को अधिकार है कि वह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े नागरिको के वर्गों की उन्नति के लिए विशेष उपाय कर सके।

13.4.2.3 अनुच्छेद 16(4)- राज्यों को ये अधिकार देता है कि वह सरकारी नौकरियों अर्थात है राज्य की सेवाओं में उन पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करें जिन्हें राज्य की सेवा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है।

13.4.2.4 अनुच्छेद 16(4A)-राज्यों को अनुमति देता है की यदि SC और ST वर्ग का सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो अनुच्छेद 16(4A) राज्य को यह अनुमति देता है कि वो SC और ST वर्ग के कर्मचारियों को पदोन्नती में आरक्षण देने का प्रावधान कर सके।

13.4.3 शोषण के विरुद्ध अधिकार

अनुच्छेद 23 से मनुष्य की खरीद-फरोख्त,बेगार और जबरदस्ती कराए जाने वाले किसी भी प्रकार के श्रम को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित करता है। अगर कोई भी इस प्रावधान का उल्लंघन करेगा तो यह कानून के तहत दंडनीय अपराध होगा। हालांकि यह अनुच्छेद सीधे रूप से अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए नहीं है लेकिन इस प्रकार के कृत्यों जिनको इस अनुच्छेद में प्रतिबंधित किया गया है उससे सबसे ज्यादा यही वर्ग प्रभावित था।

13.4.4 अनुच्छेद 335

संघ या राज्य की नौकरियों और पदों पर भर्ती करते समय सरकार द्वारा प्रशासन की कार्यक्षमता को ध्यान में रखते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के अधिकारों और दावों को भी महत्त्व दिया जाएगा अर्थात सरकार नौकरियां देते समय प्रशासनिक दक्षता को ध्यान में रखकर SC और ST के लिए योग्यता के निर्धारण में अंक छूट दे सकती है, मूल्यांकन के मानको को आसान कर सकती है,संघ और राज्य की सेवाओं में पदों का आरक्षण दे सकती है।

13.4.5 विधानमंडलों में आरक्षण

अनुच्छेद 330 लोकसभा और अनुच्छेद 332 राज्य की विधानसभाओं में एससी-एसटी के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है।

13.4.6 अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय आयोग (अनुच्छेद 338)

शुरुआत में अनुच्छेद 368 के तहत केवल एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जाता था जिसे आमतौर पर आयुक्त कहा जाता था। जो SC और ST से संबंधित मुद्दों को देखता था बाद में इन समुदाय की बेहतर सुरक्षा और प्रभावी निगरानी के लिए 1990 में 65 वे संविधान संशोधन द्वारा एक बहु सदस्यीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन किया गया है। 2003 में 89वे संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में 338(A) को जोड़कर अलग से अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन किया गया। इसी संशोधन के तहत दो अलग अलग आयोग अस्तित्व में आए अनुसूचित जाति आयोग और अनुसूचित जनजाति आयोग। जहाँ अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जाति का उल्लेख है वही 338(A) से में अनुसूचित जनजाति का उल्लेख है।

13.4.7 अनुच्छेद 38- इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि वह ऐसी व्यवस्था का निर्माण करे जिससे लोगों को सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक न्याय मिल सके।

13.4.8 अनुच्छेद 46 - इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य का यह दायित्व है कि वह समाज के कमजोर वर्ग खासकर अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों शिक्षा और आर्थिक प्रगति पर ध्यान देते हुए ऐसे कदम उठाए जिससे इनको उचित अवसर और सुविधाएं मिल सके।

13.4.9 नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (पीसीआर अधिनियम)- 1955

संविधान के अनुच्छेद 17 में 'अस्पृश्यता' को पूर्ण रूप से खत्म किया लेकिन इसको लागू करने के लिए 1955 में अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम लाया गया जिसका नाम 1976 में परिवर्तित करके नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (पीसीआर अधिनियम) कर दिया गया।

13.4.10 एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

इसे आमतौर पर एससी/एसटी एक्ट कहा जाता है। यह अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण कानून है। यह अधिनियम अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के खिलाफ होने वाले खास प्रकार के अपराधों जैसे अपमानजनक व्यवहार, यौन हिंसा, जमीन छीनना, जबरन मजदूरी कराना आदि को स्पष्ट रूप से चिन्हित करता है और इनके लिए सख्त सज़ा निर्धारित करता है तथा यह कानून मामलों की त्वरित सुनवाई, पीड़ितों और गवाहों की सुरक्षा तथा उन्हें उचित मुआवज़ा देने की व्यवस्था भी सुनिश्चित करता है।

13.5 अनुसूचित जातियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति

भारत के सामाजिक संरचना में अनुसूचित जातियों की स्थिति हमेशा से दोयम दर्जे की रही है। आर्थिक संसाधनों तक इनकी पहुंच भी स्वतंत्र रूप से नहीं थी। ऐतिहासिक रूप से जिस भेदभाव का सामना इन्होंने किया है उसको दूर करने के लिए संवैधानिक और विधिक प्रावधानों की सकारात्मक कार्यवाहियां लगातार किए गए लेकिन अभी भी इस समुदाए का पूर्ण रूप से सामाजिक और आर्थिक एकीकरण नहीं हो पाया है। अनुसूचित जाति की जनसंख्या 1941 में 4.8 करोड़ से बढ़कर 2011 में 20 करोड़ से अधिक हो गई ,जो कि देश की आबादी का लगभग 16.6% हैं। अनुसूचित जाति का सामाजिक आर्थिक एकीकरण करने के जो चीज़ सबसे महत्वपूर्ण वह है शिक्षा। अनुसूचित जाति की साक्षरता दर 2001 की जनगणना में 54.7% थी जो 2011 की जनगणना में बढ़कर 66.1% हो गई।2001 से 2011 तक 10 वर्षों की अवधि के दौरान भले से साक्षरता दर में 11.4% को वृद्धि हुई हो लेकिन ये राष्ट्रीय साक्षरता दर 73% से काफी कम है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में भी एक अंतर देखने को मिलता है जहां शहरी साक्षरता 76.2% है तो वही ग्रामीण साक्षरता केवल 62.8% हैं।2011 की जनगणना के अनुसार इस समुदाए की महिलाओं में साक्षरता दर 56.46% थी वही पुरुषो में

75.17% थी। UDISE(2021-22) के अनुसार अनुसूचित जाति का सेकेंडरी लेवल पर जो ड्रॉपआउट परसेंटेज 12.55% है जो कि ओवरऑल 12.61% से कम है।भारत में दलितों की स्थिति इसलिए निम्न नहीं है कि वह गरीब है बल्कि इसलिए भी है क्योंकि वह अछूत माने जाते हैं। अनुसूचित जाति के लोगों की स्थिति उच्च जाति के गरीब लोगों से भी ज्यादा खराब है। 2001 की जनगणना के अनुसार सिर्फ 16.5% बड़े जमींदार के पास 63% उपजाऊ जमीन थी। अमूमन यह देखा गया है कि उच्च जाति के लोग एससी वर्ग के लोगों को जमीन बेचने से बचते हैं। एनएसएस(1993- 94) के अनुसार सिर्फ 19% अनुसूचित जातियों के पास पांच एकड़ से ज्यादा जमीन थी दूसरी जातियों में यह आंकड़ा 42% देखने को मिला था। ग्रामीण क्षेत्रों में 10.32 और शहरी क्षेत्र में 14% दलित परिवार स्व-रोजगार से जुड़े थे। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण(NSS) की 55 वीं रिपोर्ट के अनुसार 70% दलित परिवारों के पास एक एकड़ से कम जमीन या बिल्कुल जमीन नहीं हथी। 30% एससी परिवार स्वयं रोजगार से जुड़े थे वहीं उच्च जातियों के 56% परिवार खेती और गैर खेती में स्वरोजगार पा रहे थे। देश के 65% कृषि मजदूर दलित समुदाय से आते हैं। वैश्विकरण,उदारीकरण और निजीकरण के आने के बाद शुरूआती समय में अनुसूचित जाति समुदाय पर इसका नकारात्मक प्रभाव प्रभाव पड़ा था क्योंकि इससे राज्य के क्षेत्र से सिकुड़ने लगे थे जैसे उच्च शिक्षा का निजीकरण हुआ और सब्सिडी धीरे धीरे कम होने लगी जिससे गरीब और दलित समुदाय की मुश्किलें बढ़ी है क्योकि अनुसूचित लोगों में गरीबी का प्रतिशत अन्य वर्गों खासकर उच्च वर्ग से कही ज्यादा रहा है और सरकार द्वारा स्थापित सरकारी संस्थानों और सब्सिडी का सबसे ज्यादा फायदा इसी वर्ग को मिलता रहा है। सरकार के द्वारा 1990 के बाद सरकारी क्षेत्रों में कमी लाने से इस वर्ग पर प्रारंभिक समय में नकारात्मक प्रभाव देखने को मिला एवं 1990 के बाद कई वर्षों में ऐसे लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति पहले से कमजोर हो गयी थी।1988 के मुकाबले 1998 में गरीबी दर में वृद्धि दर्ज की गयी। सरकारी नौकरियों में 1998 में 1993 के मुकाबले कमी दर्ज की गयी वही इसी दौरान प्राइवेट नौकरियों में इजाफा हुआ जिसका लाभ एससी वर्ग के लोगों को नहीं मिला क्योंकि प्राइवेट क्षेत्रों तक इनकी पहुँच बहुत कम थी।[4]

13.6 अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में डॉ आंबेडकर के विचार

डॉ. अंबेडकर का कहना था कि राजनीतिक लोकतंत्र के साथ साथ सामाजिक लोकतंत्र भी आवश्यक है। उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र को राजनितिक लोकतंत्र का आधार माना। उनका कहना था कि बिना सामाजिक लोकतंत्र के राजनीतिक लोकतंत्र नहीं ठीक सकता। सामाजिक लोकतंत्र से तात्पर्य हैं कि समाज में समता हो और किसी प्रकार का भेदभाव न हो। डॉ अंबेडकर के अनुसार ब्राह्मणवाद और कैपिटलिज़्म भारत में दबे कुचले लोगों के दो शत्रु हैं। उनका मानना था कि अंग्रेजों के समान हिंदुओं का भी एक साम्राज्य है जिसमें अछूता को सबसे निम्न स्थिति प्रदान की गई है। जिसप्रकार ब्रिटिश दूसरे देश में शासन करते हैं उसी प्रकार हिंदू धर्म में उच्च जातियां 'अस्पृश्य' समुदाय पर शासन करती है। डॉ अंबेडकर के दृष्टिकोण के अनुसार कैपिटलिज्म आर्थिक असमानता को बढ़ाती है अंबेडकर के अनुसार सरकार की यह मुख्य जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए ठोस कदम उठाए और यह सुनिश्चित करें की शिक्षा ,स्वास्थ्य,जल आपूर्ति और आवास जैसी सुविधाएँ इस वर्ग के लोगों को मिले। अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्ग की गरीबी और अशिक्षा के कारण जो असमानताएं उत्पन्न हुई है उन्हें विशेष सुविधाओं,छात्रवृति, हॉस्टल ,मेडिकल सुविधा, व शुद्ध जल जैसे सुविधाएँ देकर दूर किया जाना चाहिए। डॉ. अंबेडकर के लेख और भाषणों पर महाराष्ट्र सरकार ने वोल्यूम 5 को 1889 में प्रकाशित किया जिसमें डॉक्टर अंबेडकर ने इस बात की चर्चा की है कि भारत में जाति व्यवस्था क्यों खत्म नहीं हुई। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि इसके पीछे का मुख्य कारण यह था कि जाति व्यवस्था को पवित्र देवीय शक्ति से जोड़ दिया गया है।एक अर्थशास्त्री के रूप में उनका मानना था कि पूंजीवाद कभी भी भारत की गरीबी या अशिक्षा,बेरोजगारी और सामाजिक आर्थिक असमानता को हल नहीं कर सकती।[4]

13.7 अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में प्रमुख स्कीम एवं योजनाएँ

13.7.1.अनुसूचित जातियों के लिए पोस्ट मैट्रिक स्कॉलरशिप- इस छात्रवृत्ति योजना का उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करना है। इस योजना के तहत भारत में पोस्ट-मैट्रिक स्तर से ऊपर के सभी मान्यता प्राप्त कोर्सों में पढ़ाई करने वाले अनुसूचित छात्रों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। पात्रता के लिए छात्र का नाम संबंधित राज्य/UT की SC सूची में होना और परिवार की वार्षिक आय 2.5 लाख रुपये से कम होना आवश्यक है। योजना में प्रोफेशनल, स्नातक, डिप्लोमा और विभिन्न नॉन-डिग्री कोर्सों को शामिल किया गया है। केवल वही संस्थान मान्य हैं जिनके पास AISHE/UDISE कोड हो और जो निर्धारित शैक्षणिक एवं प्रशासनिक मानकों का पालन करते हों। छात्रों को फ्रीशिप कार्ड के माध्यम से बिना अग्रिम फीस दिए प्रवेश का अधिकार मिलता है, जबकि सरकार बाद में फीस जारी करती है।[6]

13.7.2 अनुसूचित जाति एवं अन्य के लिए प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना- यह एक केंद्र प्रायोजित पहल है, जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति और अन्य वंचित वर्गों के बच्चों को स्कूल शिक्षा से जोड़कर उनकी पढ़ाई जारी रखना सुनिश्चित करना है। यह योजना कक्षा I से X तक के छात्रों को आर्थिक सहायता देती है ताकि ड्रॉपआउट की समस्या, खासकर प्राथमिक से माध्यमिक स्तर में, कम हो सके और बच्चे आगे की पढ़ाई कर सकें। SC श्रेणी के कक्षा IX और X के छात्रों के लिए वार्षिक पारिवारिक आय सीमा 2.5 लाख रुपये तय की गई है, जबकि दूसरी श्रेणी में मैनुअल स्कैवेंजिंग, टैनिंग, वेस्ट पिकिंग और खतरनाक सफाई जैसे कार्यों में लगे माता-पिता के बच्चों को किसी भी जाति या धर्म की बाध्यता के बिना लाभ दिया जाता है। इस श्रेणी के छात्रों को निर्धारित अधिकारियों से प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है, जिससे उनकी पात्रता की पुष्टि हो सके।[18]

13.7.3 **अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय फ़ेलोशिप (NFSC)** -एक महत्वपूर्ण योजना है, जो SC/ST छात्रों को पूर्णकालिक M.Phil. और Ph.D. करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करती है। हर वर्ष निर्धारित स्लॉट्स के आधार पर मेरिट से चयन किया जाता है, और फ़ेलोशिप अधिकतम पाँच वर्षों तक मिलती है, जिसमें शुरुआती दो वर्ष JRF और बाद के तीन वर्ष SRF के रूप में होते हैं। इस योजना के तहत छात्रों को मासिक फ़ेलोशिप, कंटिंजेंसी फंड, HRA और विशेष रूप से दिव्यांग उम्मीदवारों को एस्कॉर्ट/रीडर भत्ता भी दिया जाता है। शोध कार्य की नियमित प्रगति रिपोर्ट अनिवार्य होती है, और यदि उम्मीदवार का कार्य संतोषजनक न हो या कोई अनुशासनहीनता पाए जाए, तो फ़ेलोशिप रद्द भी की जा सकती है ।[14]

13.7.4 टॉप क्लास एजुकेशन स्कॉलरशिप स्कीम (SC छात्रों के लिए) - यह एक ऐसी पहल है जिसका उद्देश्य SC समुदाय के मेधावी छात्रों को बारहवीं के बाद बेहतरीन संस्थानों में पढ़ाई का अवसर और पूरी आर्थिक सहायता देना है। इस योजना का लाभ वे छात्र उठा सकते हैं जिनके परिवार की वार्षिक आय 8 लाख रुपये तक है और जिन्हें किसी मान्यता प्राप्त टॉप क्लास संस्थान में प्रवेश मिल चुका हो। चयन मेरिट (Admission Rank) के आधार पर होता है, और 30% सीटें SC बालिकाओं के लिए आरक्षित रहती हैं। चुने गए छात्रों को पूरी ट्यूशन फीस तथा पहले वर्ष 86,000 और आगे के वर्षों में 41,000 रुपये की अकादमिक सहायता सीधे DBT के माध्यम से दी जाती है। यदि किसी संस्थान में पात्र छात्रों की संख्या आवंटित सीटों से अधिक है, तो सिर्फ शीर्ष मेरिट वाले छात्र ही चुने जाते हैं। इस योजना के तहत IIMs, IITs, IIITs, AIIMS, NITs, NIFT, NID, IHM, NLUs, और अन्य सभी केंद्रीय सरकारी संस्थान शामिल हैं। इसके अलावा, वे संस्थान भी शामिल किए जाते हैं जिन्हें NAAC से A++ या A+ मान्यता मिली हो,NIRF की टॉप 100 रैंकिंग में स्थान हो, या राष्ट्रीय महत्व के संस्थान हों।इन संस्थानों की सूची मंत्रालय द्वारा हर वर्ष अपडेट की जाती है और खराब प्रदर्शन पर संस्थान सूची से हटाए भी जा सकते हैं।[20]

13.7.5 बाबू जगजीवन राम छात्रावास योजना- यह योजना अनुसूचित जाति के छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँचाने में मदद करने के लिए हॉस्टलों के निर्माण पर केंद्रित है। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों से आने वाले कई छात्रों के लिए ऐसे हॉस्टल सुरक्षित और सहायक वातावरण प्रदान करते हैं, जिससे वे अपनी पढ़ाई जारी रख सकें। SC लड़कियों के लिए यह कार्यक्रम तीसरी पंचवर्षीय योजना

(1961-66) से चल रहा है, जबकि लड़कों के लिए इसे 1989–90 में शुरू किया गया। संशोधित योजना का उद्देश्य अधिक संस्थाओं को हॉस्टल बनाने के लिए प्रोत्साहित करना और विशेष रूप से SC लड़कियों का ड्रॉपआउट रेट कम करना है। इसके तहत कम साक्षरता वाले जिलों के हर ब्लॉक मुख्यालय में 100 सीटों वाला हॉस्टल स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ ही मौजूदा हॉस्टलों की मरम्मत व रखरखाव पर भी जोर दिया गया है। योजना में हॉस्टलों की निगरानी और समीक्षा के लिए प्रभावी व्यवस्था विकसित करने का भी प्रावधान किया गया है।[9]

13.7.6 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम (NSFDC)- इसकी स्थापना वर्ष 1989 में कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 8 के तहत एक गैर-लाभकारी संस्था के रूप में की गई थी, जो पहले कंपनी अधिनियम 1956 की धारा 25 के अंतर्गत पंजीकृत थी। इसका मुख्य उद्देश्य उन अनुसूचित जाति के व्यक्तियों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराना है, जिनकी परिवारिक वार्षिक आय 3 लाख रुपये तक होती है, ताकि वे आय बढ़ाने वाली गतिविधियों से जुड़ सकें । एनएसएफडीसी विभिन्न योजनाओं के तहत ऋण उपलब्ध कराने के साथ-साथ कौशल विकास प्रशिक्षण, उद्यमिता संवर्धन कार्यक्रम और विपणन सहायता भी प्रदान करता है। यह सहायता राज्य चैनलाइजिंग एजेंसियों (SCA), ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों (RRB), सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा अन्य साझेदार संस्थानों के माध्यम से दी जाती है ।[17]

13.7.7 स्टैंड उप इंडिया(Stand-Up India)- यह एक विशेष योजना है, जिसका उद्देश्य SC/ST और महिला उद्यमियों को 10 लाख से 1 करोड़ रुपये तक बैंक ऋण उपलब्ध कराना है ताकि वे अपना नया (ग्रीनफील्ड) व्यवसाय शुरू कर सकें। यह योजना विनिर्माण, सेवा और व्यापार क्षेत्र में पहली बार उद्यम स्थापित करने वालों को प्रोत्साहित करती है। पात्रता के लिए आवेदक की आयु 18 वर्ष से अधिक होनी चाहिए और वह किसी भी बैंक के डिफॉल्टर नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही पोर्टल के माध्यम से प्रशिक्षण, मार्गदर्शन और प्रोजेक्ट रिपोर्ट जैसी हैंडहोल्डिंग सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं।[16]

13.7.8 नेशनल एससी-एसटी हब (NSSH)- राष्ट्रीय एससी-एसटी हब (NSSH) एमएसएमई मंत्रालय की एक पहल है, जिसे 2016 में शुरू किया गया था, और इसका उद्देश्य एससी-एसटी उद्यमियों की क्षमता बढ़ाना तथा उनमें उद्यमिता को प्रोत्साहित करना है। यह योजना समुदाय को सार्वजनिक खरीद प्रक्रिया में भागीदारी के लिए सक्षम बनाती है, ताकि केंद्र सरकार और उसके उपक्रमों द्वारा निर्धारित 4% खरीद लक्ष्य पूरा हो सके। एनएसआईसी ने देशभर में 15 एनएसएसएच कार्यालय स्थापित किए हैं, जो पंजीकरण, जीईएम रजिस्ट्रेशन, टेंडर प्रक्रिया, ऋण सुविधा और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से निरंतर सहायता प्रदान करते हैं।[15]

13.7.9 अंबेडकर सोशल इनोवेशन इनक्यूबेशन मिशन (ASIIM)- सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय की एक महत्वपूर्ण पहल है, जिसका उद्देश्य SC और दिव्यांग युवाओं में नवाचार एवं उद्यमिता की भावना को मजबूत करना है। यह कार्यक्रम Venture Capital Fund for SCs के माध्यम से चलाया जाता है, जिसके तहत युवा इनोवेटर्स के तकनीकी एवं व्यावसायिक विचारों को वित्तीय सहायता दी जाती है। मिशन के अंतर्गत 2024 तक लगभग 1,000 नवाचार विचारों को चुनकर उन्हें तीन वर्षों में 30 लाख रुपये तक की इक्विटी सहायता प्रदान करने का लक्ष्य है। चुने गए युवाओं को प्रशिक्षण, मार्गदर्शन और व्यवसाय स्थापित करने में आवश्यक सहयोग उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना का मुख्य मकसद SC युवाओं को आत्मनिर्भर बनाकर उन्हें नौकरी खोजने के बजाय स्वयं उद्यम शुरू करने के लिए प्रेरित करना है।[1]

13.7.10 क्रेडिट एन्हांसमेंट गारंटी योजना – यह सरकार द्वारा 2014-15 में शुरू की गई एक विशेष पहल है, जिसका उद्देश्य अनुसूचित जाति (SC) के युवाओं को उद्यमिता के लिए प्रोत्साहित करना है। इस योजना के तहत 200 करोड़ रुपये का कोष बनाया गया, जिससे बैंकों और वित्तीय संस्थानों को गारंटी समर्थन दिया जाता है। इससे बैंक SC उद्यमियों को अधिक आसानी से ऋण

उपलब्ध करा पाते हैं।यह योजना उन SC युवाओं को मदद करती है जो नए विचारों, तकनीक और विकास केंद्रित व्यवसाय शुरू करना चाहते हैं। इसके माध्यम से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, समाज में आर्थिक गतिविधियाँ मजबूत होती हैं और SC समुदाय आर्थिक रूप से सशक्त बनता है। यह योजना उद्यमिता को बढ़ावा देकर स्थानीय स्तर पर नई आर्थिक श्रृंखलाएँ भी तैयार करती है।[3]

13.8 अभ्यास प्रश्न

1. नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम का अस्तित्व में आया था।
2. 2011 जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति वर्ग की महिलाओं की साक्षरता कितनी थी।
3. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम(NSFDC) की स्थापना किस वर्ष में की गई थी।
4. स्टैंड अप इंडिया के तहत अधिकतम कितनी धनराशि का ऋण प्राप्त हो सकता है।

13.9 निष्कर्ष

अनुसूचित जातियों का विकास भारत में समावेशी विकास को प्रदर्शित करता है क्योंकि लंबे समय तक चले भेदभावपूर्ण व्यवहार और छुआछूत ने इस समुदाय की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और जीवन स्तर पर नकारात्मक प्रभाव डाला। इसी नकारात्मक प्रभाव के कारण ये समुदाय विकास की दौड़ में लगातार पिछड़ता चला गया। स्वतंत्रता के पश्चात इसी नकारात्मक प्रभाव दूर करके समानता और सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए एससी समुदाय के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किए गए ।ये संवैधानिक प्रावधानों ने इस वर्ग के विकास के लिए एक आधार स्तंभ के रूप में कार्य किया। आरक्षण नीति, छात्रवृत्तियां,कौशल विकास कार्यक्रम,आर्थिक सहायता और उद्यमिता को बढ़ाने वाली योजनाओं और स्कीम ने इस वर्ग की सामाजित और आर्थिक स्थिति को सुधारने के मील का पत्थर साबित हुआ है। लेकिन आज भी कुछ हद इस वर्ग को जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ रहा है। आज भी अगर हम शिक्षा-स्वास्थ्य संबंधी आंकड़ों की बात करे तो इनकी स्थिति सबसे निम्न स्तर पर निम्न स्तर पर देखने को मिलती है। रोजगार के अवसर भी इनके पास सीमित रूप से देखने को मिलता है क्योंकि सरकारी नौकरियों की संख्या में गिरावट आई है और प्राइवेट नौकरियों तक इनकी पहुंच उच्च जाति के बराबर नहीं है। नीतिगत स्तर सरकार इनकी स्थिति सुधारने के लिए निरंतर प्रयास कर रही है जरूरत है तो नीतियों के कुशल क्रियान्वयन एवं सहभागिता बढ़ाने की। सहभागिता को बढ़ाकर सरकार - समुदाय के संयुक्त प्रयास को स्थापित करके ही इस समुदाय के आत्मविश्वास, सम्मान और सशक्तिकरण को स्थापित करके इस समुदाय विकास में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

13.10 शब्दावली

1.योजना – किसी कार्य को करने से पहले बनाई गयी रुपरेखा
2.प्रावधान – किसी कानून ,नियम या नीति में किया गया विशेष प्रबंध
3.. वैश्विकरण – दुनिया के देशों का आपस में आर्थिक,राजनीतिक ,सांस्कृतिक और तकनीकी रूप से जुड़ना
4. उदारीकरण – सरकार द्वारा आर्थिक गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबंधों को कम करना
5.निजीकरण – सरकारी उद्योगों,सेवाओं और संपत्तियों को बेचना या संचालन का अधिकार देना

13.11 अभ्यास प्रश्न का उत्तर

1. **1955**
2. 56.46%

3. 1989
4. 1 करोड़

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में जाति व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए।
2. अनुसूचित जातियों के लिए चलाई जा रही प्रमुख स्कीमों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. अनुसूचित जातियों के कौन कौन संवैधानिक और विधिक प्रावधानों किए गए है।विस्तार से बताइए।

13.13 सन्दर्भ सूची

1.Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. (n.d.). *Ambedkar Social Innovation Incubation Mission (ASIIM).* Retrieved December 8, 2025, from https://static.pib.gov.in/WriteReadData/userfiles/English%20Brief%20on%20ASIIM.pdf

2.Borooah, V. K., Sabharwal, N. S., Diwakar, D. G., Mishra, V. K., & Naik, A. K. (2015). *Caste, discrimination, and exclusion in modern India.* SAGE Publications.

3.Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. (2019). *Credit Enhancement Guarantee Scheme for the Scheduled Castes (SCs).* Retrieved December 8, 2025, from https://socialjustice.gov.in/writereaddata/UploadFile/creditguide09082019.pdf

4.Karade, J. (Ed.). (2008). *Development of Scheduled Castes and Scheduled Tribes in India.* Cambridge Scholars Publishing.

5.Lok Sabha Secretariat; Ministry of Education, Government of India. (2024, December 18). *Unstarred Question No. 2610 — Drop-out percentage of school going students from SC/ST, OBC & girls.* https://sansad.in/getFile/annex/266/AU2610_zcItKd.pdf?source=pqars

6.Government of India, Ministry of Social Justice & Empowerment. (2021, March). *Guidelines: Post matric scholarships to the students belonging to Scheduled Castes for studies in India (2020–2021 to 2025–26).*

7.Haokip, S. (2025). Scheduled castes in India: An examination of constitutional provisions, safeguards, and development schemes. *International Journal of Contemporary Research in Multidisciplinary, 4*(2), 212–221.

8.National Commission for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. (2022). *Initiatives for SC welfare.* Ministry of Social Justice & Empowerment.

9.Ministry of Social Justice and Empowerment. (2020). BJRCY revised 2020. Government of India. https://socialjustice.gov.in/writereaddata/UploadFile/BJRCY_revised2020_Eng.pdf

10.Ministry of Social Justice & Empowerment. (2022, April). *Initiatives for SC Welfare.* Government of India. https://static.pib.gov.in/WriteReadData/specificdocs/documents/2022/apr/doc20224737401.pdf

11.Karlapudi, P. (n.d.). Constitutional safeguards for the protection of Scheduled Caste and Scheduled Tribe: A critical analysis. *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT).*

12.Kanwar, J. (2019). Constitutional provisions for SCs and STs. *International Journal of Law Management & Humanities, 2*(4).

13.National Commission for Scheduled Castes and Scheduled Tribes. (2001). *Sixth report: 1999–2000 & 2000–2001.* Government of India.

14.University Grants Commission. (2022). *National Fellowship for Scheduled Caste Students (NFSC): Revised guidelines.* https://www.ugc.gov.in/pdfnews/6590506_NFSC-Revised-Guidelines.pdf

15.Department of Social Justice & Empowerment, Government of India. (n.d.-b). *SC-ST Hub – Brochure (Hindi).* https://www.scsthub.in/sites/default/files/resources/SC-ST%20Hub%20-%20Brochure%20-%20Hindi.pdf

16.https://www.udyami.org.in/storage/schemes/file/t4CQkv4D2TsdhI3MK8KqFSnYPw6RTBBsmh7p449D.pdf

17.Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India. (n.d.-f). *Schemes for SC/ST/OBC & Others.* https://socialjustice.gov.in/schemes/34

18.Department of Social Justice & Empowerment, Government of India. (n.d.). *Schemes.* Retrieved December 8, 2025, from https://socialjustice.gov.in/schemes/23

19.Shah, G. (Ed.). (2001). *Dalit identity and politics* (Vol. 2). Sage Publications.

20.Department of Social Justice & Empowerment, Government of India. (n.d.-a). *Central Sector Scholarship of Top Class Education for SC Students – Scheme Guidelines 2018.* https://scholarships.gov.in/public/schemeGuidelines/Top_Class_Education_Scheme_2018.pdf

21.Ministry of Statistics and Programme Implementation, Govt. of India. (2016). *Women & Men in India – 2016: Chapter 3 — Literacy and Education.* https://mospi.gov.in/sites/default/files/reports_and_publication/statistical_publication/social_statistics/WM16Chapter3.pdf

इकाई 14- अनुसूचित जनजातियों का विकास

इकाई विवरण

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति परिभाषा एवं अंतर

14.4 अनुसूचित जनजातियों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

14.4.1 पूर्व-औपनिवेशिक काल

14.4.2 औपनिवेशिक नीतियां एवं उनका प्रभाव

14.4.3 प्रतिरोध एवं विद्रोह

14.4.4 स्वतंत्रता के पश्चात संवैधानिक तथा कानूनी मान्यता एवं अधिकार

14.5 अनुसूचित जनजातियों के सम्मुख प्रमुख चुनौतियाँ और संकट

14.6 अनुसूचित जनजातियों के विकास हेतु सरकार की प्रमुख योजनायें

14.7 साराशं

14.8 शब्दावली

14.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

14.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.12 सहायक पाठ्य सामग्री

14.1 प्रस्तावना

भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना में अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) का स्थान अत्यंत विशिष्ट और महत्वपूर्ण है। **Census 2011** के अनुसार, भारत की कुल आबादी का लगभग 8.6% (10.43 करोड़) हिस्सा अनुसूचित जनजातियों से संबंधित है, जो देश के 30 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में फैले 705 अलग-अलग जनजातीय समुदायों में विभाजित हैं। ये जनजातीय समुदाय न केवल भारत की सांस्कृतिक विविधता का आधार हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता, प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग तथा पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

जनजातीय समाज की विशेषताओं को समझने के लिए यह आवश्यक है कि "विकास" की अवधारणा को उनके पारंपरिक जीवन संदर्भ में देखा जाए जहाँ सामाजिक समरसता, प्रकृति-केंद्रित आजीविका, सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक स्वायत्तता प्रमुख रही है। किन्तु आधुनिक विकास मॉडल जो औद्योगीकीकरण, बुनियादी ढांचा विस्तार, आर्थिक वृद्धि, बाजार केन्द्रित मूल्यों की वृद्धि तथा संसाधनों के अत्यधिक दोहन पर आधारित है, ने कई बार

जनजातीय जीवन में असंतुलन उत्पन्न किया है। परिणामस्वरूप, विकास और परंपरा के बीच एक द्वंद्व पैदा हुआ है जिसने उनके जीवन, संस्कृति, भूमि एवं अस्तित्व पर व्यापक प्रभाव डाला है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम जानने का प्रयास करेंगे- भारतीय जनजातियों की संवैधानिक पहचान, ऐतिहासिक अनुभव, विकास प्रक्रियाएँ,सरकार की नीतियां और योजनायें और भविष्य की संभावित दिशा। इस इकाई में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार जनजातीय समुदायों की बहुविध पहचान, आर्थिक स्थिति, संसाधनों पर अधिकार, शिक्षा-स्वास्थ्य तक पहुँच, और राज्य की नीतियाँ विकास के स्वरूप को निर्धारित करती हैं।

14.3 जनजाति एवं अनुसूचित जनजाति परिभाषा एवं अंतर

अनुसूचित जनजातियों के विकास से जुड़े विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि 'जनजाति' (Tribe), 'अनुसूचित जनजाति' (Scheduled Tribe) और 'अनुसूचित जाति' (Scheduled Caste) के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से जाना जाए। इन अवधारणाओं की समझ हमें इन समुदायों की सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान, संवैधानिक स्थिति तथा उनके उत्थान हेतु बनाए गए नीतिगत उपायों को बेहतर ढंग से समझने में सहायता प्रदान करती है। अतः विकास संबंधी चर्चा में आगे बढ़ने से पूर्व हम इन तीनों अवधारणाओं की संक्षिप्त व्याख्या और तुलना करेंगे।

जनजाति(Tribe) एक नृवंशविज्ञानिक (Anthropological) अवधारणा है, जिसे कुछ विद्वान 'आदिम' समूहों के रूप में भी देखते हैं। जनजाति को प्रायः उस सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित किया जाता है जो एक निर्धारित भू-क्षेत्र में निवास करता है, जिसकी अपनी बोली/भाषा, सांस्कृतिक एकरूपता तथा एकीकृत सामाजिक संगठन होता है। नृविज्ञानिक दृष्टि से जनजाति कई उपसमूहों—जैसे कबीले, बस्ती समूह, कुल से मिलकर निर्मित एक सामाजिक इकाई होती है, जिसकी विशिष्ट संस्कृति, अलग भू-क्षेत्र तथा अपनी स्वतंत्र बोली होती है। इन समुदायों में प्रायः स्वायत्त राजनीतिक संगठन या बाहरी समाज के प्रति सामूहिक एकता का बोध पाया जाता है। अतः जनजाति को ऐसे विशिष्ट समूह के रूप में समझा जा सकता है जिसकी अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति, परंपरा तथा सामाजिक संरचना हो। जनजाति तथा जाति के बीच अंतर :-

उत्पत्ति का आधार – जनजाति का विकास एक निश्चित भू-भाग, भाषा एवं विशिष्ट संस्कृति के आधार पर होता है,जबकि जाति का निर्धारण जन्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के रूप में होता है।

स्तरीकरण – जनजातियों के भीतर सामाजिक स्तरीकरण का अभाव होता है, वहीं जाति व्यवस्था ऊँच-नीच पर आधारित होती है।

विवाह एवं खान-पान नियम – जनजातियों में सहवास और खान-पान संबंधी नियम अपेक्षाकृत शिथिल पाए जाते हैं, परंतु जातियों में विवाह, सहवास एवं भोजन से जुड़े नियम अत्यंत कठोर होते हैं।

सामाजिक संरचना – जनजाति एक स्वायत्त एवं स्वतंत्र सामाजिक इकाई होती है, जबकि जाति एक बड़ी सामाजिक संरचना एवं समुदाय का अंग मानी जाती है।

क्षेत्रीयता का संबंध –मैक्स वेबर के अनुसार, जनजाति मुख्यतः स्थानीय समूह होती है तथा प्रादेशिक पहचान खोने पर जाति में परिवर्तित हो सकती है, जबकि जाति एक विस्तृत सामाजिक समूह है जिसका प्रसार स्थानीय से बाहर वैश्विक स्तर तक हो सकता है।

धार्मिक प्रथाएँ – डी. एन. मजूमदार के अनुसार, जनजातियाँ भारतीय धार्मिक कर्मकाण्ड व देवी-देवताओं को मानते हुए भी इन्हें बाहरी या विधर्मी प्रथाएं समझती हैं, जबकि जाति प्रथा हिन्दू धार्मिक व्यवस्था का अभिन्न अंग मानी जाती है।

धार्मिक मान्यताएँ – जनजातियों में पूज्य(टोटम), निषेध (टैबू) एवं अन्य आदिम धार्मिक मान्यताएँ विद्यमान रहती हैं, परन्तु जाति में प्रायः ऐसी मान्यताओं का अभाव दिखाई देता है।

जनजातियों से संबंधित महत्वपूर्ण परिभाषाएं एवं कथन:-

जनजाति को अन्य नामों जैसे वन्यजाति, आदिवासी, मूलनिवासी, वनवासी, आदिम जाति, गिरिजन इत्यादि नामों से भी जाना जाता है।

डॉ. मजूमदार के अनुसार, जनजाति परिवार ऐसा समूह है, जिसका एक सामान्य नाम होता है जो एक निश्चित भू-भाग में प्रवास करते हैं तथा जिनमें विवाह संबंधी निषेध पाया जाता है।

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, ऐसा स्थानीय आदिम समूह जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, सामान्य भाषा बोलता हो, एक सामान्य संस्कृति का पालन करता हो, उसे जनजाति कहते हैं

ठक्कर बापा को आदिवासियों का मसीहा कहा जाता है।

जयपाल सिंह मुण्डा (संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य) तथा ठक्कर बापा ने जनजातीय लोगों को आदिवासी नाम दिया।

डॉ. एल. पी. विद्यार्थी (भारत में मानवशास्त्र के मसीहा) ने इन्हें गिरिधन कहा है।

भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति (S.T.) कहा गया है।

बेरियर एल्विन ने इन्हें 'आदिम जाति' कहा है उनके शब्दों में, आदिवासी भारतवर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज हैं, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है। एल्विन ने जनजातियों के संरक्षण के लिए 'राष्ट्रीय पार्क/राष्ट्रीय उपवन सिद्धांत (National park theory) की अवधारणा दी है।

डॉ. जी. एस. घुरिये ने जनजातियों की 'पिछड़े हिन्दू' कहा है।

गांधी जी ने आदिवासियों को 'गिरिजन' कहकर पुकारा है।

अनुसूचित जनजाति एक संवैधानिक अवधारणा - 'अनुसूचित जनजाति' मूल रूप से एक प्रशासनिक और संवैधानिक शब्द है। यह उन जनजातीय समुदायों को संदर्भित करता है जिन्हें भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 342** के तहत सूचीबद्ध किया गया है। संविधान के अनुसार केवल वही समुदाय अनुसूचित जनजाति में शामिल किए जा सकते हैं जिन्हें आधिकारिक रूप से इस श्रेणी में अधिसूचित किया गया है। जनजाति और अनुसूचित जनजाति की अवधारणाएँ सामान्यतः परस्पर पूरक मानी जाती हैं, न कि विरोधाभासी। किसी जनजाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता देने के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना आवश्यक माना जाता है—

1. उस जनजाति की अपनी विशिष्ट भाषा, धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ हों, जिन्हें अपेक्षाकृत आदिम या प्राचीन माना जा सके।
2. उसका जीवन अन्य समाजों से पृथक एवं अलग-थलग हो। यदि वह अन्य समुदायों के निकट निवास करती हो, तब भी उसका उनमें समावेशन या घुलमिल जाने की प्रक्रिया न्यूनतम हो।
3. वह सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत पिछड़ी हुई हो।

विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (पीवीटीजी) - पीवीटीजी अनुसूचित जनजातियों में भी सर्वाधिक वंचित और हाशिए पर स्थित समूह हैं। धेबर आयोग (1973) की सिफारिश पर, 1975 में भारत सरकार ने "आदिम जनजातीय समूह" (PTGs) नामक एक उप-श्रेणी बनाई, जिसे बाद में बदलकर "विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह" (**PVTGs)** कर दिया गया। वर्तमान में देश के 17 राज्यों और 1 केंद्रशासित प्रदेश में कुल 75 पीवीटीजी फैले हुए हैं। पीवीटीजी की प्रमुख विशेषताएँ: हैं की ये अधिकतर छोटी जनसंख्या वाले, सजातीय, भौतिक रूप से अलग-थलग समुदाय हैं। इनमें सामाजिक संस्थाएँ सरल, लिखित भाषा का अभाव, साधारण तकनीक और परिवर्तन की धीमी गति देखी जाती है।

विमुक्त जनजातियाँ (डी-नोटिफाइड ट्राइब्स - DNTs) वे समुदाय हैं जिन्हें ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा 1871 के आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत "आदतन अपराधी" घोषित कर दिया गया था। इस कलंकित पहचान के कारण उन पर कठोर नियंत्रण, निगरानी और प्रतिबंध लगाए गए। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने 31 अगस्त, 1952 को इस अधिनियम को रद्द कर दिया और इन समुदायों को आपराधिक सूची से "विमुक्त" (Denotified) कर दिया। हालाँकि कानूनी तौर पर मुक्त हो गए, परंतु सामाजिक कलंक और भेदभाव आज भी जारी है। स्वतंत्रता के बाद, इनमें से कई समुदायों को अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) या अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) की सूचियों में शामिल किया गया। हालाँकि, बड़ी संख्या में समुदाय अभी भी किसी भी श्रेणी में मान्यता प्राप्त नहीं हैं, जिससे वे सरकारी योजनाओं के लाभों से वंचित रह जाते हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग ने कई बार इनकी समस्याओं को उठाया है।

खानाबदोश और अर्ध-खानाबदोश जनजातियाँ वे समुदाय हैं जो अपनी आजीविका (पशुचारण, कारीगरी, मनोरंजन, व्यापार) के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर नियमित रूप से प्रवास करते रहते हैं। इनकी विशेषताएं ही इनके समक्ष कुछ चुनौतियाँ बन कर उभरी हैं जैसे इनकी गतिशीलता इन्हें स्थायी पता, मतदाता पहचान पत्र, आधार कार्ड, राशन कार्ड जैसे दस्तावेज बनवाने और सार्वजनिक सेवाओं (शिक्षा, स्वास्थ्य) तक पहुँच से वंचित कर देती है। पारंपरिक व्यवसाय (जैसे पशुपालन, लोहारगिरी, बुनाई, मनोरंजन) का ह्रास हो रहा है और ये समुदाय भी विमुक्त जनजातियों की तरह SC/ST/OBC सूचियों में अनियमित रूप से बिखरे हुए हैं या किसी में भी शामिल नहीं हैं। **हाल ही में** कुछ राज्यों (जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक) ने इन समुदायों के लिए विशेष बोर्ड गठित किए हैं। रेनके आयोग ने इन समुदायों को मान्यता देने और उनकी सूची तैयार करने के लिए संविधान में एक नया अनुच्छेद जोड़ने की सिफारिश की थी, जिस पर अभी कार्रवाई शेष है।

रेनके आयोग Renke Commission **(2008)** "विमुक्त, खानाबदोश एवं अर्ध-खानाबदोश जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति की जाँच हेतु राष्ट्रीय आयोग" (National Commission for Denotified, Nomadic and Semi-Nomadic Tribes - NCDNSNT) 2008 : इस आयोग का गठन

विमुक्त, खानाबदोश और अर्ध-खानाबदोश जनजातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति की समीक्षा के लिए किया गया था। इसकी सिफारिशें अभी भी पूर्ण रूप से लागू नहीं की गई हैं।

14.4 अनुसूचित जनजातियों ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

14.4.1 पूर्व-औपनिवेशिक काल

भारत में जब तक बाहरी शासकों का प्रभाव सीमित था, अधिकांश जनजातीय समुदाय — जंगल, पर्वतीय क्षेत्र, घाटी, वन और सीमांत इलाकों में अपने पारंपरिक सामाजिक, आर्थिक व तकनीकी तंत्र के साथ स्वतंत्र रूप से जीवन यापन करते थे। इन समुदायों की जीवन-शैली का आधार था खेती (जूम/झूम कृषि), वनोपज संग्रह, शिकार, जंगल-आधारित आजीविका, एवं सामुदायिक स्वामित्व या सामूहिक भूमि–संसाधन प्रबंधन।

भूमि व जंगल जीवन-चक्र केवल आजीविका का स्रोत नहीं थे, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक व सांस्कृतिक रीति-रिवाज, पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक निर्णय और प्रकृति के साथ सामंजस्य का आधार थे। जनजातीय समुदायों के अपने प्रमुख, पंचायत प्रणाली या पारंपरिक सामाजिक संगठन रहे, जो भूमि उपयोग, वनोपज उपयोग व सामाजिक न्याय की जिम्मेदारी लेते थे। इससे उन्हें एक प्रकार की आत्म-स्वायत्तता प्राप्त थी, और बाहरी सत्ता या ज़मीनदारों से उनकी दूरी थी।

इस प्रकार, जंगल और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बीच, जनजातीय समुदायों और उनके प्राकृतिक पर्यावरण के बीच समहृदय (symbiotic) संबंध स्थापित था जो आज "सतत विकास (sustainability)" के दृष्टिकोण में उदाहरण के रूप में दिए जाते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूर्व-औपनिवेशिक भारत में जनजातियाँ — भले ही मुख्यधारा की राजनीतिक संरचनाओं में न हों — स्वायत्त, आत्मनिर्भर और प्रकृति-अनुकूल जीवन पद्धति पर आधारित थीं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहचान स्थायी बनी रही।

14.4.2औपनिवेशिक नीतियां एवं उनका प्रभाव

ब्रिटिश शासन में 1865 से पूर्व जंगलों में कोई नियंत्रण नहीं था, भारतीय वन अधिनियम 1865 भारत के वन प्रशासन में निर्णायक बदलाव था। पहली बार वन-स्वामित्व आदिवासी समुदायों से हटकर औपनिवेशिक शासन के हाथों में जाने लगा। 1857 विद्रोह के बाद ब्रिटिशों को रेलवे विस्तार हेतु विशाल मात्रा में लकड़ी की आवश्यकता थी रेल स्लीपर व भाप इंजन के ईंधन के लिए। इसी हेतु 1865 का अधिनियम बनाया गया।

इस कानून ने सरकार को किसी भी वृक्षाच्छादित भूमि को सरकारी वन घोषित करने का अधिकार दिया, चाहे उस पर जनजातियों का परंपरागत उपयोग या निवास क्यों न हो। इसके मुख्य उद्देश्य थे वन भूमि पर राज्य स्वामित्व स्थापित करना, मूल्यवान लकड़ी का दोहन, नियंत्रण,लाइसेंसिंग व कर-प्रणाली द्वारा राजस्व प्राप्ति।

भारतीय वन अधिनियम 1878 द्वारा वनों पर पूर्ण राज्य नियंत्रण हुआ व जनजातीयां हाशिये पर आ गयी। इस कानून का उद्देश्य राजस्व व संसाधन दोहन को अधिकतम करना था। इसमें वनों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया—

1. **आरक्षित वन** — सबसे कड़ा नियंत्रण, समुदायों का प्रवेश लगभग वर्जित।
2. **संरक्षित वन** — सीमित अधिकार, अंतिम शक्ति राज्य के पास।
3. **ग्राम वन** — स्थानीय उपयोग के हेतु, पर वास्तविक अधिकार सीमित।

1865 की तुलना में 1878 का कानून अधिक राजस्व-केन्द्रित, दमनकारी और उपयोग-नियंत्रित था। इसने कृषि, चराई, ईंधन-लकड़ी, संग्रहण जैसी पारंपरिक जनजातीय आजीविका को अपराध की श्रेणी में धकेल दिया और राज्य का वन पर एकाधिकार स्थापित किया।

1927 का भारतीय वन अधिनियम औपनिवेशिक सरकार द्वारा वनों पर केन्द्रित एवं सख़्त नियंत्रण स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण चरण था। इस कानून की सबसे कठोर व्यवस्था चरवाहों से जुड़ी थी। आरक्षित वनों में बिना अनुमति पशु चराना प्रतिबंधित किया गया, जिससे घुमंतू पशुपालक समुदायों की पारंपरिक आजीविका को अपराध की श्रेणी में ला दिया गया। साथ ही, अधिनियम ने वन उपज के परिवहन पर कड़ा नियंत्रण लागू किया। लकड़ी सहित किसी भी वन उत्पाद को एक स्थान से दूसरी जगह ले जाने पर सरकारी अनुमति (पर्मिट) अनिवार्य कर दी गई। इससे सरकार को कटाई, बिक्री और परिवहन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया।

जहाँ पहले वन समुदायों की आजीविका, संस्कृति और परंपरा से जुड़े सामुदायिक संसाधन थे, वहीं इस अधिनियम ने उन्हें राज्य की संपत्ति घोषित कर दिया, जिसका उद्देश्य मुख्यतः व्यावसायिक दोहन और राजस्व वृद्धि था।

वनों व भूमि से वंचित हो जाने से जनजातियों पर सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा उनकी पहचान व अस्तित्व पर सवाल खड़े होने लगे ।उनकी पारंपरिक आजीविका, जीवन शैली, सांस्कृतिक प्रथाएँ, सामुदायिक न्याय प्रणाली व परंपराएँ प्रभावित हुईं।औपनिवेशिक नीतियाँ न केवल आर्थिक व प्रशासनिक थीं, बल्कि वे जनजातीय संस्कृति, पहचान व अस्तित्व के लिए भी हानिकारक साबित हुईं। इन कारणों से पारंपरिक स्व-निर्भरता, पहचान, सामुदायिक स्वायत्तता पर असर हुआ और कई जनजातीय समुदाय गरीबी, भू-स्वामित्व व आजीविका संकट की ओर धकेले गए।

14.4.3 प्रतिरोध एवं विद्रोह

औपनिवेशिक दमन, भूमि व जंगलों से वंचित करने, सामाजिक व सांस्कृतिक उपेक्षा सबके विरुद्ध जनजातीय समुदायों ने संगठित रूप से विरोध किया। निम्न प्रमुख विद्रोह व प्रतिरोध आन्दोलन इस दौर के महत्वपूर्ण चरण थे:

1. **तमाड़ विद्रोह (1789–1832) -** तमाड़ विद्रोह झारखंड के छोटानागपुर क्षेत्र में ओरांव, मुंडा, हो और कोल जैसी जनजातियों द्वारा भूमि अधिकारों के हनन, करों के बोझ, जबरन श्रम तथा दिकुओं (बाहरी लोगों) के अतिक्रमण के खिलाफ चलाया गया एक दीर्घकालीन संघर्ष था। यह विद्रोह अंग्रेजों की भूमि नीतियों, जमींदार-साहूकारों के शोषण और मिशनरियों की बढ़ती दखलंदाज़ी के प्रति असंतोष से उत्पन्न हुआ। इस आंदोलन का नेतृत्व भोला नाथ सहाय तथा बाद में कुछ क्षेत्रों में गंगा नारायण सिंह ने संभाला। आदिवासियों ने 'डिकू' कहकर बाहरी लोगों के विरुद्ध प्रतिरोध किया, कई स्थानों पर उनके घरों में आगजनी, विरोधी समूहों पर हमले और लूटपाट की घटनाएँ भी हुईं।1832 तक यह सात बार भड़का और

अंततः ब्रिटिश सरकार ने 1832–33 में कठोर सैन्य कार्रवाई कर इसे दबा दिया। विद्रोह भले ही असफल घोषित हुआ लेकिन इसने प्रशासनिक सुधारों के लिए नीव तैयार की।

2. **खरवार (सफ़ा होर) आंदोलन (1870-1880) -** खरवार आंदोलन, जिसे सफ़ा होर आंदोलन भी कहा जाता है, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक प्रमुख अहिंसक आदिवासी प्रतिरोध था। इसकी शुरुआत छोटानागपुर (बिहार-झारखंड) क्षेत्र में संथाल समुदाय द्वारा की गई, जिसके प्रारंभिक नेता भागीरथ मांझी थे। भागीरथ मांझी ने आदिवासियों को एक ईश्वर की अवधारणा अपनाने तथा राम-पूजा के माध्यम से स्वतंत्रता की चेतना जगाई। उन्होंने ब्रिटिश शासन व जमींदारों के अधिकार को चुनौती देते हुए स्वयं को बौंसी गाँव का राजा घोषित किया और राजस्व अंग्रेजों को देने से इंकार करते हुए स्वयं वसूली प्रणाली चलानी शुरू की। सफ़ा होर आंदोलन ने आदिवासी समाज में धार्मिक एकता, आत्मनिर्भरता और औपनिवेशिक सत्ता से बहिष्कार की भावना को सशक्त किया और आगे के जनजातीय आंदोलनों के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया।

3. **संथाल विद्रोह(1855–1856) -** जिसे संथाल हूल भी कहा जाता है, 1855–1856 के दौरान वर्तमान झारखंड एवं पश्चिम बंगाल क्षेत्र में संथाल जनजाति द्वारा ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, जमींदारों और महाजनी शोषण के विरुद्ध किया गया एक विशाल आंदोलन था। इस क्रांति का नेतृत्व सिद्धो और कान्हू मुर्मू सहित उनके भाई चाँद और भैरव ने किया।विद्रोह का मुख्य कारण संथालों पर लगने वाला भारी कर, जमींदारों-साहूकारों द्वारा भूमि हड़पना, तथा ब्रिटिश प्रशासन द्वारा संरक्षण न होना था। दमन और शोषण से त्रस्त संथालों ने हथियार उठाए और हजारों की संख्या में संगठित होकर औपनिवेशिक शासन को चुनौती दी। ब्रिटिश सेना ने इस आंदोलन को छह महीने के भीतर कठोर रूप से दबा दिया। ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार लगभग 15,000–30,000 संथाल मारे गए, कुछ विवरण इसे इससे भी अधिक बताते हैं। संथाल हूल को पूरी तरह दबाने के बाद भी इसकी व्यापकता ने अंग्रेजों को मजबूर किया कि वे संथालों के लिए 'संथाल परगना' नामक अलग प्रशासनिक क्षेत्र बनाएँ, जहाँ उन्हें सीमित स्वायत्तता और भूमि संरक्षण मिला। यहाँ मांझी (ग्राम प्रमुख) को अधिक अधिकार दिए गए, गैर-आदिवासियों द्वारा भूमि हड़पने पर रोक लगी, संथाल सीधे शासन से संवाद कर सके, और पुलिस-जमींदार-महाजनी नियंत्रण काफी कमजोर हुआ।संथाल हूल 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले का सबसे महत्वपूर्ण आदिवासी प्रतिरोध आंदोलन माना जाता है, जिसने भारतीय स्वतंत्रता चेतना को गहन रूप से प्रभावित किया।

4. **बीरसा मुंडा(1899–1900) -** मुंडा उलगुलान ब्रिटिश शासन, ज़मींदारी व्यवस्था, महाजन-शोषण तथा पारंपरिक भूमि अधिकारों पर होने वाले अतिक्रमण के विरुद्ध एक संगठित आदिवासी आंदोलन था। बिरसा मुंडा, जिन्हें 'धरती आबा' और 'बीरसा भगवान' कहा जाता है, का जन्म 15 नवम्बर 1875 को झारखण्ड के उलिहातू में हुआ था। यह विद्रोह मुख्यतः खुंटकट्टी (सामूहिक जमीन अधिकार) व पारंपरिक खेती-व्यवस्था पर ब्रिटिश हस्तक्षेप तथा बेगार-उत्पीड़न के विरुद्ध उठाया गया। आंदोलन के दमन के दौरान बिरसा को गिरफ्तार किया गया तथा 1900 में जेल में उनकी मृत्यु हो गई। उलगुलान के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार को आदिवासी भूमि संरक्षण की आवश्यकता स्वीकार करनी पड़ी, और इसी दिशा में आगे चलकर 1908 में छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम लागू हुआ, जिसने आदिवासी भूमि के गैर-आदिवासियों को हस्तांतरण पर प्रतिबंध और भूमि संरक्षण की कानूनी गारंटी प्रदान की।

5. **मिदनापुर आंदोलन-** 1918 से 1924 के बीच मिदनापुर, जंगलमहल, बांकुरा और सिंहभूम क्षेत्र में किसानों तथा आदिवासी श्रमिकों ने जमींदारी शोषण के खिलाफ संगठित प्रतिरोध किया। आंदोलन का केंद्र मुख्यतः मिदनापुर ज़मींदारी कंपनी थी, जो यूरोपीय जमींदारों द्वारा संचालित थी और स्थानीय लोगों से वनों की कटाई व लकड़ी ढुलाई के लिए अत्यधिक कम मजदूरी पर काम करवाती थी। विरोध बढ़ने पर कंपनी ने बलपूर्वक हड़ताल तोड़ने का प्रयास किया, जिससे संघर्ष और उग्र हो गया। यह आन्दोलन आदिवासी मज़दूरों की आर्थिक दोहन, वन संसाधनों पर कंपनी के अधिकार और श्रम शोषण के विरुद्ध महत्वपूर्ण जनउभार माना जाता है।

6. **ताना भगत आंदोलन (1914-1919)-** ताना भगत भारत के झारखंड का एक आदिवासी समुदाय है।ताना भगत आंदोलन अप्रैल 1914 में जतरा भगता के नेतृत्व में शुरू हुआ था ताना भगत आंदोलन छोटानागपुर के उरांव समुदाय में हो रही बुरी प्रथाओं को रोकने और जमींदारों की नीतियों का विरोध करने के लिए शुरू किया गया था जो सीधे उरांव लोंगों का शोषण कर रहे थे। इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए लोगों ने अहिंसा को अपनी रणनीति के रूप में अपनाया क्योंकि इस आंदोलन के अनुयायी गांधी जी से प्रभावित थे।

7. **मुरिया विद्रोह – 1876** में वर्तमान बस्तर (छत्तीसगढ़) क्षेत्र में मुरिया जनजाति द्वारा किया गया एक सशस्त्र और तीव्र आदिवासी विद्रोह था। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य - जंगलों पर होते सरकारी कब्जे तथा अधिकारों की समाप्ति का विरोध,जनजातीय सामुदायिक भूमि व्यवस्था, परम्परागत जीवन-प्रणाली और संस्कृति की रक्षा,वन कानूनों, जबरन कर, मजदूरी (बेगारी) और राजस्व बढ़ोतरी का प्रतिरोध। यह पूर्णतः हिंसक प्रतिरोध के रूप में उभरा, जहाँ मुरिया आदिवासियों ने अंग्रेजी प्रशासन तथा ठेकेदारी-जमींदारी व्यवस्था को चुनौती दी। विद्रोह को ब्रिटिश शासन ने कठोर सैन्य दमन के साथ दबा दिया, हालांकि इससे बस्तर क्षेत्र में आगे चलकर बस्तर विद्रोह (1910) जैसे व्यापक आंदोलन के लिएभूमि तैयार हुई।

14.4.4 स्वतंत्रता के पश्चात संवैधानिक तथा कानूनी मान्यता एवं अधिकार

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजातियों (STs) के कल्याण, संरक्षण और विकास के लिए अनेक विशेष प्रावधान किए गए हैं। ये प्रावधान राज्य को यह दायित्व सौंपते हैं कि वह जनजातीय समुदायों के हितों की "विशेष देखभाल" करे। कुछ मुख्य प्रावधान इस प्रकार हैं:

1. समानता के अधिकार के अंतर्गत विशेष व्यवस्थाएँ (अनुच्छेद 15, 16)-

अनुच्छेद 15(1): राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15(4): यह राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े नागरिकों, जिनमें अनुसूचित जनजातियाँ शामिल हैं, की उन्नति के लिए कोई भी विशेष उपबंध करने का अधिकार देता है।

अनुच्छेद 16(4): यह राज्य को सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए, जो राज्य के अंतर्गत पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं रखते, आरक्षण का प्रावधान करने का अधिकार देता है।

2. नीति-निर्देशक तत्व (अनुच्छेद 46)-

यह अनुच्छेद राज्य को निर्देश देता है कि वह समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष सावधानी से बढ़ावा देगा और उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।

3. प्रशासनिक एवं वित्तीय प्रावधान- अनुच्छेद 244

अनुच्छेद 244(1) एवं पाँचवीं अनुसूची: यह अनुसूचित क्षेत्रों (असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम को छोड़कर) के प्रशासन से संबंधित है। इसमें राज्यपाल को विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जैसे कि संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी अधिनियम को अनुसूचित क्षेत्रों में लागू होने से रोकना या संशोधित करना, यदि वह जनजातीय हितों के अनुकूल न हो।

अनुच्छेद 244(2) एवं छठी अनुसूची: यह असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्त जिला परिषदों और क्षेत्रीय परिषदों के गठन का प्रावधान करती है। इन परिषदों को भूमि, वन, शिक्षा, न्याय प्रशासन आदि पर कानून बनाने की विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त हैं।

अनुच्छेद 275(1)- इसके तहत केंद्र सरकार जनजातीय कल्याण और प्रशासन को सुदृढ़ बनाने के लिए विशेष अनुदान संबंधी राज्यों को दे सकती है।

अनुच्छेद 164- इसके अनुसार बिहार, मध्य प्रदेश और ओडिशा (तत्कालीन उड़ीसा) जैसे राज्यों, जहाँ जनजातीय जनसंख्या अधिक है, में एक मंत्री को जनजातीय कल्याण का प्रभार दिया जाएगा।

4. राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए सुरक्षा उपाय:

अनुच्छेद 330- लोक सभा में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण।

अनुच्छेद 332- राज्यों की विधान सभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण।

अनुच्छेद 243(घ)- पंचायती राज संस्थाओं और नगर पालिकाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान।

5. सेवाओं में अवसर- अनुच्छेद 335- यह अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सरकारी सेवाओं और पदों पर दावे को मान्यता देता है। राज्य इनके लिए नियुक्तियों और पदोन्नति में आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है।

6. संस्थागत व्यवस्थाएँ- अनुच्छेद 338-क- राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग। मूल संविधान में अनुच्छेद 338 के तहत एक विशेष अधिकारी (आयुक्त) का प्रावधान था।65 वें संविधान संशोधन (1990) के पश्चात् इसे 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति का राष्ट्रीय आयोग' नाम से जाना जाता है। 89वाँ संविधान संशोधन (2003)-2004 में दो अलग-अलग SC तथा ST आयोगों में बदल दिया गया - राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग(एनसीएससी-अनुच्छेद 338) और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (एनसीएसटी-अनुच्छेद 338-क)

अनुच्छेद 339- यह केंद्र सरकार को अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर नियंत्रण रखने तथा राज्यों को निर्देश देने का अधिकार देता है।

7. पाँचवीं अनुसूची के विशेष प्रावधान- राज्यपाल की शक्तियाँ- अनुच्छेद 244(1) अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह संसद या राज्य विधानमंडल के किसी भी कानून को जनजातीय हितों के अनुरूप संशोधित करके लागू कर सकता है या लागू होने से रोक सकता है।

जनजातीय सलाहकार परिषद (Tribes Advisory Council - TAC)- अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य में एक जनजातीय सलाहकार परिषद गठित की जानी अनिवार्य है, जिसके कम से कम तीन-चौथाई सदस्य अनुसूचित जनजाति के विधायक या प्रतिनिधि होते हैं। यह परिषद राज्यपाल को जनजातीय कल्याण संबंधी मामलों पर सलाह देती है। राज्यपाल को राष्ट्रपति के लिए अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर वार्षिक रिपोर्ट तैयार करनी होती है।

8. छठी अनुसूची के अंतर्गत स्वायत्तता -अनुच्छेद 244(2) और 275(1) - यह पूर्वोत्तर राज्यों के निर्दिष्ट जनजातीय क्षेत्रों को स्वायत्त जिला परिषदों **(Autonomous District Councils - ADCs)** और क्षेत्रीय परिषदों**(Autonomous Regional Councils)** के माध्यम से विस्तृत विधायी, न्यायिक, वित्तीय और प्रशासनिक शक्तियाँ प्रदान करती है। ये परिषदें भूमि, वन, शिक्षा, सामाजिक रीति-रिवाजों आदि पर कानून बना सकती हैं, कर लगा सकती हैं और न्याय का प्रशासन कर सकती हैं।

वन अधिकार अधिनियम, 2006 (The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006) - अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य पारंपरिक वनवासियों के ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने हेतु एक महत्त्वपूर्ण कानून है। इसका मुख्य उद्देश्य इन समुदायों के वन भूमि पर व्यक्तिगत एवं सामुदायिक अधिकारों (CFRs) को मान्यता देना है। अधिनियम के तहत 4 हेक्टेयर तक भूमि पर खेती के पट्टे, वन संसाधनों के प्रबंधन का सामुदायिक अधिकार, तथा गाँवों में आवश्यक विकासात्मक कार्यों के लिए भूमि उपयोग का प्रावधान है। पात्रता हेतु अनुसूचित जनजाति समुदायों को वन-निवासी होना आवश्यक है, जबकि अन्य पारंपरिक वनवासियों (OTFD) को तीन पीढ़ियों (75 वर्ष) से वन पर आश्रित होना होगा। दावा प्रक्रिया की शुरुआत ग्राम सभा से होती है, जिसके बाद उप-मंडल (SDLC) व जिला स्तरीय समितियाँ (DLC) दावों का सत्यापन करती हैं। यह अधिनियम वन संरक्षण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए उनकी आजीविका को सुरक्षा प्रदान करता है। हालाँकि, धीमी कार्यान्वयन प्रक्रिया, जागरूकता की कमी और विभागीय अड़चनें प्रमुख चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

14.5 अनुसूचित जनजातियों के सम्मुख प्रमुख चुनौतियाँ और संकट

1. **विस्थापन:** विकास परियोजनाओं (बाँध, खान, उद्योग) के कारण बड़े पैमाने पर जनजातीय समुदायों का उनकी जमीन और प्राकृतिक आवास से विस्थापन हुआ है। पुनर्वास अपर्याप्त है, जिससे गरीबी, बेरोजगारी और दरिद्रता कम नहीं हो रही है।

2. **जनजातीय भूमि पर अधिकार से वंचना:** धोखाधड़ी, जबरन कब्ज़ा, बंधक रखने और अतिक्रमण के माध्यम से जनजातीय भूमि का व्यापक हस्तांतरण हुआ है। कानूनी खामियों और प्रशासनिक इच्छाशक्ति की कमी से इस समस्या का समाधान पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है।

3. **कर्ज:** गरीबी, शिक्षा की कमी और सुगम वैकल्पिक ऋण स्रोतों के अभाव के कारण जनजातीय समुदाय साहूकारों के चंगुल में फँस जाते हैं। ऊँची ब्याज दरें उन्हें दरिद्रता और कर्जबंधन की ओर धकेल रही हैं।

4. **स्थानांतरित कृषि:** यह पारंपरिक आजीविका पद्धति पारिस्थितिक रूप से अस्थिर है और लाखों जनजातीय परिवार इस पर निर्भर रहे हैं। इसे नियंत्रित और रूपांतरित करने के प्रयास तेज करना आवश्यक हैं।

5. **वन अधिकारों से वंचित :** राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभयारण्यों के विकास के कारण उनके पारंपरिक वन अधिकार सीमित हुए हैं, जिससे उनकी आजीविका और अस्तित्व पर संकट आता है।

6. **निम्न साक्षरता और उच्च ड्रॉप-आउट दर:** जनजातीय समुदायों में साक्षरता (विशेषकर महिला साक्षरता) राष्ट्रीय औसत से काफी कम है और स्कूल छोड़ने की दर अधिक है, जिससे विकास में अंतर बढ़ रहा है।

7. **अपर्याप्त और दुर्गम स्वास्थ्य सेवाएँ:** गरीबी, कुपोषण, स्वच्छता की कमी और स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच न होने के कारण जनजातीय समुदायों में रुग्णता और रोगों का बोझ अधिक है।

8. **पोषण की कमी और बीमारियाँ:** आहार में पोषक तत्वों की कमी और कुपोषण जनजातीय महिलाओं और बच्चों में व्याप्त है, जिससे उनकी प्रतिरोधक क्षमता कम होती है और स्वास्थ्य संबंधी जोखिम बढ़ते हैं।

9. **गरीबी:** जनजातीय आबादी में गरीबी का स्तर राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है। यह असंतोष और आंदोलनों की एक प्रमुख जड़ है, जो सरकार की विकास योजनाओं के लाभों केक सही प्रवाह की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

10. **बौद्धिक अधिकारों को खतरा:** जनजातीय समुदायों का पारंपरिक ज्ञान और जैविक संसाधनों पर दावा पेटेंट और बौद्धिक संपदा अधिकारों के तहत निजीकरण और वाणिज्यिक शोषण के जोखिम में है, बिना उन्हें मान्यता या लाभ दिए।

11. **वन गाँवों की उपेक्षा:** देश के दूरस्थ वन गाँवों में बुनियादी ढाँचा (सड़क, बिजली, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य) पूरी तरह से अनुपस्थित है। वन और राजस्व विभागों के बीच समन्वय की कमी के कारण ये गाँव विकास और सेवाओं से वंचित हैं।

14.6 अनुसूचित जनजातियों के विकास हेतु सरकार की प्रमुख योजनायें

1. **प्रधानमंत्री जनजाति आदिवासी न्याय महाअभियान (PM JANMAN)-:** यह 15 नवंबर 2023 (जनजातीय गौरव दिवस पर) प्रारम्भ हुई। इसका मुख्य उद्देश्य: देश के 18 राज्यों और 1 केंद्रशासित प्रदेश में निवासरत 75 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (PVTGs) का समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास करना है। इसका लक्ष्य सुरक्षित आवास, स्वच्छ पेयजल, शिक्षा-स्वास्थ्य तक पहुँच, सड़क-दूरसंचार संपर्क, विद्युतीकरण और स्थायी आजीविका के अवसर उपलब्ध कराना है।

2. **एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (EMRS) -:** इसकी शुरुआत 1997-98 में हुई इसका मुख्य उद्देश् दूरदराज के जनजातीय क्षेत्रों में ST बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना ताकि वे उच्च व व्यावसायिक शिक्षा एवं रोजगार के अवसर प्राप्त कर सकें। इसका नया लक्ष्य 2022 तक, 50% से अधिक ST जनसंख्या और कम से कम 20,000 जनजातीय व्यक्तियों वाले प्रत्येक ब्लॉक में एक EMRS स्थापित करना है।
3. **भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिसंघ** ट्राइफेड **(TRIFED) -:**इसकी स्थापना 1987 में हुई थी और यह जनजातीय कार्य मंत्रालय के अधीन कार्यरत एक राष्ट्रीय स्तरीय शीर्ष संस्था है, इसका मूल उद्देश्य धातु शिल्प, बुनाई, मृत्तिका कला एवं चित्रकारी जैसे जनजातीय उत्पादों के विपणन विकास के माध्यम से देश की जनजातीय आबादी का सामाजिक-आर्थिक विकास करना है। 2021 में शुरू किए गए 'संकल्प से सिद्धि - मिशन वन धन' के अंतर्गत ट्राइफेड विभिन्न मंत्रालयों की योजनाओं के विलय द्वारा मिशन मोड में कार्य करते हुए जनजातीय लोगों के लिए स्थायी आजीविका स्थापित करना चाहता है, जिसके तहत वन धन विकास केंद्र (VDVKs), हाट बाजार, ट्राईफूड पार्क जैसी संरचनाओं का निर्माण लक्षित है। ट्राइफेड की प्रमुख योजनाओं में वन धन विकास योजना (2018) शामिल है, जो जनजातीय संग्राहकों को उद्यमी बनाने हेतु वन धन विकास केंद्र क्लस्टर स्थापित करती है; लघु वनोपज (MFP) के लिए न्यूनतम समर्थन मूलय (MSP) की व्यवस्था, जो मुख्यतः अनुसूचित जनजाति के संग्राहकों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा कवच का काम करती है; 'टेक फॉर ट्राइबल्स' पहल, जिसका लक्ष्य 5 करोड़ जनजातीय उद्यमियों का निर्माण करना है; ट्राईफूड योजना (2020), जो लघु वनोपज के मूल्य संवर्द्धन पर केंद्रित है; तथा ग्राम एवं डिजिटल संपर्क पहल, जो योजनाओं को जमीनी स्तर तक पहुँचाने का कार्य करती है। पिछले दो वर्षों में, इन प्रयासों के माध्यम से ट्राइफेड ने जनजातीय अर्थव्यवस्था में लगभग 3000 करोड़ रुपये का अंतःक्षेपण किया है और वन धन स्टार्ट-अप्स के माध्यम से रोजगार सृजन को गति प्रदान की है।
4. **राष्ट्रीय सिकल सेल एनीमिया उन्मूलन मिशन-:** इसका शुभारंभ 1 जुलाई 2023 को प्रधानमंत्री द्वारा किया गया। इसका लक्ष्य 2047 तक देश से इस आनुवंशिक रोग को समाप्त करना है। यह मिशन विशेष रूप से जनजातीय समुदायों पर केंद्रित है, जहाँ इस रोग का प्रसार सर्वाधिक है। रणनीति के तीन मुख्य स्तंभ हैं: 0-40 वर्ष आयु वर्ग की सार्वभौमिक स्क्रीनिंग, आनुवंशिक परामर्श द्वारा रोगग्रस्त जन्म रोकना, और पहचाने गए रोगियों का समुचित प्रबंधन व देखभाल।
5. **जन जातीय गौरव दिवस (Janjatiya Gaurav Divas) -:** यह प्रतिवर्ष 15 नवंबर को मनाया जाता है। यह दिन भारत के जनजातीय समुदायों के योगदान, संस्कृति और विरासत को समर्पित है। इस तिथि का चयन इसलिए किया गया क्योंकि 15 नवंबर 1875 को भगवान बिरसा मुंडा का जन्म हुआ था, जो एक प्रमुख जनजातीय स्वतंत्रता सेनानी और लोकनायक थे। इस दिवस का उद्देश्य देश

के जनजातीय नायकों और उनके संघर्ष को याद करना, उनकी समृद्ध सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करना और राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका के प्रति जागरूकता बढ़ाना है।

14.7 साराशं

स्वतंत्रता के बाद के भारत ने जनजातीय विकास को एक प्रमुख नीतिगत लक्ष्य के रूप में स्थापित किया। इसके लिए एक बहु-आयामी रणनीति अपनाई गई, जिसमें कल्याणकारी योजनाओं से लेकर सशक्तिकरण उपायों तक शामिल रहे हैं।अनुसूचित जनजातियों का विकास एक सरल रैखिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक न्याय, सांस्कृतिक अखंडता, आर्थिक समृद्धि और राजनीतिक सशक्तिकरण का एक जटिल समीकरण है। संवैधानिक ढांचा मजबूत है और कई नीतिगत हस्तक्षेपों ने सकारात्मक प्रभाव डाला है। हालाँकि, विकास की वर्तमान अवधारणा और जनजातीय जीवन दर्शन के बीच एक मूलभूत तनाव बना हुआ है।

भविष्य का रास्ता सम्मान, संरक्षण और सहभागिता के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। जनजातीय समुदायों को 'विकास के प्राप्तकर्ता' के बजाय 'विकास के सह-निर्माता' के रूप में देखना होगा। उनकी पारंपरिक संस्थाओं, ज्ञान प्रणालियों और प्रकृति के साथ सामंजस्य को मान्यता देकर ही एक ऐसा समावेशी और टिकाऊ विकास मॉडल बनाया जा सकता है, जो न केवल जनजातीय समुदायों, बल्कि पूरे राष्ट्र के लिए समृद्धि लाए। अंततः, जनजातीय विकास की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम कितनी गंभीरता से "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "जियो और जीने दो" के उनके दर्शन को अपने राष्ट्रीय विकास के एजेंडे में आत्मसात कर पाते हैं।

14.8 शब्दावली

1. **जनजाति (Tribe) -** ऐसा समष्टिगत सामाजिक समूह जिसकी अपनी विशिष्ट भाषा, तकनीक, संस्कृति एवं भू-क्षेत्रीय पहचान हो।
2. **अनुसूचित जनजाति (Scheduled Tribe) -** संविधान के अनुच्छेद 342 में अधिसूचित वह जनजातीय समूह जिसे कानूनी मान्यता प्रदान की गई हो।
3. **पीवीटीजी (PVTG) -** अनुसूचित जनजातियों में सर्वाधिक पिछड़े, अल्प जनसंख्या एवं तकनीकी रूप से पिछड़े समूह।
4. **विमुक्त जनजाति (DNTs) -** पूर्व में उपनिवेशकालीन 'अपराधी जनजाति अधिनियम 1871' के अंतर्गत चिह्नित तथा 1952 में मुक्त घोषित समुदाय।
5. **झूम कृषि / जूम -** पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाई जाने वाली परंपरागत स्थानांतरित खेती की पद्धति।
6. **राष्ट्रीय उपवन सिद्धांत -** बेरियर एल्विन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत जिसमें आदिवासी क्षेत्रों को बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त संरक्षित क्षेत्र मानने की अवधारणा।
7. **दिकू -** बाहरी/गैर-जनजातीय व्यक्ति, जिसे स्थानीय जनजातियाँ शोषणकर्ता की संज्ञा देती थीं।

14.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. 89वाँ संशोधन (2003) में क्या बदलाव हुआ?

a) SC-ST आरक्षण समाप्त b) ST को अलग आयोग

c) पेसा अधिनियम लागू d) वन अधिकार बढ़ा

2. लोकसभा में ST के लिए सीट आरक्षण किस अनुच्छेद में है?

a) 320 b) 330 c) 335 d) 164

3. संविधान का कौन-सा अनुच्छेद राज्य को अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शैक्षणिक-आर्थिक हितों को बढ़ावा देने हेतु निर्देशित करता है?

a) अनुच्छेद 15 b) अनुच्छेद 46

c) अनुच्छेद 335 d) अनुच्छेद 244

4. संसद/विधानसभा के किसी कानून को जनजाति हित में रोकने की शक्ति किसे है? (5th Schedule)

a) राष्ट्रपति b) प्रधानमंत्री

c) राज्यपाल d) सर्वोच्च न्यायालय

5. छठी अनुसूची के क्षेत्रों को किस रूप में जाना जाता है?

a) राज्य के भीतर राज्य b) द्वैत संविधान

c) संघीय आरक्षित क्षेत्र d) विशेष क्षेत्र

उत्तर सूची

1 - **b**, 2 - **b**, 3 - **b**, 4 - **c**, 5 - **a**

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत सरकार (2011). *जनगणना रिपोर्ट 2011*. रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त, भारत।
2. *भारत की जनजातीय नीतियों पर सरकारी रिपोर्टें*
3. *(PVTG सूची, जनजातीय मामलों का मंत्रालय – Tribal Affairs Ministry Reports)*
4. *सामाजिक और सांस्कृतिक मानवशास्त्र की मूल पुस्तकें*
5. *People of India Series — Anthropological Survey of India*
6. *सामुदायिक वनाधिकार, FRA-2006 से संबंधित लेख व शोध-पत्र*
7. *जनजातीय साहित्य, लोक-कथा, गीत एवं कला-रूपों का अध्ययन*
8. *झारखंड/ओड़िशा/नागालैंड/मध्य भारत के आंदोलन इतिहास पर शोध सामग्री*
9. *वृत्तचित्र — Santhal Hul, Adivasi India, The Burning Forests आदि*

14.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय जनजातियों की परिभाषा, विशेषताएँ तथा अनुसूचित जनजाति की संवैधानिक अवधारणा का विवेचन कीजिए।
2. विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTGs) की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और चुनौतियों का विश्लेषण कीजिए।
3. भारतीय वन अधिनियम (1865–1927) की औपनिवेशिक नीतियों ने जनजातीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया — विस्तृत रूप में स्पष्ट कीजिए।
4. संथाल हूल, तमाड़ और सफ़ा होर आंदोलनों के ऐतिहासिक महत्व एवं जनजातीय प्रतिरोध स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
5. विमुक्त एवं खानाबदोश जनजातियों के संदर्भ में रेनके आयोग की प्रमुख सिफारिशें एवं वर्तमान प्रासंगिकता पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।
6. पूर्व-औपनिवेशिक जनजातीय जीवन-शैली और आधुनिक विकास मॉडल के बीच उत्पन्न संघर्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

14.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. गहलोत, आर. एस., और भारद्वाज, जे. सी. (2018). *भारत में जनजातीय विकास: चुनौतियाँ और अवसर*. नई दिल्ली: के. के. प्रकाशन।
2. राघवन, वी. (2017). *औपनिवेशिक नृवंशविज्ञान और भारत में जनजातीय पहचान का निर्माण*. इतिहास और समाज के अध्ययन के लिए केंद्र।
3. शर्मा, के. एल. (2019). *भारतीय संविधान और अनुसूचित जनजातियाँ*. जर्नल ऑफ़ कॉन्स्टिट्यूशनल स्टडीज, 12(2), 45-67।
4. म्हात्रे, एस., और मिश्रा, आर. (2020). *भारत में जनजातीय शिक्षा: प्रगति और बाधाएँ*. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल डेवलपमेंट, 75, 102-118।
5. भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय (2023). *वन अधिकार अधिनियम के तहत दावों का स्थिति प्रतिवेदन*।
6. सुंदरम, ए. (2021). *भारत के जनजातीय समुदायों के स्वास्थ्य संकेतकों का विश्लेषण*. इंडियन जर्नल ऑफ़ पब्लिक हेल्थ, 65(3), 210-215।
7. फर्नांडीस, वाल्टर, और परांजपे, एस. (2019). *भारत में विकास परियोजनाओं से विस्थापन: एक अध्ययन*. नई दिल्ली: नॉर्थ ईस्ट सेंटर फॉर रिसर्च।
8. बोस, पी. के. (2022). *भारत में जनजातीय क्षेत्रों में पेसा अधिनियम और स्थानीय शासन: एक मूल्यांकन*. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 57(15), 34-42।

इकाई 15- युवा विकास

इकाई विवरण

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 युवा का अर्थ ,परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धांत

15.3.1 सकारात्मक युवा विकास(PYD)

15.4 भारत में युवा - इतिहास, महत्व एवं राष्ट्रीय भूमिका

15.4.1 इतिहास में युवा शक्ति के प्रतिमान एवं विविध आयाम

15.4.2 वर्तमान संदर्भ में युवाओं का महत्व एवं राष्ट्रीय भूमिका

15.5 युवा विकास में चुनौतियाँ

15.6 प्रमुख नीतियां एवं योजनायें

15.7 साराशं

15.8 शब्दावली

15.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

15.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.12 सहायक पाठ्य सामग्री

15.1 प्रस्तावना

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 27.5 प्रतिशत हिस्सा 15 से 29 वर्ष के आयु वर्ग का था। यह आँकड़ा स्पष्ट करता है कि भारत के पास एक विशाल जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend) है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत इसी आयु-आधारित सांख्यिकीय रूपरेखा को भारत की राष्ट्रीय युवा नीति (2014) ने भी युवा की औपचारिक परिभाषा के रूप में अपनाया है, जो नीति-निर्माण के लिए एक आवश्यक प्रशासनिक आधार प्रदान करती है।

हालाँकि, भारतीय सन्दर्भ में युवा की अवधारणा केवल आयु के आँकड़ों से कहीं आगे जाती है। यहाँ युवा होने का अर्थ सामाजिक रूप से स्वीकृत महत्वपूर्ण भूमिकाओं और दायित्वों को ग्रहण कर लेना है। उदाहरण के लिए, उच्च शिक्षा का समापन, एक स्थिर आजीविका का प्राप्त होना, विवाह बंधन में बँधना और स्वतंत्र रूप से घर-गृहस्थी की स्थापित करना – ये सभी वे मील के पत्थर हैं जो व्यक्ति को 'युवा' से 'प्रौढ़' की श्रेणी में प्रवेश करने का सामाजिक अधिकार प्रदान करते हैं। इस प्रकार, युवावस्था को एक 'भूमिका संक्रमण' (Role Transition) की गतिशील अवस्था के रूप में देखा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में जिस विकासात्मक चरण को एरिक एरिक्सन जैसे मनोवैज्ञानिक ने 'पहचान बनाम भूमिका संशय' (Identity vs. Role Confusion) की संज्ञा दी है। यह वह समय है जब व्यक्ति अपनी स्वतंत्र पहचान का निर्माण करता है, एक विश्वदृष्टि विकसित करता है और भविष्य के लक्ष्यों को परिभाषित करता है।

भारत की सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विरासत हमें सिखाती है कि यहाँ युवावस्था को बौद्धिक परिपक्वता और ज्ञान की पिपासा से भी परिभाषित किया जाता है। नचिकेता का जिज्ञासु मन, अष्टावक्र की तत्त्वदर्शी वाणी, आदि शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत तथा स्वामी विवेकानंद का विश्व–बंधुत्व का संदेश यह सिद्ध करते हैं आयु मात्र परिपक्वता का निर्णायक मापदंड नहीं है। यह मान्यता भारतीय चिंतन में गहरे तक रची-बसी है कि बौद्धिक प्रखरता, चारित्रिक दृढ़ता एवं आध्यात्मिक उन्नति के बिना केवल आयु की वृद्धि परिपक्वता का प्रमाण नहीं है। भारत की इतनी बड़ी युवा आबादी अपने इतने विस्तृत ज्ञान एवं उच्च मूल्यों को यदि आत्मसात कर ले तो निश्चित ही उसे पुनः विश्व गुरु बनने से कोई नहीं रोक सकता ।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम :-

- **युवा की बहुआयामी परिभाषा, विशेषताएँ एवं अवधारणा को समझना।**
- **समाज एवं राष्ट्र निर्माण में युवाओं की भूमिका का अध्ययन करना।**
- **जनसांख्यिकीय लाभांश, युवाओं की विविधता एवं चुनौतियों का विश्लेषण करना।**
- **युवा सशक्तिकरण हेतु नीतियों, कार्यक्रमों एवं समाधान विकल्पों का मूल्यांकन करना।**

15.3 युवा का अर्थ ,परिभाषा एवं विभिन्न सिद्धांत

तैत्तिरीयोपनिषद् **में युवा के गुणों को परिभाषित करते हुए एक श्लोक आता है -**

युवा स्यात् साधु युवाध्यायकः। आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः॥

युवा बनो- अच्छे व्यवहार वाला युवा, अध्ययनशील, विनम्र, दृढ़ निश्चयी और मज़बूत बनो।

यह वाक्य एक आदर्श समाज एवं राष्ट्र निर्माण के लिए युवा वर्ग की ऊर्जा के सदुपयोग हेतु सभी आवश्यक गुण दर्शाता है।

आयु श्रेणी के रूप में युवा- कई सरकारी संगठन, गैर-लाभकारी संस्थाएं और मीडिया युवा को जीवन की एक विशिष्ट अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं, जिसकी शुरुआत और समाप्ति की आयु निर्धारित होती है। राष्ट्रीय युवा नीति 2014 के अनुसार *15 से 29 वर्ष* के व्यक्तियों को युवा श्रेणी में रखा गया है वहीँ संयुक्त राष्ट्र (UN) की परिभाषा *15 से 24 वर्ष* को युवा आयु–वर्ग मानती है। यह भिन्नता इस बात का संकेत देती है कि युवावस्था केवल आयु का मामला नहीं, बल्कि अनेक सामाजिक एवं विकासात्मक कारकों का परिणाम हैं। युवाओं की पहचान

केवल जैविक विकास से निर्धारित नहीं होती, बल्कि मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक परिपक्वता भी इसकी विशेषताएँ हैं।

संक्रमणकालीन अवस्था के रूप में युवा- यह अवस्था शिक्षा समाप्त करने और आजीविका हेतु कार्य करने या अनुभव प्राप्त करने पर विचार करने से जुड़ी है। इस अवधि में व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं एवं कार्यों, पारिवारिक एवं साथियों के समर्थन, मादक द्रव्यों के उपयोग के संपर्क, शैक्षणिक एवं व्यावसायिक कार्यक्रमों तथा बाल-चिकित्सा से वयस्क स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं तक पहुँच में परिवर्तनों से गुजर सकता है।

सामाजिक निर्माण के रूप में युवा: युवा एक मूर्त सामाजिक उत्पादन की वस्तु हैं, जिसे 'युवावस्था' कहा जाता है। यह सामाजिक-स्थानिक रूप से विशिष्ट है, जहाँ विभिन्न संदर्भों में युवा का अर्थ भिन्न होता है। ऐसे लोग जो न तो पूर्णतः विकसित वयस्क और न ही पूर्णतः बच्चे माने जाते हैं, उन्हें युवा श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है। शोधकर्ता सुकारिह और टैनॉक (Sukarieh and Tannock) के अनुसार, सामाजिक श्रेणी के रूप में "युवा" की अवधारणा सदैव द्वैध दोहरी प्रकृति की रही है, जिसमें नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार की पूर्वधारणाएँ सम्मिलित हैं। एक ओर, कुछ लेखक युवाओं को "भविष्य का वादा" मानते हैं, जो अपने समाज की समस्याओं और कमियों के समाधान की आशा का प्रतिनिधित्व करते हैं। वहीं दूसरी ओर, युवाओं को अक्सर अनुभवहीन, विद्रोही या समस्या का स्रोत भी माना जाता रहा है। यह द्विआधारी रूढ़िबद्धता इस बात पर बल देती है कि सामाजिक निर्माण कैसे यह तय करते हैं कि किसे 'युवा' माना जाए और उनके प्रति धारणा कैसी हो।

भारतीय युवाओं का जनसांख्यिकीय स्तर

भारत की जनसंख्या और युवाओं का प्रतिशत अर्थात जनसांख्यिकीय लाभांश और उसका महत्व एक प्रमुख पहलू है। युवा, अर्थात् 15-29 वर्ष की आयु वर्ग में आने वाले लोग, भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 40% हिस्सा हैं। देश की जनसंख्या का यह सबसे ऊर्जावान और गतिशील वर्ग संभावित रूप से इसका सबसे मूल्यवान मानव संसाधन है। राष्ट्रीय युवा नीति, 2014 (NYP-2014) देश के युवाओं के समग्र विकास के प्रति प्रतिबद्धता को पुनः दर्शाती है, ताकि उनकी पूर्ण क्षमता को साकार किया जा सके और वे राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में रचनात्मक योगदान दे सकें।

युवा वर्ग एकसमान नहीं होता **लिंग (gender), क्षेत्र (region), वर्ग (class), भाषा, संस्कृति एवं सामाजिक पृष्ठभूमि तथा** विभिन्न चुनौतियां जैसे गरीबी, पारिवारिक हिंसा, अन्याय, युद्ध या संघर्ष के आधार पर इसमें विविधता पाई जाती है। ग्रामीण युवाओं की आवश्यकताएँ और चुनौतियाँ शहरी युवाओं से भिन्न हो सकती हैं। इसी प्रकार महिला युवा, दलित,आदिवासी युवा, LGBTQ+ युवा, आर्थिक रूप से वंचित युवा या तकनीकी रूप से सक्षम युवा सभी की सहभागिता, अवसर और विकास–क्षमताएँ अलग अलग रूप में सामने आती हैं। यह विविधता नीति निर्माण एवं विकास योजनाओं में समावेशिता की आवश्यकता को और अधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

इस संदर्भ में, विश्व बैंक की 2007 की रिपोर्ट "डेवलपमेंट एंड द नेक्स्ट जनरेशन" एक महत्वपूर्ण ढाँचा प्रस्तुत करती है। रिपोर्ट के अनुसार, युवावस्था में व्यक्ति वयस्कता की ओर बढ़ते हुए जीवन के कई निर्णायक परिवर्तनों से तेजी से गुजरता है। रिपोर्ट ने युवाओं के लिए छह प्रमुख संक्रमण चिन्हित किए हैं, जिनसे उन्हें गुजरना होता है:

a) शिक्षा (Learning)
b) काम (Working)
c) स्थान परिवर्तन (Moving)
d) स्वास्थ्य बनाए रखना (Maintaining Health)
e) परिवार शुरू करना (Starting a Family)
f) नागरिकता का पालन (Practising Citizenship)

युवावस्था और किशोरावस्था में अंतर- किशोरावस्था जीवन की एक विशिष्ट जैविक एवं विकासात्मक अवस्था है, जो मुख्यतः 10 से 19 वर्ष की आयु के बीच मानी जाती है। इसमें यौवनारंभ (प्यूबर्टी), तीव्र शारीरिक परिवर्तन, मनोवैज्ञानिक विकास और व्यवहार संबंधी आदतों के निर्माण पर ध्यान केंद्रित होता है। दूसरी ओर, युवावस्था एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक श्रेणी है, जो आमतौर पर 15-29 वर्ष के आयु वर्ग को संदर्भित करती है। यह शब्द केवल आयु नहीं, बल्कि ऊर्जा, ताजगी, साहस और गतिशीलता जैसे गुणों को दर्शाता है। संक्षेप में: किशोरावस्था एक सीमित जैविक चरण है, जबकि युवावस्था एक व्यापक सामाजिक अवधारणा है जिसमें आयु के साथ-साथ विशिष्ट गुणों एवं सामूहिक भूमिका का भी बोध होता है।

यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स (वाईडीआई) - यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स (YDI) मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) पर आधारित एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जिसका उद्देश्य युवाओं के विकास को मापना, तुलना करना और उनके लिए नीतिगत पहल को प्रेरित करना है। इसके मुख्य उद्देश्य हैं: विभिन्न देशों में युवा विकास की प्रगति का मापन एवं तुलनात्मक विश्लेषण करना। विकास के कमज़ोर क्षेत्रों की पहचान करके नीति निर्माण हेतु मार्गदर्शन देना तथा युवा-संबंधी विश्वसनीय डेटा के संग्रह को बढ़ावा देना है। वैश्विक वाईडीआई का सैद्धांतिक ढांचा अमर्त्य सेन और मार्था नसबौम की 'क्षमता दृष्टिकोण' पर आधारित है। इसके अनुसार, युवा विकास का अर्थ है युवाओं को उनकी क्षमताओं और योग्यताओं को विकसित करने के अवसर प्रदान करना, ताकि वे एक बेहतर जीवन जी सकें और आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नागरिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग ले सकें।

यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स के प्रमुख आयाम

1. **शिक्षा -** वाईडीआई में शिक्षा युवा विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है इसके संकेतक माध्यमिक शिक्षा में नामांकन, साक्षरता दर और **डिजिटल नेटिव दर हैं।**
2. **स्वास्थ्य एवं कल्याण -** इसके संकेतक युवा मृत्यु दर, मानसिक विकार, मद्यसार/नशीली दवाओं का दुरुपयोग, एचआईवी दर और वैश्विक कल्याण सूचकांक हैं।
3. **रोजगार एवं अवसर** – इसके संकेतक **नीट (NEET)** दर, युवा बेरोजगारी अनुपात, किशोर प्रजनन दर और वित्तीय संस्थान में खाता हैं।

ग्लोबल यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स (GYDI) के अंतर्गत युवा विकास के पाँच प्रमुख आयाम हैं — **शिक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण, राजनीतिक भागीदारी, रोजगार व अवसर, तथा नागरिक भागीदारी**। 183 देशों की प्रगति को 18 संकेतकों के माध्यम से मापता है। यह 15-29 वर्ष के आयु वर्ग को युवा मानता है। हाल ही में कॉमनवेल्थ सचिवालय द्वारा जारी की गई ग्लोबल यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स 2023 रिपोर्ट (2024 में प्रकाशित) के अनुसार, भारत 183 देशों में 122वें स्थान पर है।

भारत यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स (IYDI) जिसका विकासकर्ता राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान (आरजीएनआईवाईडी) यह राज्य-स्तरीय रिपोर्ट तैयार करता है जिसकी नवीनतम रिपोर्ट: भारत यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स एंड रिपोर्ट 2017 है। ग्लोबल वाईडीआई (GYDI) की तुलना में यह विशिष्ट है क्यूंकि इसमें छठा आयाम सामाजिक समावेशन भी जोड़ा गया है जो युवाओं के बीच समानता, न्याय और समावेशिता को भी मापता है ।

सतत विकास लक्ष्य (SDGs)- जिन्हें वैश्विक लक्ष्य भी कहा जाता है, वर्ष 2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा गरीबी समाप्त करने, पृथ्वी की रक्षा करने तथा 2030 तक सभी के लिए शांति और समृद्धि सुनिश्चित करने हेतु एक सार्वभौमिक आह्वान के रूप में अपनाए गए हैं। ये 17 लक्ष्य आपस में जुड़े हुए हैं और सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय आयामों के संतुलन के सिद्धांत पर आधारित हैं। आज विश्व में 10–24 आयु वर्ग के 1.8 अरब युवा हैं, जो इतिहास की सबसे बड़ी युवा आबादी है, जिनमें से लगभग 90% विकासशील देशों में रहते हैं और 2015 से 2030 के बीच लगभग 1.9 अरब युवा 15 वर्ष की आयु में प्रवेश करेंगे। यदि युवाओं को आवश्यक कौशल, अवसर और सक्षम वातावरण मिले, तो वे विकास, शांति और सुरक्षा के प्रमुख प्रेरक बन सकते हैं। युवाओं द्वारा संचालित संगठनों को 2030 एजेंडा को स्थानीय, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नीतियों में रूपांतरित करने हेतु प्रोत्साहित और सशक्त किया जाना आवश्यक है, क्योंकि वे SDGs के क्रियान्वयन, निगरानी, मूल्यांकन तथा सरकारों को जवाबदेह बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संयुक्त राष्ट्र युवाओं को अधिकार–धारक (rights-holders) मानते हुए पारदर्शिता, जवाबदेही और उत्तरदायित्व को बढ़ावा देता है। SDGs के संदर्भ में युवा *आलोचनात्मक चिंतक, परिवर्तनकर्ता, नवप्रवर्तक, संप्रेषक और नेतृत्वकर्ता* के रूप में विश्व विकास की धुरी सिद्ध हो सकते हैं।

15.3.1 सकारात्मक युवा विकास (Positive Youth Development – PYD)

यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो युवाओं को समस्या के रूप में देखने की बजाय एक संभावनाशील संसाधन के रूप में देखता है। यह न केवल एक दार्शनिक विचारधारा है बल्कि युवाओं के विकास हेतु अपनाई जाने वाली औपचारिक नीतियों एवं कार्यक्रमों का भी आधार है। PYD का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि युवा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से सशक्त बनते हुए वयस्क जीवन के लिए आवश्यक क्षमताएँ अर्जित कर सकें। USAID की परिभाषा के अनुसार सकारात्मक युवा विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत युवा अपने परिवार, समुदाय और सरकार के सहयोग से अपनी पूर्ण क्षमता तक पहुँचने हेतु सक्षम बनाए जाते हैं। PYD में युवा केवल लाभार्थी नहीं बल्कि सहभागी और परिवर्तनकारी शक्ति माने जाते हैं। यह

मॉडल युवाओं के भीतर संपत्तियों/संसाधनों (Assets) जैसे कौशल, ज्ञान, स्वास्थ्य और आत्मविश्वास का विकास करता है; उनके भीतर स्वायत्तता (Agency) अर्थात निर्णय लेने, लक्ष्य निर्धारित करने और समस्याओं से निपटने की क्षमता उत्पन्न करता है; सहज/सक्षम वातावरण (Enabling Environment) निर्मित करता है जिसमें युवा सुरक्षित, समर्थित और प्रोत्साहित महसूस करें; तथा समाज में उनकी सक्रिय भागीदारी और योगदान (Contribution) को बढ़ावा देता है ताकि वे राष्ट्र-निर्माण और सामुदायिक विकास में अर्थपूर्ण भूमिका निभा सकें।

पॉजिटिव यूथ डेवलपमेंट (PYD) के सिद्धांत - पॉजिटिव यूथ डेवलपमेंट एक दृष्टिकोण है जो युवाओं को केवल समस्याओं से बचाने के बजाय, उनकी क्षमताओं को सकारात्मक रूप से विकसित करने पर केंद्रित है। इसके प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं:

a) **सकारात्मकता एवं क्षमता केंद्रित दृष्टिकोण:** युवाओं की कमियों पर ध्यान देने के बजाय, उनकी शक्तियों, योग्यताओं और सकारात्मक परिणामों पर जोर दिया जाता है।
b) **युवा आवाज एवं सार्थक भागीदारी:** युवाओं को मूल्यवान साझेदार माना जाता है, जिन्हें कार्यक्रमों और समुदायों में निर्णय लेने की सार्थक भूमिका दी जाती है।
c) **समावेशी रणनीतियाँ:** केवल "उच्च-जोखिम" या "प्रतिभाशाली" युवाओं के बजाय, सभी युवाओं को समर्थन और शामिल किया जाता है, हालांकि विशिष्ट समस्याओं (जैसे हिंसा) को पहचानने और उनका समाधान करने पर भी ध्यान दिया जाता है।
d) **सामुदायिक सहयोग:** यह केवल कार्यक्रमों तक सीमित नहीं है, बल्कि संगठनात्मक परिवर्तन और सामुदायिक बदलाव के लिए सभी क्षेत्रों के सहयोग को बढ़ावा देता है।
e) **दीर्घकालिक प्रतिबद्धता:** यह युवाओं को उनके जीवन के पहले 20 वर्षों तक निरंतर और विकास के अनुकूल समर्थन प्रदान करने की प्रतिबद्धता पर आधारित है।

सकारात्मक युवा विकास के प्रमुख मॉडल

सकारात्मक युवा विकास (पीवाईडी) को व्यवहार में लाने के लिए कई मॉडल मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। ये मॉडल इस मान्यता पर आधारित हैं कि किशोर और युवा, विकास की चुनौतियों के बावजूद, पनपने की क्षमता रखते हैं। यहाँ प्रमुख मॉडलों का विवरण दिया गया है:

1. **विकासात्मक सम्पदा मॉडल (डेवलपमेंटल ऐसेट्स मॉडल) (बेन्सन एट अल., 2011) -** यह मॉडल युवाओं के सकारात्मक विकास और कल्याण के लिए आवश्यक 40 विकासात्मक सम्पदाओं (ऐसेट्स) की पहचान करता है, जो आंतरिक (20) और बाह्य (20) में विभाजित हैं। आंतरिक सम्पदाएँ: ये वे व्यक्तिगत गुण, कौशल और दृष्टिकोण हैं जो युवाओं को सही चुनाव करने और सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ने में मार्गदर्शन करते हैं। जैसे सकारात्मक पहचान, सामाजिक-भावनात्मक योग्यताएँ, सीखने की प्रतिबद्धता, योजना बनाना और निर्णय लेना, सकारात्मक मूल्य। बाह्य सम्पदाएँ युवाओं के आसपास के सहायक संबंध

और वातावरण हैं जो उन्हें सुरक्षा, मार्गदर्शन और सशक्तिकरण प्रदान करते हैं। उदाहरण परिवार व समुदाय का समर्थन, सकारात्मक मानदंड, सीमाएँ एवं अपेक्षाएँ, युवाओं की सार्थक भागीदारी के अवसर। मूलतः जितनी अधिक सम्पदाएँ एक युवा के जीवन में मौजूद होंगी, उसके जोखिमपूर्ण व्यवहार में शामिल होने की संभावना उतनी ही कम और सकारात्मक, स्वस्थ विकास की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

2**. 5सी/6सी मॉडल (The 5C/6C Model) (लर्नर एट अल., 2005, 2011)**

यह मॉडल एक "पनपते हुए युवा" की पहचान छह प्रमुख लक्षणों के रूप में करता है, जो सकारात्मक विकास के संकेतक हैं। ये हैं:

a) **सामर्थ्य (Competence/कम्पीटेंस):** शैक्षणिक, सामाजिक, व्यावसायिक और संज्ञानात्मक क्षेत्रों में दक्षता का भाव।

b) **आत्मविश्वास (Confidence/कॉन्फिडेंस):** आत्म-मूल्य और स्वयं की क्षमताओं में विश्वास (स्व-प्रभावकारिता) की एक वृहत भावना।

c) **जुड़ाव (Connection/ कनेक्शन):** परिवार, साथियों, स्कूल और समुदाय के साथ सकारात्मक तथा पारस्परिक संबंध।

d) **चरित्र (Character/कैरेक्टर):** नैतिकता, अखंडता और एक स्पष्ट मूल्य प्रणाली की भावना।

e) **दया/चिंता (Care/केयर)**: दूसरों के प्रति सहानुभूति और करुणा रखना।

f) **योगदान (Contribution/ कंट्रीब्यूशन - छठा C):** अन्य पाँच 'सी' का परिणाम है। यह युवा द्वारा अपने विकास को आगे बढ़ाने और इन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप व्यापक समाज में सकारात्मक योगदान देने की क्रिया को दर्शाता है।

मूल सिद्धांत: यह मॉडल मानता है कि इन छह लक्षणों का विकास युवा को न केवल व्यक्तिगत रूप से पनपने में मदद करता है, बल्कि उसे एक जिम्मेदार और सक्रिय नागरिक बनने के लिए तैयार करता है। इसका उपयोग कार्यक्रम डिजाइन करने के सैद्धांतिक ढांचे यथा वांछित परिणामों के सेट के रूप में किया जाता है।

3. सामाजिक एवं भावनात्मक शिक्षण (SEL) मॉडल (कैसेल द्वारा प्रतिपादित)

यह मॉडल जीवन में प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए आवश्यक सामाजिक एवं भावनात्मक योग्यताओं के अर्जन पर बल देता है। इसे शैक्षणिक, सामाजिक एवं भावनात्मक शिक्षण सहयोग (CASEL) द्वारा विकसित किया गया है। यह मुख्य रूप से पाँच प्रमुख क्षमताओं के विकास पर केंद्रित है:

a) **आत्म-जागरूकता (Self-Awareness):** अपनी भावनाओं, विचारों, मूल्यों, शक्तियों और कमजोरियों को पहचानना।

b) **आत्म-प्रबंधन (Self-Management):** अपनी भावनाओं, विचारों और व्यवहार को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करना, लक्ष्य निर्धारित करना और तनाव का सामना करना।

c) **सामाजिक जागरूकता (Social Awareness):** दूसरों की भावनाओं और दृष्टिकोणों को समझना, सहानुभूति रखना और विविध पृष्ठभूमियों का सम्मान करना।

d) **संबंध कौशल (Relationship Skills):** स्वस्थ और सहायक संबंध बनाना और बनाए रखना, संघर्षों का रचनात्मक समाधान करना और सामूहिक कार्य में भाग लेना।

e) **उत्तरदायी निर्णय लेना (Responsible Decision-Making):** व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक परस्पर क्रिया के बारे में नैतिक, सुरक्षित और सम्मानजनक विकल्प बनाना।

यह मॉडल युवाओं को केवल शैक्षिक सफलता के लिए ही नहीं, बल्कि जीवन में सामान्य रूप से कामयाब होने, स्वस्थ संबंध बनाने और एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए आवश्यक मूलभूत जीवन कौशल प्रदान करता है।

4. . **'होने' का मॉडल ('बीइंग' मॉडल/ Being Model)**

यह मॉडल 'करने' (डूइंग) यानी कौशल हासिल करने और उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बजाय, 'होने' (बीइंग) पर केंद्रित है। यह युवाओं की व्यक्तिगत पहचान और आंतरिक दुनिया पर जोर देता है।यह युवाओं में ईमानदारी, दृढ़ता, कृतज्ञता, विनम्रता आदि जन्मजात चरित्र गुणों को पहचानने और उन्हें विकसित करने पर ध्यान देता है।

15.4 भारत में युवा - इतिहास, महत्व एवं राष्ट्रीय भूमिका

15.4.1 इतिहास में युवा शक्ति के प्रतिमान एवं विविध आयाम

भारत की सभ्यता ने सदैव युवा शक्ति को राष्ट्र की प्रगति का प्राथमिक इंजन माना है। यहाँ युवा की अवधारणा केवल एक निश्चित आयु-वर्ग नहीं, बल्कि विचार, ऊर्जा और परिवर्तन की एक अवस्था है। भारतीय संदर्भ में एक सफल एवं कुशल युवा की कसौटी केवल उसकी आयु या सामाजिक-आर्थिक उपलब्धियाँ नहीं, बल्कि उसकी आत्मबोध की गहराई, ज्ञान की पिपासा, नैतिक दृढ़ता और विवेकशीलता है।

यह दृष्टिकोण हमारे प्राचीन आख्यानों एवं शास्त्रों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। नचिकेता जैसा बालक, जो मृत्यु के देवता यम के समक्ष सत्य की खोज के लिए अडिग रहा, आयु में बालक होते हुए भी गहन आध्यात्मिक जिज्ञासा एवं बौद्धिक साहस का प्रतीक बन गया। इसी प्रकार, अष्टावक्र महज आठ वर्ष की अवस्था में ही राजा जनक के दरबार में विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करके बौद्धिक कुशाग्रता एवं आत्म-ज्ञान का परिचय देते हैं।

इस प्रकार, भारतीय चिंतन में एक 'युवा' को केवल जीवन-चक्र के एक चरण के रूप में नहीं, बल्कि 'ब्रह्मचर्य' के आश्रम के एक सक्रिय साधक के रूप में देखा गया है, जिसका प्रमुख लक्ष्य विद्या अर्जन, आत्म-अनुशासन एवं चरित्र निर्माण है। यह मान्यता आज भी प्रासंगिक है कि चालीस वर्ष का व्यक्ति भी, यदि बौद्धिक एवं आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व है, तो वह 'युवा' की गरिमापूर्ण श्रेणी में नहीं आता। इसके विपरीत, कम आयु का कोई भी व्यक्ति इन गुणों से सम्पन्न होने पर पूर्ण विकसित माना जा सकता है।

अतः, भारत के लिए युवा शक्ति के मूल्यांकन का एक समग्र मॉडल वही होगा जो आयु के सांख्यिकीय आधार (15-29 वर्ष), सामाजिक भूमिकाओं के संक्रमण और सबसे महत्वपूर्ण, इस आध्यात्मिक-बौद्धिक परिपक्वता के मानदंड को एक साथ समेकित करता हो। यही त्रिवेणी संगम भारत की युवा नीतियों को एक विशिष्ट एवं सार्थक दिशा प्रदान कर सकता है। भारतीय इतिहास की धारा को बदलने वाले एवं वर्तमान के युवाओं के लिए उच्चा

मानदंड स्थापित करने वाले अनेक युवा प्रेरक हुए हैं, जिन्होंने अल्पायु में ही समाज में असाधारण प्रभाव डाला। प्राचीन काल में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक प्रवर्तक नचिकेता (कठोपनिषद्) एक बालक जिसने मृत्यु के देवता यम से 'जीवन के उद्देश्य' एवं 'अमरत्व' के गूढ़ प्रश्न पूछे। उसकी विवेकपूर्ण श्रद्धा एवं जिज्ञासा सदियों से प्रेरणा बनी हुई है। योगवासिष्ठ के अनुसार, युवा राजकुमार राम जीवन के प्रति गहन जिज्ञासा से व्याकुल हुए और महर्षि वसिष्ठ के मार्गदर्शन में मर्यादापुरुषोत्तम बने। आदि शंकराचार्य ने मात्र 16 वर्ष की आयु में संन्यास लेकर पूरे भारत का भ्रमण किया और 32 वर्ष की अल्पायु में ही अद्वैत वेदांत का प्रसार कर एक दार्शनिक क्रांति ला दी। मध्यकाल में धर्म एवं साहस के प्रतीक गुरु गोबिन्द सिंह जी के पुत्र चार साहिबज़ादे—अजीत सिंह (18 वर्ष), जुझार सिंह (14 वर्ष), जोरावर सिंह (9 वर्ष) और फतेह सिंह (7 वर्ष) जिन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिए अतुलनीय बलिदान दिया। वीर हकीकत राय मात्र 14 वर्ष की आयु में धर्म पर दृढ़ रहते हुए शहादत देने वाला वीर बालक।

औपनिवेशिक काल में क्रांति के अग्रदूत स्वामी विवेकानंद ने 30 वर्ष की आयु से पहले ही 1893 में शिकागो धर्म संसद में भारत का आध्यात्मिक प्रतिनिधित्व किया और युवाओं को राष्ट्र निर्माण का आह्वान किया। खुदीराम बोस ने 18 वर्ष की आयु में फाँसी पर चढ़कर भारत के सबसे कम उम्र के शहीद क्रांतिकारियों में से एक बने। भगत सिंह 23 वर्ष की आयु में फाँसी दिए जाने पर भी अदम्य साहस का प्रदर्शन कर युवाओं के लिए एक आदर्श हैं। चंद्रशेखर आज़ाद जिन्होंने 24 वर्ष की आयु में आत्मगति तक "आज़ाद था, आज़ाद रहूँगा" का संकल्प निभाया। राजगुरु 22 वर्ष, सुखदेव (23 वर्ष), अशफाकउल्ला खाँ (27 वर्ष) व बटुकेश्वर दत्त जैसे युवा क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊर्जा दी। यतिन्द्रनाथ दास 25 वर्ष की आयु में क्रांतिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में 63 दिन के अनशन के बाद शहीद हुए। शांति घोष एवं सुनीति चौधरी मात्र 15-16 वर्ष की किशोरियाँ जो ब्रिटिश अधिकारियों पर हमला करने वाली साहसी क्रांतिकारी बनीं। ये युवा प्रेरक भारतीय चेतना के विविध आयामों दार्शनिक जिज्ञासा, धार्मिक दृढ़ता, आध्यात्मिक प्रचार और क्रांतिकारी साहस के प्रतीक हैं। इन्होंने सिद्ध किया कि आयु मात्र एक संख्या है; संकल्प, साहस और विवेक ही वास्तविक परिपक्वता का मापदंड हैं। ये सभी युवा शक्ति के सदुपयोग का मार्ग दर्शाते हैं चाहे वह ब्रह्मविद्या की खोज हो, धर्म की रक्षा हो या राष्ट्र की स्वतंत्रता का संघर्ष।

स्वतंत्रता से पूर्व कुछ महान संगठन एवं दार्शनिक हुए जिन्होंने युवाओं के महत्व को समझा और स्वतंत्रता पाने के लिए उनसे आह्वाहन भी किया जैसे 1906 में बंगाल में स्थापित अनुशीलन समिति जो एक क्रांतिकारी युवा संगठन था, जिसका उद्देश्य युवाओं को शारीरिक प्रशिक्षण (लाठी-तलवार), राष्ट्रवादी शिक्षा और गुप्त सशस्त्र क्रांति के लिए तैयार करना था। यह विचारधारात्मक रूप से अरविंद घोष से प्रेरित था।जिन्होंने राष्ट्रवाद को एक 'धर्म' और 'दैवीय मिशन' बताया। युवाओं के लिए उनका संदेश था – पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य, निडर बलिदान, आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति का विकास और राष्ट्र-सेवा को 'कर्मयोग' मानकर जीना। स्वामी विवेकानंद ने भी युवाओं को आत्म-विश्वास, निर्भयता और सेवा का संदेश दिया। वे युवाओं के प्रति अपने ओजस्वी सन्देश में कहते हैं -" किन्नाम रोदिसि सखे त्वयि सर्वशक्तिः, आत्म्वैही प्रभवते न जडः कदाचित" - अर्थात, हे सखे ! तुम क्यों रो रहे हो ? तुम्हारे भीतर ही सारी शक्तियाँ निहित हैं। अपनी शक्ति के बल पर ही सारे काम किये जा सकते हैं! जड़ की कोई शक्ति नहीं -प्रबल शक्ति आत्मा की ही है। अपने आप पर विश्वास करो। कहो मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मार्ग छुरे की धार पर चलने के समान दुर्गम है; निराश न होना, उठो ! जागो !लक्ष्य प्राप्ति तक रुको नहीं! "

उनका नारा था युवा अपने भीतर की अनंत शक्ति को पहचानें, लौह-मांसपेशियाँ विकसित करें, चरित्र निर्माण करें और 'दरिद्रनारायण' की सेवा के माध्यम से राष्ट्र का निर्माण करें।

15.4.2 वर्तमान संदर्भ में युवाओं का महत्व एवं राष्ट्रीय भूमिका

समकालीन भारत में युवा शक्ति का स्तरीकृत महत्व जनसांख्यिकीय लाभांश से आगे: केवल संख्या नहीं, बल्कि गुणवत्ता, कौशल और नवाचार क्षमता के रूप में है। युवा आर्थिक विकास का इंजन है जो स्टार्ट-अप संस्कृति, गिग इकोनॉमी, एग्रीटेक, डीप टेक, क्रिएटिव इकोनॉमी आदि द्वारा वैश्विक कार्यबल में योगदान से 'आत्मनिर्भर भारत' का लक्ष्य पूर्ण कर रहा है । भारत का युवा वर्ग आज शासन, नीति निर्माण, पंचायत व्यवस्था और डिजिटल गवर्नेंस में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। तकनीक, ई-गवर्नेंस और डिजिटल साक्षरता के उपयोग से पारदर्शिता, दक्षता और जवाबदेही बढ़ रही है। राष्ट्रीय सुरक्षा में भी युवा महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं । वे सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक दस्तों, साइबर सुरक्षा और आपदा प्रबंधन में भागीदारी कर देश की रक्षा और सामाजिक सौहार्द सुनिश्चित कर रहे हैं।वैश्विक स्तर पर भारतीय युवा संयुक्त राष्ट्र, G20 जैसे मंचों पर देश का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, साथ ही खेल, विज्ञान और संस्कृति में अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियाँ भारत की प्रतिष्ठा बढ़ा रही हैं।

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण युवावस्था को केवल आयु नहीं बल्कि जिज्ञासा, नैतिकता और विवेक से जोड़ता है। यही पारंपरिक मूल्य अब नवीन रूप में सामने आ रहे हैं- नवाचार, वैज्ञानिक शोध, पर्यावरणीय चेतना, भ्रष्टाचार-विरोध और डिजिटल नैतिकता के रूप में। वैश्विक सहयोग की भावना भी *वसुधैव कुटुम्बकम* की समकालीन अभिव्यक्ति है, जिसका प्रयोग युवा जलवायु परिवर्तन व महामारी जैसी चुनौतियों के समाधान में कर रहे हैं। आने वाले समय ,में शिक्षा (विशेषकर NEP 2020), कौशल विकास, रोजगार-सृजन, मानसिक स्वास्थ्य, डिजिटल समानता और परंपरा-आधुनिकता के संतुलन पर निर्भर है। प्रस्तावित *तीन आयामों का संगम* (आयु, सामाजिक संक्रमण,आध्यात्मिक-बौद्धिक परिपक्वता)युवा नीतियों को अधिक समग्र व मानवकेंद्रित बना सकता है।

15.5 युवा विकास में चुनौतियाँ

भारत के युवाओं को विश्व का सबसे बड़ा जनसांख्यिकीय लाभांश प्राप्त है, किंतु इसका पूरा दोहन करने के मार्ग में कई गंभीर और जटिल चुनौतियाँ हैं। प्रमुख चुनौतियों में शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रासंगिकता का संकट प्रथम है, जहाँ रटंत विद्या और कौशल-विकास के बीच की खाई युवाओं को रोजगार के लिए तैयार नहीं कर पाती। इसका सीधा संबंध दूसरी बड़ी चुनौती रोजगार एवं आजीविका से है, जहाँ नौकरियों का अभाव, अनौपचारिक क्षेत्र में असुरक्षित रोज़गार और NEET (शिक्षा, रोजगार या प्रशिक्षण में न लगे) युवाओं की विशाल संख्या एक गहरी समस्या बनी हुई है। ब्रेन ड्रेन भी भारत जैसे विकासशील देश के लिए एक गंभीर चुनौती है, जिससे निपटने के लिए देश के भीतर ही ऐसा समृद्ध और समावेशी वातावरण बनाना आवश्यक है जो प्रतिभा को आकर्षित करे और उसे बनाए रख सके।

तीसरी महत्वपूर्ण चुनौती सामाजिक-आर्थिक असमानता एवं समावेशन की है। लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र और आर्थिक पृष्ठभूमि के आधार पर युवाओं के अवसरों में भारी अंतर देखने को मिलता है, जिससे एक बड़ा वर्ग पीछे

छूट जाता है। साथ ही, मानसिक स्वास्थ्य संकट एक नई और गंभीर चुनौती के रूप में उभरा है, जिसमें प्रतिस्पर्धा, बेरोजगारी और सामाजिक दबाव के कारण चिंता, अवसाद जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। प्रौद्योगिकी का द्वंद्व भी एक चुनौती है, जहाँ एक ओर डिजिटल विभाजन है तो दूसरी ओर सोशल मीडिया से उत्पन्न मानसिक दबाव एवं गलत सूचना का खतरा है।

अंत में, राजनीतिक एवं नागरिक भागीदारी में सीमित हिस्सेदारी एक संरचनात्मक चुनौती है। युवाओं को नीति-निर्माण में सार्थक भूमिका देने के स्थान पर प्रतीकात्मक भागीदारी तक सीमित रखा जाना, उनकी ऊर्जा और नवाचार क्षमता के उपयोग में बाधक है। इन सभी चुनौतियों का समाधान केवल सरकारी नीतियों से नहीं, बल्कि शिक्षा व्यवस्था में मौलिक सुधार, निजी क्षेत्र की सक्रिय भागीदारी, समुदाय-आधारित हस्तक्षेप और युवाओं की आवाज को केंद्र में रखकर ही संभव है।

15.6 प्रमुख नीतियां एवं योजनायें

युवा सबसे मूल्यवान मानव संसाधन हैं उनकी रचनात्मक और सृजनात्मक ऊर्जा का सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए युवा कार्यक्रम है जो युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण और राष्ट्र निर्माण के दोहरे उद्देश्यों को पूरा करता है। युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय की नींव 1982 में खेल विभाग के रूप में रखी गई, जब नई दिल्ली में नौवें एशियाई खेलों का आयोजन हुआ था। 1985 के अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष के दौरान इसका नाम बदलकर युवा कार्यक्रम एवं खेल विभाग कर दिया गया। 27 मई, 2000 को इसे एक पूर्ण मंत्रालय का दर्जा मिला और अंततः 30 अप्रैल, 2008 को इसे दो स्वतंत्र विभागों—युवा कार्यक्रम विभाग और खेल विभाग—में विभाजित कर दिया गया, जिनका नेतृत्व अलग-अलग सचिव करते हैं।

भारत की कुल जनसंख्या का लगभग **40% हिस्सा** (लगभग 50 करोड़) **15-29 वर्ष** की आयु के युवाओं का है। यह आबादी देश की सबसे **जीवंत, गतिशील एवं ऊर्जावान मानव संपदा** है, जो भारत के **जनसांख्यिकीय लाभांश** की रीढ़ है। इस विशाल क्षमता का इष्टतम दोहन करने के लिए विभाग एक **द्वि-स्तंभीय दर्शन** अपनाता है: **व्यक्तित्व निर्माण** और **राष्ट्र निर्माण**। व्यक्तित्व निर्माण का लक्ष्य युवाओं के सर्वांगीण विकास के माध्यम से उनमें नेतृत्व क्षमता, चारित्रिक दृढ़ता एवं रचनात्मकता का संचार करना है। इसके बाद, राष्ट्र निर्माण के अंतर्गत इन युवाओं को स्वच्छता अभियान, आपदा प्रबंधन, सामुदायिक सेवा एवं पर्यावरण संरक्षण जैसी गतिविधियों में सक्रिय भागीदार बनाकर, उन्हें देश के विकास प्रक्रिया का एक सहभागी एवं परिवर्तनकारी वाहक तैयार करना है। इस प्रकार, यह विभाग युवाओं को केवल एक लाभार्थी समूह नहीं, बल्कि राष्ट्र की प्रगति का प्रमुख इंजन बनाने का प्रयास करता है।

a) **राष्ट्रीय युवा नीति-2014 (National Youth Policy-2014)-** फरवरी 2014 में लॉन्च हुई इस नीति का दृष्टिकोण युवाओं को एक उत्पादक कार्यबल, स्वस्थ पीढ़ी और सामाजिक रूप से जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित करना है। इसके प्रमुख उद्देश्यों में सही शिक्षा व कौशल द्वारा रोजगार योग्य बनाना,

स्वस्थ जीवनशैली को बढ़ावा देना, सामुदायिक सेवा की भावना जगाना, शासन प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करना और वंचित वर्गों के युवाओं के लिए समावेशी नीतियाँ बनाना शामिल हैं।

b) **राष्ट्रीय युवा सशक्तिकरण कार्यक्रम (Rashtriya Yuva Sashaktikaran Karyakram - RYSK)-** यह एक व्यापक छत्रक योजना है जिसके अंतर्गत युवा विकास से जुड़े आठ घटक/उप-योजनाएँ चलाई जाती हैं। इनमें नेहरू युवा केंद्र संगठन (NYKS), राष्ट्रीय युवा कोर, राष्ट्रीय युवा नेता कार्यक्रम, युवा हॉस्टल और स्काउटिंग-गाइडिंग संगठनों को सहायता जैसे कार्यक्रम शामिल हैं, जो युवाओं के सर्वांगीण विकास और राष्ट्र निर्माण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।

c) **नेहरू युवा केंद्र संगठन (Nehru Yuva Kendra Sangathan - NYKS)-** 1972 में स्थापित, NYKS दुनिया के सबसे बड़े युवा संगठनों में से एक है, जिसमें देश भर के 3 लाख से अधिक युवा क्लबों के माध्यम से 86 लाख से अधिक युवा पंजीकृत हैं। इसका उद्देश्य युवाओं के व्यक्तित्व और नेतृत्व गुणों का विकास करके उन्हें राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों से जोड़ना है, जिसकी देखरेख प्रत्येक जिले के एक जिला युवा समन्वयक द्वारा की जाती है।

d) **राष्ट्रीय सेवा योजना (National Service Scheme - NSS)-** 1969 में महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रेरित होकर शुरू की गई इस योजना का आदर्श वाक्य 'नॉट मी, बट यू' है। इसका प्राथमिक उद्देश्य स्वैच्छिक सामुदायिक सेवा के माध्यम से छात्र युवाओं के चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण करना है। प्रत्येक NSS स्वयंसेवक को प्रति वर्ष 120 घंटे का सेवा कार्य करना होता है और एक 7-दिवसीय विशेष शिविर में भाग लेना होता है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, पर्यावरण संरक्षण और आपदा राहत जैसे कार्य शामिल हैं।

e) **राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान (Rajiv Gandhi National Institute of Youth Development - RGNIYD)-** 2012 के अधिनियम द्वारा 'राष्ट्रीय महत्व का संस्थान' घोषित, यह संस्थान युवा मामलों के मंत्रालय का थिंक टैंक और देश में युवा-संबंधी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र है। यह रोजगार कौशल, सामाजिक उद्यमिता, जीवन कौशल और युवा नेतृत्व जैसे विषयों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है साथ ही युवा अध्ययन में अंतःविषयक डॉक्टरल कार्यक्रम भी प्रदान करता है।

f) **प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PM Kaushal Vikas Yojana - PMKVY)-** 2015 में शुरू की गई इस योजना का लक्ष्य अल्पकालीन प्रशिक्षण (STT) और पूर्व सीखने की मान्यता (RPL) के माध्यम से देश के युवाओं को उद्योग-प्रासंगिक कौशल प्रदान करना है। अब तक इसके तहत विविध कौशल क्षेत्रों में 1.63 करोड़ से अधिक युवाओं को प्रशिक्षित किया जा चुका है, जिससे उनकी रोजगार क्षमता में वृद्धि हुई है।

g) **PM श्री (PM Schools for Rising India) योजना-** सितंबर 2022 में लॉन्च हुई यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है, जिसका दृष्टिकोण चुने हुए स्कूलों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सभी घटकों को प्रदर्शित करने वाले आदर्श संस्थानों में रूपांतरित करना है। ये स्कूल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, समग्र विकास

और 21वीं सदी के कौशल पर केंद्रित होंगे तथा आस-पास के स्कूलों के लिए मेंटर संस्थान का कार्य भी करेंगे।

h) **राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Education Policy - NEP) 2020-** 29 जुलाई 2020 को घोषित इस नीति का लक्ष्य स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा दोनों में बड़े सुधार लाना है। इसका उद्देश्य 2030 तक प्री-स्कूल से माध्यमिक स्तर तक GER को 100% और 2035 तक उच्च शिक्षा में GER को 50% तक पहुँचाना है, साथ ही बहु-विषयक शिक्षा, कौशल एकीकरण और शिक्षण की भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना है।

i) **मुद्रा योजना (MUDRA Yojana)-** 8 अप्रैल 2015 को लॉन्च की गई प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY) लाखों छोटे उद्यमियों को आसान ऋण सुविधा प्रदान करती है। 23 जुलाई 2024 को, उभरते उद्यमियों के समर्थन को और मजबूत करने के लिए ऋण सीमा को ₹10 लाख से बढ़ाकर ₹20 लाख कर दिया गया, जिससे व्यवसायों के विस्तार और नए उद्यम शुरू करने में मदद मिलती है।

j) **टारगेट ओलंपिक पोडियम स्कीम (Target Olympic Podium Scheme - TOPS)-** सितंबर 2014 में युवा मामलों और खेल मंत्रालय की इस प्रमुख पहल का उद्देश्य भारत के शीर्ष एथलीटों को ओलंपिक और पैरालंपिक पदक जीतने में समर्थन देना है। यह प्रशिक्षण, उपकरण, अंतरराष्ट्रीय अनुभव और मासिक वजीफा जैसी समग्र सहायता प्रदान करती है, जिसके तहत 94 कोर समूह और 112 विकास समूह के एथलीट लाभान्वित हो रहे हैं।

k) **खेलो इंडिया राष्ट्रीय खेल विकास कार्यक्रम (Khelo India National Programme for Development of Sports)-** 2016-17 में शुरू हुए इस कार्यक्रम का दोहरा उद्देश्य देश भर में खेलों में सामूहिक भागीदारी और उत्कृष्टता को बढ़ावा देना है। इस योजना को 2021-22 से 2025-26 तक ₹3790.50 करोड़ के वित्तीय परिव्यय के साथ बढ़ाया गया है, जिसमें प्रतिभा की पहचान, बुनियादी ढांचे के विकास और प्रतियोगिताओं के आयोजन पर ध्यान केंद्रित है।

15.7 सारांश

भारतीय संदर्भ में युवा केवल आयु आधारित पहचान नहीं, बल्कि सामाजिक भूमिका, बौद्धिक प्रखरता, दायित्व निर्वहन और राष्ट्र निर्माण में सक्रिय योगदान का द्योतक है। 15–29 वर्ष का विशाल युवा वर्ग भारत की सबसे बड़ी शक्ति है, जिसकी ऊर्जा, कौशल, नेतृत्व और नवाचार क्षमता जनसांख्यिकीय लाभांश का आधार बनती है। यदि शिक्षा, रोजगार, भागीदारी और नीति-समर्थन के माध्यम से युवाओं की क्षमता का पूर्ण उपयोग हो सके तो वे समाज, अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रमुख परिवर्तनकारी एजेंट सिद्ध हो सकते हैं।

15.8 शब्दावली

1. जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend): किसी देश की कुल जनसंख्या में कार्यशील आयु वर्ग (15-64 वर्ष) का अनुपात बढ़ने से आर्थिक विकास की संभावना में होने वाली वृद्धि।

2. नीट (NEET): वे युवा जो न तो शिक्षा (Education), न रोजगार (Employment) और न ही किसी प्रशिक्षण (Training) में लगे हुए हैं।
3. ब्रेन ड्रेन (Brain Drain): किसी देश के शिक्षित व कुशल पेशेवरों का बेहतर अवसरों के लिए दूसरे देशों में स्थायी रूप से पलायन कर जाना।
4. डिजिटल नेटिव दर (Digital Native Rate): यह उन युवाओं का प्रतिशत है जो पिछले 5 वर्षों से इंटरनेट का नियमित उपयोग (सप्ताह में कम से कम एक बार) कर रहे हैं। ये वे युवा हैं जो डिजिटल प्रौद्योगिकी और इंटरनेट के वातावरण में बड़े हुए हैं।

15.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs):

1. राष्ट्रीय युवा नीति 2014 के अनुसार युवा की आयु सीमा क्या है?
   (क) 10-24 वर्ष (ख) 15-29 वर्ष (ग) 18-35 वर्ष (घ) 13-25 वर्ष

2. 'नीट' (NEET) शब्द का पूर्ण रूप क्या है?
   (क) National Education and Employment Taskforce
   (ख) Not in Education, Employment or Training
   (ग) New Entrepreneurship and Empowerment Team
   (घ) National Evaluation of Educational Training

3. '5सी मॉडल' में निम्नलिखित में से कौन सा 'सी' शामिल नहीं है?
   (क) कॉन्फिडेंस (Confidence) (ख) कम्पीटेंस (Competence)
   (ग) कॉस्ट-इफेक्टिवनेस (Cost-effectiveness) (घ) कनेक्शन (Connection)

4. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) किस वर्ष शुरू की गई?
   (क) 2014 (ख) 2016 (ग) 2015 (घ) 2018

5. भारतीय संविधान का कौन सा अनुच्छेद राज्य को काम, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता के अधिकार सुनिश्चित करने का निर्देश देता है?
   (क) अनुच्छेद 41 (ख) अनुच्छेद 39 (ग) अनुच्छेद 45 (घ) अनुच्छेद 47

उत्तर - 1.- (ख), 2.- (ख), 3.- (ग), 4.- (ग), 5.- (क)

15.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Sukarieh, M., & Tannock, S. (2015). *Youth Rising? The Politics of Youth in the Global Economy.* Routledge.

- World Bank. (2007). *World Development Report 2007: Development and the Next Generation.* Washington, DC: World Bank.
- "Census of India 2011 - Age Structure and Marital Status"
- European Commission, "EU Youth Strategy
- National Youth Policy - 2014
- https://culturalaffairs.assam.gov.in/portlets/kanaklata-barua
- https://www.differencebetween.com/difference-betweenyouth-
- and-vs-adolescence/
- भारत सरकार, युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय। (2014). *राष्ट्रीय युवा नीति-2014.* नई दिल्ली।
- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय। (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.* नई दिल्ली।
- कॉमनवेल्थ सचिवालय। (2024). *ग्लोबल यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स 2023 रिपोर्ट.* लंदन।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन। (2021). *किशोरों और युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर वैश्विक स्थिति रिपोर्ट.* जिनेवा।
- राजीव गांधी राष्ट्रीय युवा विकास संस्थान (RGNIYD). (2017). *भारत यूथ डेवलपमेंट इंडेक्स एंड रिपोर्ट 2017.* श्रीपेरुम्बुदूर।
- एरिक्सन, ई. एच. (1968). *पहचान: युवावस्था और संकट.* नॉर्टन।
- भारत सरकार, वित्त मंत्रालय। (2015). *प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY): दिशा-निर्देश.* नई दिल्ली।

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए तथा युवाओं की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. युवा को सामाजिक निर्माण के रूप में समझाने हेतु उपयुक्त उदाहरणों सहित व्याख्या कीजिए।
3. सकारात्मक युवा विकास (PYD) मॉडल के प्रमुख तत्वों तथा इसकी उपयोगिता पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

15.12 सहायक पाठ्य सामग्री

- युवाओं पर आधारित सरकारी योजनाओं — *Skill India, Digital India, NYKS, NSS* का अध्ययन
- SDGs में युवा भागीदारी की भूमिका पर संयुक्त राष्ट्र दस्तावेज
- Youth Development, PYD, Social Construction Theory पर शोध-पत्र
- भारत के जनसांख्यिकीय आंकड़ों हेतु Census of India एवं NITI Aayog डेटा
- विश्व बैंक रिपोर्ट: "डेवलपमेंट एंड द नेक्स्ट जनरेशन" (2007)

- NITI आयोग: 'भारत@75' रिपोर्ट
- CASEL (Collaborative for Academic, Social, and Emotional Learning):
- लर्नर, आर. एम., लर्नर, जे. वी., और उर्जुएटा, एल. (2011). *सकारात्मक युवा विकास की खोज: वैश्विक संदर्भ में अनुप्रयोग.* एल्सेवियर।
- बेन्सन, पी. एल., स्केल्स, पी. सी., और साइक्स, एल. (2011). *विकासात्मक सम्पदाओं की शक्ति: समुदाय की भूमिका.* सर्च इंस्टीट्यूट।